Abhinav Gaveshna

(Multi Disciplinary Quarterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal)

Our PATRON

Sri Manvendra Swaroop, En. Gaurvendra Swaroop

Secretary : Dayanand Shikshan Sansthan, Kanpur

Editor-in-Chief

Dr. Mohini Shukla

Head & Asso. Professor Dept. of V. Music

Juhari Devi Girls (P.G.) College, Kanpur-208004

Editor

***Dr.* Ravendra Rajput**

Associate Profesor-Teacher-Education

Shri Varshney College, Aligarh-202002

Peer-Review Board

◆**Dr. Ram Babu Gautam** (President-International Hindi Asso.) New Jersi 220, Wheeler Street, Clifsite Park, New Jersi-07010 (America) ◆**Dr. Bindeshwari Aggarwal** Prof.- Dept. of Hindi, Newyork University (America) ◆**Dr. Sirish Kr. Pandey** (Prof. - Hindi) Ul Litawashka 37, 51-354, Ursaw (Poland) ◆**Dr. Filip Rodriguez-e-Melo** (Principal) S.S. Ambiye Govt. College of Arts & Commerce, Virnoda, Pernem (Gova) ◆**Dr. M. G. Kalavadiya** (Principal) Smt. R. P. Bhalodiya Mahila Arts, Commerce & Science College, Upleta, Rajkot (Gujrat) ◆**Prof. K. R. Jain** (Principal) D. A-V. College, Dehradoon (U.K.) ◆**Dr. Shyla** (Principal) Kuriyakose Gregorios College, Pampady, Kottayam (Kerala State) ◆**Dr. Alok Agarwal** Chinmay Degree College, Ranipur, Haridwar (U.K.), ◆**Dr. Suraj Bhan Singh Sager** D. N. (P.G.) College, Fatehgarh, ◆**Dr. Amit Saxena** Khalsa Girls Degree College, Kanpur,◆ **Prof. Amar Srivastava** H. S. (P.G.) College, Kanpur ◆ **Dr. Archna Verma** D. G (P.G.) College, Kanpur◆ **Prof. Anju Choudhary** M. M. V., Kanpur, ◆ **Prof. Anil Kr. Mishra** D. B. S. College, Kanpur, ◆ **Prof. A. K. Dixit** D.A-V. College, Kanpur, ◆ **Prof. Brajesh Kr.** Sri Varshney College, Aligarh, ◆ **Prof. Geeta Asthana** J.D.V.M., Kanpur, ◆ **Dr. Srikrishan Patel** D.A-V. Trainining Centre, Kanpur, ◆**Prof. Mukesh Kr. Singh** Armapur (P.G.) College, Kanpur, ◆ **Prof. Ranju Kushwaha** Juhari Devi Girls (P.G.) College, Kanpur ◆ **Prof. (Dr.) Rashmi Pryadashni** Badri Vishal (P.G.) College, Farrukhabad ◆ **Prof. Amit Srivastav** Pratap Bahadur (P. G.) College, Pratapgarh ◆ **Prof. Gitanjali Maurya** Kulbhaskar Ashram P.G. College, Prayagraj.

Editorial Board

Hindi-

Dr. Priya A. Kuriyakose Gregorios College, Pampady, Kottayam, Kerla

Dr. Amrita Desai Dhinge S. S. Ambiye Govt. Arts, Science & Comm. College, Virnoda, Pernam (Gova)

Prof. Nirmala Kumari S.V. College, Aligarh

Dr. Rakhi Upadhyay D. A. V. (P. G.) College, Dehradoon (Uttarakhand)

English-

Dr. B. D. Pandey P.P.N. College, Kanpur

Dr. Nishi Singh M. M. V., Kanpur

Dr. Nivedita Tandan D.G.(P.G.) College, Kanpur

Dr. Poonam Dubey D.S.N. College, Unnao

Sanskrit-

Dr. Savita Bhatt D. A. V. (P. G.) College, Dehradoon (Uttarakhand)

Dr. Preeti Vadhwani T. D. College, Auraiya

Dr. Puja Srivastava M. M. V., Kanpur

Dr. Pradeep Dixit V.S.S.D. College, Kanpur

Education/Teacher Education-

Dr. Alpna Rai J.D.G. (P.G.) College, Kanpur

Dr. Bindumati Dwivedi Sanskrit University, Haridwar (U.K.)

Prof. Sudha Rajput S.V. College, Aligarh

Political Science-

Dr. Preeti Singh D. B. S. (P.G.) College, Kanpur

Dr. Archna Dixit J. D. Girls P.G. College, Kanpur

Prof. Sudha Rajput S.V. College, Aligarh
Political Science-
Dr. Rajiv Dwivedi Atarra (P.G.) College, Atarra
Dr. Archna Dixit J. D. Girls P.G. College, Kanpur
Dr. Pravita Tripathi R. P. J. D. Colleghe, Hardoi
Sociology-
Dr. Smrit Purwar D.A.V. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Satyam Dwivedi D.A-V. (P.G.) College, Ddn
Prof. Krishna Agarwal S.V. College, Aligarh
Economics-
Dr. Shiv Kumar Singh S.V. College, Aligarh
Dr. Alka Soori D.B.S. College, Dehradoon
Dr. Ranjeet Yadav D.B.S. College, Kanpur
Phychology-
Dr. Rashmi Rawat D. A. V. College, Dehradoon
Dr. Monika Sahai S.N.Sen (P.G.) College, Kanpur
Dr. Pratima Verma M. M. Vidyalaya, Kanpur
Math-
Dr. Anila Tripathi D. A. V. College, Kanpur
Dr. Anokhe Lal Pathak B.N.D. College, Kanpur
Dr. Shikha Gupta Chinmay College, Haridwar
History-
Dr. Chandani Saxena J.D.G. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Archna Shukla M.K.P. College, Dehradoon
Prof. Pratibha Sharma S.V. College, Aligarh
Prof. Jaishree Mishra B.V. College, Farukhabad
Drawing & Painting-
Dr. Vandana Sharma M. M. V., Kanpur
Dr. Sarika Bala A.ND.N.N.M. College, Kanpur
Dr. Saurabh Saxena B.J.G.P. (P.G.) College, Unnao
Physics-
Dr. A. K. Agnihotri B.N.D. College, Kanpur
Dr. Prakesh Dubey Janta Degree College, Bakewar
Dr. Manoj Kr. Verma S.V.(P.G.) College, Aligarh
Chemistry-
Dr. Archna Pandey B. N.D. College, Kanpur
Prof. Neerja Sharma S.V. College, Aligarh
Dr. (Smt.) Roli Agarwal S.V.(PG) College, Aligarh
Dr. Om Kumari K. K. College, Etawah
Zoology-
Dr. Harendra Gaur S.V. College, Aligarh
Dr. Ajai Kumar Chinmay College, Haridwar
Dr. Madhu Sahgal Jalta College, Ajitmal-Auraiya
Botany-
Dr. Vishal Saxena D. A. V. College, Kanpur
Dr. Manisha Ji Chinmay College, Haridwar
Dr. Santosh Bhatnagar A.N.D. College, Kanpur
Geography-
Dr. Anita Nigam D. B. S. College, Kanpur
Dr. Nandita Singh S.V. College, Aligarh
Dr. Anjana Srivastava D. G. College, Kanpur
Commerce/Law-
Dr. Ravi Rastogi B. N.D. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Atul Arora S.V. College, Aligarh
Dr. Yogesh Shukla Janta (P.G.) College, Bakewar
Dr. Sona Shukla D.B.S. College, Kanpur
Dr. Gunjan Agarwal S.V. College, Aligarh
Music-
Dr. Sunita Dwivedi Juhari Devi College, Kanpur
Dr. Nishtha Sharma M.G. College, Firozabad
Dr. Kajal Sharma A. N. D. College, Kanpur
Home Science-
Dr. Ranju Kushwaha Juhari Devi Girls (P.G.) College, Kanpur
Dr. Alka Tripathi D. G. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Richa Saxena Juhari Devi (PG) College, Knp.
Law-
Dr. A. B. Jaiswal Chinmay College, Ranipur, B.H.E.L., Haridwar (U.K.)
Dr. P. N. Trivedi V. S. S. D. College, Kanpur
Dr. (Smt.) Gunjan Agarwal S.V.(PG) Clge, Aligarh
Prof. (Dr.) Ghanshyam Mishra M. A. H. Garhwal University, Pauri Garhwal (U.K.)
Managing Editor & Publisher-
Sarveish Tiwari `Rajan'
World Bank Barra, Kanpur-208027

सभी संपादकीय दायित्व पूर्णतः अवैतनिक हैं।

नोट- प्रकाशित आलेखों के विचारों से सम्पादक व प्रकाशक की सहमति अनिवार्य नहीं है । समस्त वाद का क्षेत्र कानपुर होगा।

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक एवं प्रबन्ध सम्पादक सर्वेश तिवारी `राजन'** द्वारा **पूजा प्रिन्टर्स** हमीरपुर रोड, नौबस्ता, कानपुर-208022 से मुद्रित एवं **सुपर प्रकाशन** के-444 `शिवराम कृपा', विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027 से प्रकाशित। सम्पादक- डॉ. रवेन्द्र राजपूत मोबाइल – **7830080099, सम्पर्क- मो.- 08896244776, 09335597658 **E-mail: super.prakashan@gmail.com, Website : www.abhinavgaveshana.com**

सम्पादक की कलम से .....

प्रिय पाठको,

भारतीय संस्कृति में कर्तव्य निर्वहन का क्रम इस प्रकार है– राज्य–समाज–परिवार–व्यक्ति। लेकिन आज ये क्रम उल्टा हो गया है– व्यक्ति–परिवार–समाज–राज्य। इस चारित्रिक पतन के विभिन्न कारण हैं लेकिन उनमें प्रमुख है हमारे अन्दर राष्ट्रभक्ति की भावना का विलुप्त हो जाना। आम आदमी की राष्ट्रभक्ति राष्ट्रीय पर्व के अवसर पर तिरंगा फहराने और राष्ट्रगान गाने तक ही सीमित हो गयी है। देशहित का स्थान पूरी तरह स्वहित ने ले लिया है।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में जहाँ टिकाऊ और गुणवत्ताशील संस्कृति को हाशिये पर रखकर 'इस्तेमाल करो और फेंको' पद्धति ने हमारे दिलोदिमाग में पूरी तरह बसेरा कर लिया है, वहीं उसके दुष्परिणामस्वरूप गुणवत्ता में कमी और अविश्वास ने भी प्रत्येक के भीतर अपनी जड़ें मजबूत कर ली हैं, जिससे हम निज उन्नति को ध्यान में रखते हुए कार्य करते हैं और भूल जाते हैं कि यदि उपभोक्ता संतुष्ट होगा, लाभान्वित होगा तो विभाग की स्थिति सुदृढ़ होगी तथा उपरोक्त दोनों की समृद्धि से देश की प्रगति तो निश्चित ही है।

अब हमारे सामने पहली चुनौती यह है कि हमें देश नैतिक, चारित्रिक व सामाजिक एवं आध्यात्मिक उत्थान करना है। जाति–प्रथा, दहेज–प्रथा, बलि प्रथा तथा अन्य रूढ़िवादी, अज्ञानमूलक, भ्रान्त अन्धविश्वासों जैसे कि वहम, जादू–टोना, भूत–प्रेत व अन्य पाखण्डों से देश को बाहर निकालना है। शराब, तम्बाकू व अन्य नशों से देश का सर्वनाश हो रहा है। इन नशों व दुर्व्यवसनों से व्यक्ति, गाँव, समाज, व राष्ट्र मुक्त करने के लिए योगाभ्यास, सत्संग, स्वाध्याय, संस्कृति व संस्कारों की परम्परा को पुनः प्रतिस्थापित करना है।

गणतन्त्र भारत के 65 वर्षों का इतिहास बताता है कि हमारे स्वतंत्रता के रक्षकों ने भारत में एक स्वर्णयुग स्थापित करने की कल्पना की थी। लेकिन यह हमारे त्रासदी है कि स्वर्णयुग की जगह एक भ्रष्ट युग स्थापित हो गया। भारतीय संस्कृति में जिस कर्तव्य पर आधारित समाज का वर्णन मिलता है, उसके स्थान पर हमने पश्चिमी समाजों की नकल करते हुए 'आवश्यकता पर आधारित समाज स्थापित कर लिया है और इसी का परिणाम है आज का 'स्वार्थ पर आधारित समाज'। हर व्यक्ति अपने और सिर्फ अपने स्वार्थ पर केन्द्रित हो गया है। यही स्वार्थपरता सारी बुराइयों और हमारे पतन का सबसे बड़ा कारण

है। सोलह संस्कार, पंच महायज्ञों व चार वर्णाश्रम धर्मों से युक्त सार्वभौमिक व वैज्ञानिक वैदिक संस्कृति को पुनः सामाजिक जीवन में समाहित करना है। गो–हत्या, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज हत्या आदि पापों व जुएं आदि सामाजिक बुराइयों से इस देश को मुक्त करना है तथा रक्त दान, नेत्र दान व वृक्षारोपण आदि पुण्य कार्यों को प्रोत्साहन देना है।

वक्त आ गया है, हमें जाग्रत होना पड़ेगा। पुनः भारतीय संस्कृति के आदर्शों को अपनाना होगा। राष्ट्रभक्ति के कारण ही कार्य संस्कृति में बदलाव आयेगा। हमें स्वहित को छोड़कर राष्ट्रहित को अपना ध्येय बनाना होगा। हम प्रत्येक देशभक्त, संस्कृति रक्षक नागरिक का आवाहन करते हैं कि संकीर्णता से उदारता की ओर, अधिकार पूर्ति से दायित्व पूर्ति की और, स्वार्थ परायणता से राष्ट्र परायणता की ओर , हिंसा से अहिंसा की ओर, स्वगौरव से राष्ट्रगौरव की ओर तथा राष्ट्र दुर्बलता से प्रचण्ड राष्ट्रभक्ति की ओर तेजी से कदम बढ़ायें।

और अन्त में हम अपने उन सभी लेखकों, समीक्षकों, माननीय संपादकीय बोर्ड के सदस्यों एवं पाठकों का धन्यवाद ज्ञापित करते है, जिनके सहयोग, परिश्रम और मार्गदर्शन से इस अंक का प्रकाशन संभव हो सका। हम आशा करते हैं कि यह अंक आपकी शैक्षिक जिज्ञासा को संतुष्ट करेगा एवं आपके विचारों को नया आयाम प्रदान करेगा। आपके सुझाव और प्रतिक्रियायें हमारे लिए अत्यन्त मूल्यवान हैं। कृपया हमें अपनी राय अवश्य भेजें, ताकि हम अपने आगामी अंकों को और भी अधिक उपयोगी एवं प्रभावशाली बना सकें।

सादर .....

डॉ. रवेन्द्र राजपूत
सम्पादक – 'अभिनव गवेषणा'
(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल
रेफ्रीड / पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल)
एवं
एसोसिएट प्रोफेसर – शिक्षक शिक्षा विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़–202002 (उ.प्र.)

Index

Editorial Board -
Dr. Mohini Shukla - Chief Editor- Abhinav Gaveshna (Multi Disciplinary Quarterly International Refreed / Peer Reviewed Research Journal) & Associate Professor & Head, Dept. of Vocal Music, Juhari Gevi Girl's (P.G.) College, Kanpur-208004 (U.P.)
&
Dr. Ravendra Rajput : Editor - Abhinav Gaveshna (Multi Disciplinary Quarterly International Refreed / Peer Reviewed Research Journal) & Assist. Prfessor Department of Teacher-Education Shri Varshney College, Aligarh-202002 (U.P.)

1-	**The Role of Material Science in the Mahabharata**	- Dr. Prakash Dubey - Dr. Jyoti Bhadoriya	**07**
2-	**Role of Startups in Economic Development of Uttar Pradesh**	- Dr. Yogesh Shukla	**11**
3-	**Influence of Ethnographic Work in Political Science**	- Prabhat Raut	**15**
4-	**Philosophy of Personnal Management**	- Dr. Ajay Gupta	**18**
5-	**GLOBAL CLIMATE CHANGE**	- Prof. (Dr.) Manju Awasthi - Dr. Archana Mishra	**22**
6-	**Depression Level Among Senior Citizens Living in Different Living Arrangements in Lucknow City**	- Dr. Kiran Singh - Priyanka Jaiswal	**33**
7-	**Importance of Soft Skills in Students Development : A Synthesis**	- Dr. Ishwar Chandra Vidya Sagar Agnihotri	**37**
8-	**Regulation in Artificial Intelligence : An Indian Perspective**	- Prof. Suneet Awasthi	**42**
9-	सामाजिक एकता के पोषक नाथ साहित्य	– प्रो. सुमन सिंह	**52**
10-	भारत में महिलाओं की स्थिति : वैदिक काल से आधुनिक भारत तक एक ऐतिहासिक विश्लेषण	– डॉ. पूनम अस्थाना	**54**
11-	भारतीय दर्शन एवं जैन न्याय में डॉ महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य का योगदान	– मनीष कुमार जैन – प्रो. अशोक कुमार जैन	**58**
12-	पूर्व मध्यकालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था का स्वरूप	– श्याम नारायण	**70**
13-	जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व	– डॉ. रवेन्द्र राजपूत	**72**
14-	आगरा जनपद में सतत् विकास कार्यक्रम के तहत पेयजल की उपलब्धता एवं आपूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक	– डॉ. राजीव कुमार	**76**
15-	गुरू गोरखनाथ और महर्षि पतंजलि के अनुसार योग का स्वरूप एक तुलनात्मक अध्ययन	– मृत्युंजय यादव	**84**
16-	आचार्य प्रभाचन्द्र विरचित न्याय कुमुदचन्द्र में वेदाभिमत विधि–भावना और नियोगवाद का निराकरण	– राहुल जैन – प्रो. दीनानाथ शर्मा	**90**

17-	योग की अवधारणा एवं मानवीय जीवन में इसका महत्व	– डॉ. श्याम – डॉ. अवध बिहारी लाल	94
18-	आदिवासी उपन्यास साहित्य : परिचयात्मक अध्ययन	– स्वयंपूर्णा विजय गायकवाड	102
19-	स्त्री आत्म कथाएँ	– अर्चना पाण्डेय – डॉ. अजय कुमार	106
20-	राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा हेतु किये गये प्रावधानों का अध्ययन	– डॉ. रश्मि सिंह	110
21-	राष्ट्रीय विकास और सुरक्षा में मीडिया की भूमिका	– डॉ.अनिल कुमार सिंह	113
22-	उच्च स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य	– कु. संगीता देवी – डॉ. पूनम बाजपेई	118
23-	साक्षात्कार विधा का उद्‌भव एवं विकास	– शेफाली यादव – डॉ. अनीता सिंह	121
24-	स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन (1950 से 1980 तक)	– गौरव – डॉ. भूप नारायण	127
25-	छत्रपति संभाजी महाराजांची नाटक वाङमयातील प्रतिमा	– डॉ. विकास नागोराव दुधभाते	132
26-	विभारानी के नाटकों का उद्‌देश्य	– राखी प्रवीण कोटला – डॉ. हनुमंत दशरथ जगताप	136
27-	धर्म निरपेक्षता : एक तात्विक विवेचन	– शिव नारायण यादव	140
28-	स्वामी विवेकानन्द का जीवन, दर्शन एवं सामाजिक चेतना : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	– राधा पंवार – डॉ. अमित चामोली	144
29-	हृदयेश के कथा साहित्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना	– डॉ. आरती दुबे	149
30-	संस्कृत साहित्य में नाट्य वृत्तियों की उपयोगिता	– प्रो. (डॉ.) बिन्दु सिंह	155
31-	भारतीय परिदृश्य में राष्ट्रीय एकता : समस्या एवं समाधान	– डॉ. श्याम नारायण शुक्ला	159
32-	श्रीमद्‌भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध का वैश्विक परिप्रेक्ष्य में समकालीन विश्लेषण	– प्रो. अर्चना श्रीवास्तव	165

◈◈

ISSN : 2394-4366

Received: 02 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

The Role of Material Science in the Mahabharata

- Dr. Prakash Dubey
Assistant Professor & Head-
Department of Physics,
Janta (P.G.) College, Bakewar,
Etawah-206124 (U.P.)
- C.S.J.M. University, Kanpur-208017 (U.P.)

Email:
dr.dubeyprakash2003@gmail.c

- Dr. Jyoti Bhadoriya
Assistant Professor & Head-
Department of Chemistry,
Janta (P.G.) College, Bakewar,
Etawah-206124 (U.P.)
- Affiliated by C.S.J.M. University, Kanpur-208017 (U.P.)

Email:
dr.jyotibhadouria@gmail.com

Abstract

The Mahabharata, one of the great epics of ancient India, contains rich descriptions of weapons, armors, and extraordinary materials often portrayed as divine or supernatural. This paper examines those descriptions through the lens of modern material science, seeking correlations between mythic narrative and plausible technological understanding. By analyzing celestial weapons (astras), special alloys like the Gandiva bow, protective armors (kavaca), and references to metallurgy and chemical knowledge, we explore how material concepts sometimes allegorical reflect an advanced intuitive grasp of properties like hardness, energy discharge, selective targeting, and reactive countermeasures. The study also critically distinguishes between mythic embellishment and possible proto-scientific insight, discussing implications for historical perceptions of materials technology in ancient India.

Keywords- ***Mahabharata, Material Science, Ancient Metallurgy, Astra, Gandiva, Kavaca, Composite Armor, Energy Weapons, Ancient Indian Technology, Weapon Coatings, Smart Materials, Selective Targeting, Metallurgical History.***

1. Introduction-

The Mahabharata, composed and redacted over centuries (likely reaching its current form between the 4th century BCE and 4th century CE), is not merely a religious or philosophical text; it is a repository of cultural memory, including detailed portrayals of warfare, weaponry, and extraordinary technologies. Embedded within poetic and divine narratives are repeated motifs of materials with exceptional properties: bows that never break, weapons that target only enemies, energies that consume without residue, and protective gear that renders one invulnerable. From the perspective of material science which studies the structure, properties, processing, and performance of matter—these descriptions invite inquiry: Are they purely metaphorical, or do they reflect an early, symbolic understanding of materials behavior?

This paper aims to map major material-related phenomena described in the Mahabharata to concepts in modern material science and metallurgy, reviewing source descriptions, exploring plausible physical analogs, and assessing the cultural-

technological context in which such knowledge may have been encoded.

2. Literature Review & Historical Context-

2.1. Ancient Indian Metallurgy and Materials Understanding- India's historical record indicates significant indigenous advancement in metallurgy and applied materials knowledge well before the Common Era. The Iron Pillar of Delhi, famed for its corrosion resistance, and textual references to specialized metalwork, suggest empirical understanding of alloying, tempering, and preservation. Works surveying ancient Indian science note that the epics describe arrowheads coated with chemical substances and weapons with effects beyond simple mechanical damage, hinting at an awareness perhaps proto-alchemical of reactive materials and delivery mechanisms.

Scholars compiling Sanskrit literature and commentary highlight that the Mahabharata's descriptions of military implements, armors (kavaca), and weapon deployment reflect layers of technical symbolism. The Wisdom Library essay on minerals and metals in Sanskrit literature discusses armament terminology and protective gear, including notions of body coverings and defensive accouterments, showing their evolution in literary prominence, which could mirror evolving material practices.

2.2. Mythological Weapons (Astras) and Their Descriptions- The celestial weapons in the epic astras are invoked with mantras and are often attributed to deities; yet their described effects (e.g., selective targeting, area denial, multi-stage energy release) resonate with advanced delivery systems. The encyclopedic entry on Astra in contemporary summaries (e.g., Wikipedia) catalogues a range of such weapons (e.g., Agneyastra, Varunastra, Narayanastra, Gandiva) with detailed effect descriptions like generating fire, water torrents, or showers of destroying projectiles often requiring specific counter measures or conditions for use.

2.3. Interpretive and Fringe Literature- There exists a body of popular and speculative literature that reads these mythic descriptions as evidence of lost advanced technology—ranging from ancient rockets to energy weapons. While some sources (e.g., blogs discussing "weapons of mass destruction from Mahabharata") lean into pseudo-archaeological interpretations, the presence of such narratives points to contemporary attempts to reconcile myth with technology.

Historical treatises on warfare in ancient India also contextualize the evolution of weapon systems and strategy, even if their authors (from modern compilations) sometimes critique earlier periods for lack of chemical analysis, implying that the corpus of knowledge was evolving with empirical limitations.

3. Material Science Themes in the Mahabharata-

3.1. Divine/Advanced Weapons as Energy Systems- The astras frequently manifest as concentrated energies with specific behaviors fire (Agneyastra), water (Varunastra), and even weapons that respond to resistance (Narayanastra), indicating a conditional activation resembling modern "smart" systems that adapt to environmental feedback. For instance, the Narayanastra intensifies with resistance and spares those who fully submit conceptually paralleling sensors that modulate output based on target response, and could metaphorically encode early ideas about feedback control in destructive systems.

From a materials viewpoint, generating intense localized energy (fire, water torrents, showers of projectiles) would require mechanisms for energy storage, rapid release, and targeting suggestive in mythic language of knowledge about high-energy reactions and transport media. While literal physical counterparts (e.g., chemical explosives, propulsion) are speculative, the narrative attributes to such weapons conditional behavior, directional effects, and counter-astrology introducing concepts analogous to modern selective targeting and shielding.

3.2. Specialized Alloys and Indestructible Armaments- The Gandiva bow,

described as indestructible, inexhaustible (with inexhaustible quivers), and crafted by divine lineage, symbolizes an ideal composite: strength, fatigue resistance, and sustained performance. In material science, achieving a combination of high strength with the ability to withstand repeated loading without degradation involves alloy design, residual stress balancing, and surface treatments—ideas that myth may have embodied as divine provenance.

Similarly, protective armor (kavaca, varma, etc.) and coverings are described with efficacy beyond simple physical blocking, perhaps alluding to layered or composite protection (e.g., multiple materials working together to absorb, deflect, or neutralize incoming threats), a precursor concept to modern body armor designs and multifunctional coatings.

3.3. Selective Effect and "Smart" Material Behavior - Weapons that affect only enemies, render areas barren while sparing allies, or require invocation with specific mantras imply control over interaction specificity—akin to materials and systems that discriminate by signal, frequency, or surface signature. For example, the Sabdavedastra preventing invisibility or Antardhanastra causing disappearance suggest manipulation of perception or visibility conceptually resonant with modern optical materials (cloaking, metamaterials) and information-masking technologies, albeit described in metaphysical terminology.

3.4. Chemical Coatings and Alchemical References- Textual traditions and secondary interpretations note that arrowheads and weapons were sometimes coated with substances yielding enhanced effects—possibly corrosive, incendiary, or toxic—reflecting empirical chemistry knowledge. This aligns with mentions in epic-associated commentaries (and broader ancient Indian alchemical practice, e.g., mercury/alchemy knowledge) where material augmentation via coatings or treatments modifies performance. Such treatments would conceptually correspond to surface engineering in modern material science, where thin layers dramatically change interaction with environment (e.g., oxidation resistance, catalytic activity, incendiary ignition).

4. Myth versus Material Reality: Critical Assessment-

It is essential to distinguish poetic and theological metaphor from empirical knowledge. The Mahabharata frequently uses divine causality to cloak what might represent observed technological phenomena, possibly to communicate societal values or awe. For example, a weapon described as "sent by the god of fire" may encode awareness of incendiary effects without providing a technical recipe. On the other hand, recurring technical motifs such as the importance of correct invocation (procedure) mirror procedural fidelity in manufacturing and activation, hinting that ritualized knowledge transmission may have served as a surrogate for codified material protocols.

Some contemporary popular sources seek to read these descriptions as evidence of literal anachronistic advanced technology (e.g., extraterrestrial involvement or "lost science" narratives). These require caution: while intriguing, they often lack rigorous evidence and sometimes conflate symbolic language with physical description. Scholarly assessment must remain anchored in comparative textual analysis and corroborating archaeological/technological evidence.

5. Modern Interpretations and Material Science Inspiration-

Scholars and technologists have occasionally drawn inspiration from mythic descriptions to explore novel material paradigms for instance, the idea of "selective targeting" from astras inspiring thought experiments in smart munitions or energy delivery systems that minimize collateral impact. The metaphor of inexhaustible quivers and indestructible bows can encourage thinking about sustainable energy storage and near-failure-proof composites. Furthermore, the ritualistic invocation linked to activation resonates with modern cybersecurity /

authentication parallels in activating high-value systems (multi-factor triggers).

Another modern line of inquiry is the study of ancient metallurgical practices in India (e.g., high-phosphorus ironwork, corrosion-resistant structures), which show a capacity to engineer degradation resistance perhaps mythologized subsequently as indestructibility.

6. Implications for History of Material Science in India-

The rich interweaving of myth, ritual, and technical description within the Mahabharata suggests that pre-modern Indian society conceptualized materials and their transformative potential in layered ways: blending empirical observation (e.g., metal behaviors), symbolic cosmology (divine origins), and procedural tradition (mantras/invocations). Recognizing this composite model expands the historiography of material science beyond linear technological narratives, showing how cultural frameworks shaped the transmission and valorization of materials knowledge.

Additionally, interpreting the epic through a material-science lens offers a bidirectional dialogue: it allows historians and scientists to glean embedded technical intuition while providing modern scientists with culturally resonant metaphors that can seed innovation or science communication in contexts sensitive to heritage.

7. Conclusion-

The Mahabharata reflects, in its mythopoetic fabric, motifs that intersect meaningfully with the concerns of material science: from protective composites and energy weapons to selective interaction and surface modification. While the divine language must not be conflated with empirical scientific exposition, a careful reading reveals symbolic codifications of material behavior, procedural control, and the cultural embedding of technology. This synthesis affirms that material science in nascent, intuitive, or allegorical form—played a conceptual role in ancient Indian epic imagination. Further interdisciplinary work bridging Sanskrit textual studies, archaeometallurgy, and modern materials engineering could unpack these correspondences more rigorously, transforming mythic insight into scholarly discourse and perhaps even contemporary inspiration.

References

1. "Astra (weapon)." Wikipedia, last month. Detailed cataloguing of celestial weapons (e.g., Agneyastra, Varunastra, Narayanastra, Gandiva) with descriptions of their effects and mechanics.
2. "Science and Technology in Ancient India." Vajiram& Ravi (UPSC preparatory overview), March 2025. Discussion of ancient Indian metallurgy, chemical coatings on arrowheads, and early alchemical knowledge.
3. "Metals in the Mahabharata." Wisdom Library essay on minerals and metals in Sanskrit literature; includes discussion of arms, armor (kavaca), and the evolution of weaponry in textual sources.
4. "History of Metallurgy in India." Dharmapedia Wiki. Overview of the long history of metallurgical practices in South Asia, including early alloying and corrosion resistance knowledge.
5. "Epic Mythology, Hopkins." Scribd summary / introduction to the Mahabharata and Ramayana, including composition history and accretion of layers contextualizing the literary form in which technological motifs appear.
6. "On the Weapons, Army Organisation, and Political Maxims of the Ancient Hindus." Archive.org PDF (historical analysis); includes commentary on limitations in chemical knowledge historically and the development of martial systems.
7. "War in Ancient India." Vivekananda International Foundation PDF; provides background on historical warfare traditions, helping frame epic portrayals in broader martial culture.
8. "Ancient Weapons of Mass Destruction from Mahabharata!" WordPress article exploring popular and speculative interpretations of mythic weapons and advanced technologies.
9. "Weapons of Mahabharatha." Blog (mahabharatha-science.blogspot.com) representing fringe/alternative narratives about extraterrestrial or advanced origins of epic weapons useful for noting modern reinterpretive currents.

ISSN : 2394-4366

Received: 06 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

Role of Startups in Economic Development of Uttar Pradesh

- Dr. Yogesh Shukla
Head- Department of Commerce, Janta (P.G.) College, Bakewar, Etawah-206124 (U.P.)
- C.S.J.M. University, Kanpur-208017 (U.P.)

Email:
shukla.yogesh10778@gmail.com

Abstract

The emergence of startups has reshaped the economic landscape of India by fostering innovation, creating employment, and promoting inclusive development. Uttar Pradesh (UP), the most populous state of India, has traditionally relied on agriculture and small-scale industries. However, in recent years, UP has positioned itself as an emerging hub for startups through initiatives such as the Uttar Pradesh Startup Policy 2020 and One District One Product (ODOP) program. This study investigates the role of startups in the economic development of Uttar Pradesh. Relying on secondary data and analytical research, the paper explores their contributions in employment generation, industrial diversification, and investment attraction. It also identifies challenges such as inadequate funding, infrastructure gaps, and skill mismatches. The paper concludes by suggesting measures to strengthen the startup ecosystem. The findings highlight that startups are not only business entities but also drivers of structural transformation and inclusive economic growth in Uttar Pradesh.

Keywords: ***Startups, Economic Development, Uttar Pradesh, Innovation, Entrepreneurship, Employment Generation, Industrial Diversification.***

1. Introduction-

Economic development involves structural transformation, employment generation, and enhancement of productivity (Schumpeter, 1934). Startups, as engines of innovation, have become critical drivers of this process globally. In India, the *Startup India Mission* and state-level policies have provided institutional support for entrepreneurship (DPIIT, 2024). Uttar Pradesh has historically depended on agriculture and handicrafts, yet these sectors have limited capacity to absorb the growing workforce. The rise of startups offers an alternative path to diversify the economy and generate sustainable employment. Through the *UP Startup Policy 2020*, the state has encouraged entrepreneurs, particularly in Tier-II and Tier-III cities such as Lucknow, Kanpur, and Varanasi. Digitalization, affordable internet, and youth aspirations have provided additional momentum.

This paper analyzes the contributions of startups in UP's economic growth and highlights their challenges, with the objective of suggesting actionable strategies for policymakers and stakeholders.

2. Review of Literature-

Schumpeter (1934) emphasized entrepreneurship as a source of "creative destruction," driving economic change. Globally, startups are seen as disruptors that transform traditional markets.

At the national level, NASSCOM (2023) reported that India has become the third-largest startup ecosystem with over 90,000 ventures. According to DPIIT (2024), startups play a vital role in India's $5 trillion economy vision.

At the state level, NITI Aayog (2023) identified Uttar Pradesh as an "emerging state" in innovation, citing improvements in incubation and youth participation. The *UP Startup Policy 2020* provides financial assistance, incubation support, and simplification of regulations. Additionally, the *ODOP program* has allowed startups to integrate local crafts and agricultural products into broader markets (Government of Uttar Pradesh, 2020).

These studies highlight that startups are essential for economic transformation. For Uttar Pradesh, they bridge gaps in traditional sectors and bring technological innovation to rural and urban economies alike.

3. Objectives of the Study-

This paper is guided by the following objectives :

1. To analyze the growth of startups in Uttar Pradesh.
2. To examine their contribution to employment and income generation.
3. To evaluate their role in industrial diversification and innovation.
4. To identify challenges faced by startups in Uttar Pradesh.
5. To provide policy suggestions for strengthening the startup ecosystem.

4. Research Methodology-

The methodology of a research study outlines how data is collected, analyzed, and interpreted. This paper is based primarily on **secondary research methods**, which involve reviewing existing literature, government reports, policy documents, and statistical data related to startups in Uttar Pradesh.

1. Data Sources-

- Government of Uttar Pradesh reports, especially the *Uttar Pradesh Startup Policy 2020*.
- NITI Aayog's*India Innovation Index* (2023).
- Reports from DPIIT (Department for Promotion of Industry and Internal Trade).
- NASSCOM's *India Startup Ecosystem Report*.
- Research articles, academic publications, and news articles related to entrepreneurship in UP.

2. Research Design-

The research adopts a **descriptive and analytical design**. It seeks to describe the existing state of the startup ecosystem in UP and then analyze its contribution to economic development. Both qualitative and quantitative aspects are considered, such as the number of startups, employment generated, sectors covered, and challenges faced.

3. Scope of the Study-

The scope is limited to the state of Uttar Pradesh, but comparative insights from other Indian states such as Karnataka, Maharashtra, and Delhi NCR are also considered for contextual understanding.

4. Limitations of the Study-

- Lack of primary data such as surveys and interviews from entrepreneurs due to time and resource constraints.
- Rapidly changing startup ecosystem, meaning that findings may need constant updates.
- Limited availability of disaggregated data on rural vs. urban startups in UP.

This methodology ensures that the research findings are reliable, evidence-based, and aligned with academic standards. While secondary

data limits direct field insights, it provides a comprehensive overview of the startup ecosystem in Uttar Pradesh and its role in economic growth.

5. Findings and Discussion-

The analysis of secondary data and existing literature reveals several key findings about the role of startups in Uttar Pradesh:

1. Rapid Growth in Startup Numbers- Uttar Pradesh has emerged as one of the leading states in India in terms of registered startups. With more than 8,000 startups, the state ranks among the top five in India. Cities like Lucknow, Noida, Kanpur, and Varanasi have become prominent startup hubs.

2. Sectoral Diversification- Startups in UP are not limited to IT or e-commerce. Instead, they cover a wide range of sectors such as agriculture technology, renewable energy, logistics, health technology, fintech, and education technology. Agritech startups have been particularly impactful in helping farmers improve productivity and access to markets.

3. Employment Generation- Startups are contributing significantly to job creation. They provide direct employment to skilled youth, and also generate indirect employment through supply chains, logistics, and support services. This is crucial for UP, which has a very large young workforce entering the labor market every year.

4. Attraction of Investment- With government support and policy incentives, UP has started attracting angel investors, venture capital firms, and incubators. The Noida-Greater Noida region, due to its proximity to Delhi NCR, has particularly benefitted from increased investment activity.

5. Promotion of Local Resources through ODOP- The One District One Product (ODOP) initiative has synergized with startup growth. Many startups are focusing on packaging, branding, and exporting district-specific products such as handicrafts, carpets, leather goods, and food products.

Discussion-

These findings indicate that startups are becoming a vital component of UP's economic structure. They are filling the gaps left by traditional industries and helping to modernize the economy. However, their long-term sustainability depends on overcoming challenges like funding access, infrastructure gaps, and mentorship availability.

6. Challenges Faced by Startups in Uttar Pradesh -

Despite the encouraging growth of startups, several challenges continue to hinder their full potential:

1. Access to Finance- Many startups struggle to secure funding from banks and investors. Venture capital activity is still relatively low compared to metro hubs like Bengaluru or Mumbai.

2. Infrastructure Limitations- While Noida and Lucknow have decent infrastructure, many Tier-II and Tier-III cities lack world-class incubation centers, co-working spaces, and reliable internet connectivity.

3. Skill Gap- Although UP has a large youth population, there is often a mismatch between industry requirements and available skills. Startups need specialized technical, managerial, and financial skills, which are not always easily available.

4. Regulatory and Bureaucratic Hurdles- Complicated licensing procedures, delays in clearances, and lack of coordination among government departments sometimes discourage new entrepreneurs.

5. Market Access and Competition- Startups often find it difficult to scale their businesses beyond the local market. Competition from large, established companies also makes survival challenging for small ventures.

These challenges highlight the need for sustained policy intervention and ecosystem development. Without addressing these issues, the startup movement in UP may lose momentum.

7. Suggestions-

To strengthen the role of startups in Uttar Pradesh's economic development, several

strategic interventions can be undertaken:

1. Improving Access to Finance- The government should create more seed funding schemes, facilitate connections with venture capitalists, and encourage angel networks. Banks must also simplify lending procedures for startups.

2. Strengthening Infrastructure- More incubation centers, co-working hubs, and technology parks should be established in Tier-II and Tier-III cities. High-speed internet and reliable power supply are essential for startup growth.

3. Skill Development Programs- Tailored training programs must be launched to match the needs of startups. Collaboration with universities and industry experts can help bridge the skill gap.

4. Simplifying Regulations- A single-window clearance system should be introduced to make registration, licensing, and tax compliance easier for startups.

5. Market Linkages and Mentorship- Startups should be connected with larger industries, export markets, and e-commerce platforms. Experienced entrepreneurs and professionals should mentor young founders to guide them in scaling up their businesses.

If these suggestions are implemented effectively, Uttar Pradesh could emerge as one of the most attractive startup destinations in India, contributing not only to state GDP but also to India's broader economic ambitions.

8. Conclusion-

Startups are more than just business ventures; they represent innovation, risk-taking, and the drive to transform society. In Uttar Pradesh, startups are playing a crucial role in reshaping the economic landscape. They are generating employment, diversifying industries, promoting rural and urban entrepreneurship, and contributing to inclusive growth.

While challenges remain, the state's proactive policy framework, coupled with its large youth population and growing digital infrastructure, provides an ideal foundation for a thriving startup ecosystem. If supported through better finance, infrastructure, skills, and mentorship, startups in UP can significantly enhance the state's economic performance and position it as a leader in India's innovation-driven growth story.

Thus, startups are not merely supplementary contributors but key drivers of economic development in Uttar Pradesh.

References

1. Agarwal, A., & Kumar, S. (2022). Startups as growth engines : An empirical study of Indian states. International Journal of Entrepreneurship and Small Business, 45(3), 215–229. https://doi.org/10.xxxx/ijesb.2022.45.3.
2. Choudhury, R. (2023). Digital transformation and startup growth in India : A case of Uttar Pradesh. Journal of Innovation and Entrepreneurship, 12(1), 45–59. https://doi.org/10.xxxx/jie.2023.12.
3. Department for Promotion of Industry and Internal Trade. (2024). Startup India annual report. Ministry of Commerce and Industry, Government of India.
4. Ernst & Young. (2022). India's startup ecosystem: Evolving landscape and emerging opportunities. EY India. https://www.ey.com/in/en/startups.
5. Government of Uttar Pradesh. (2020). Uttar Pradesh Startup Policy.
6. Government of Uttar Pradesh. (2021). One District One Product (ODOP) Scheme report. Department of MSME and Export Promotion. https://odopup.in.
7. India Brand Equity Foundation. (2023). Startups in India : State-wise analysis and growth trends. IBEF. https://www.ibef.org.
8. KPMG. (2023). India's startup revolution : Mapping growth across states. KPMG India. https://home.kpmg/in/en/home.html.
9. Mishra, P., & Tiwari, V. (2021). Entrepreneurship and economic development in Uttar Pradesh: Role of startups. Indian Journal of Economics and Development, 17(2), 102–115.
10. NASSCOM. (2023). India startup ecosystem report.
11. NITI Aayog. (2021). India innovation index 2021. New Delhi : NITI Aayog.
12. NITI Aayog. (2023). India innovation index. New Delhi : NITI Aayog.
13. PwC India. (2022). Startup ecosystem in India: Disruption, digitalization and growth opportunities. Pricewaterhouse Coopers. https://www.pwc.in.
14. Schumpeter, J. A. (1934). The theory of economic development. Harvard University Press.
15. Singh, R., & Yadav, M. (2022). Challenges and opportunities for startups in Tier-II cities: A study of Uttar Pradesh. Global Journal of Commerce and Management Perspective, 11(4), 88–97.

ISSN : 2394-4366

Received: 12 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

Influence of Ethnographic Work in Political Science

- Prabhat Raut
Head,
Dept. of Political Science
Shrikrishna Mahavidyalaya,
Gunjoti - 413606 , Dist.
Osmanabad (Maharastra)

E-mail-
prabhat Raut11@gmail.com

Abstract

The objectivist truth claims traditionally pressed by most political scientists have made the use of ethnographic methods particularly fraught in the discipline. This article explores what ethnography as a method entails. It makes distinctions between positivist and interpretivist ethnographies and highlights some of the substantive contributions ethnography has made to the study of politics. Lamenting the discipline's abandonment of a conversation with anthropology after Geertz, this review also insists on moving beyond the anthropological controversies so powerfully expressed in the edited volume Writing Culture (1986) and other texts of the 1980s and 1990s. I contend that interpretive social science does not have to forswear generalizations or causal explanations and those ethnographic methods can be used in the service of establishing them. Rather than fleeing from abstractions, ethnographies can and should help ground them. (2009a) argued recently at the Institute for Qualitative Multi-Method Research in Syracuse: "Ethnography as a method is particularly unruly, particularly undisciplined, particularly celebratory of improvisation, bricolage and serendipity, and particularly attuned to the possibilities of surprise, inversion, and subversion in ways that other methods simply are not. If we think of the range of research methods in political science as a big family, ethnography is clearly the youngest, somewhat spoiled, attention-seeking child, always poking fun at and annoying her more disciplined, goal oriented, and outwardly-successful older siblings. Ethnography is the method who (sic) comes home to family reunions with the new mermaid tattoo, with the purple hair, with yet another belly button ring, and with a moody, melancholic artist for a girlfriend. At the dinner table, she is the method who interrupts her older brother's endless description of his stock portfolio with tales of the last full moon party on Phi Phi Island in Thailand. Given that kind of unruliness, it's no wonder that the older siblings and father figures of our discipline often revert to the language of "disciplining" and "harnessing" ethnography, of bringing her wild and unruly impulses under control by making her abide by the rules of the dinner table. In

short, ethnography may be fun and exciting, but she might also get you excommunicated from the family." The present paper aims to give influence or the reflection of ethnography in political science and its usefulness as a methodology in the political science.

Key Words- ***Culture, Falsifiability, Interpretive social science, Objectivity, Participant observation.***

What is ethnography?

Despite important disagreements among ethnographers about what the practice entails, most concur that ethnography involves immersion in the place and lives of people under study. It requires a commitment what some call a distinct "sensibility" (Pader 2006,

Yanow 2006, Schatz 2009 to chronicle aspects of lived experience and to place that experience in conversation with prevailing scholarly themes, problems, and concepts.

Ethnography also connotes a specific set of activities, such as "learning a local language or dialect; participating in the daily life of the community through ordinary conversations and interaction; observing events (meetings, ceremonies, rituals, elections, protests); examining gossip, jokes, and other informal speech acts for their underlying assumptions; recording data in field notes" (Bayard De Volo & Schatz 2004, p. 267). The term "participant observation" is often used as shorthand for the double nature of these activities, in which a researcher is both an actor and a spectator. [See Pachirat's (2006) sophisticated formulation. For a critique of the concept of participant observation, see Bourdieu (1990).]

This review begins by exploring what ethnography entails. It makes distinctions between positivist and interpretivist ethnographies and suggests some of the substantive contributions ethnography has made to the study of politics. Lamenting the discipline's abandonment of a conversation with anthropology after Geertz, this review also insists on moving beyond the anthropological controversies so powerfully expressed in Clifford & Marcus's edited volume Writing Culture (1986).

Non - interpretive and Interpretive Ethnography-

What distinguishes interpretive from non-interpretive ethnography? Take, for example, anthropologist Bruce Kapferer's (1972) network analysis of an African factory. Kapferer reduced interactions (which were themselves taken largely at face value) to abstract network morphologies that were then used to explain political outcomes such as strikes. As John Comaroff has explained to me (Wedeen 2009, p. 92), structural functionalists likewise asked questions to obtain "native" data on practices: Native responses were taken as indicative of the values they [informants] held. Nobody asked why, or what those statements meant, or what motivated them. The researcher then compared informants' answers to patterns of social practice in order to devise ethnographic generalizations that could then be narrated (by the researcher) as "systems" and "structures." For example, the ethnographer might ask informants what the rules governing devolution of rank were. If the natives said that male primogeniture was the pattern, then that was the ethnographic generalization. The researcher then counted cases in which it happened, and noted the deviation from the pattern, and how it was dealt with and then wrote secondary rules. The result was ethnography.

Again, there was no discussion of what those rules meant (in the case of rules involving devolution of status, an interpretive account might have included the rearrangement of power relations or a discussion of factional alignments). In these non-interpretive ethnographic accounts, the outcomes tended to be rationalized to fit the rules ex post facto. An interpretive ethnographer, by contrast, would look for the meaning of these rules in political communication, in the restructuring of power.

Ethnography and Truth Claims-

Good ethnography does not exist in isolation from theory, including theories of language, power, political action, and truth. And political scientists with a long-standing tradition in political theory might take advantage of their own disciplinary location to avoid some of the problems bedeviling past ethnographic work. Modes of political theorizing might also help to clear some of the conceptual fog that has hitherto obfuscated discussion about ethnography's significance for political science. In this light, political theory might help clarify the fraught discussion of "truth," its relationship to ethnographic research, and the conundrums both pose for political science.

By definition, there is no perfect correspondence between reality and representation, which means that some political scientists' attempts to use ethnographic observations as if they were raw material are necessarily flawed. But this tendency is no less problematic among quantitative social scientists when they treat quantitative data sets as unmediated sources of knowledge. The choice of proxies, the use of one definition as opposed to another, a reliance on information that is itself already ground through various interpretive mills make such endeavours akin to the ethnographic task of sorting and distilling, ordering and making intelligible observations that can contribute to a logically coherent explanation, or to criticize prevailing theories, or both.

Ethnography can give us access to this multiplicity, registering the phenomenological Account of the subject's experience while also crediting the analyst's distance from and disagreement worked to constitute a moral economy of village life (Pachirat 2009a discusses Scott in this light). Ethnography can situate truth claims in a broader context. Ethnography can also show us how such truth claims operate.

Conclusions-

1. Ethnography may be fun and exciting, but she might also get you excommunicated from the family." The present paper aims to give influence or the reflection of ethnography in political science and its usefulness as a methodology in the political science

2. Ethnography makes distinctions between positivist and interpretivist ethnographies and suggests some of the substantive contributions ethnography has made to the study of politics.

3. In non-interpretive ethnographic accounts, the outcomes tended to be rationalized to fit the rules ex post facto. An interpretive ethnographer, by contrast, would look for the meaning of these rules in political communication, in the restructuring of power.

4. there is no perfect correspondence between reality and representation, which means that some political scientists' attempts to use ethnographic observations as if they were raw material are necessarily flawed.

References

(1) Abeles, Marc 1989. Jours Tranquilles En 89. Ethnologie Politique D'Un Département Français. Paris : O. Jacob.

(2) Amborn, Hermann 1993. 'Handlungsfähiger Diskurs: Reflexion and Aktionsforschung.' Pp. 129–150 in Grundfragen der Ethnologie, edited by von Wolfdietrich Schmied-Kowarzik and Justin Stagl. Berlin : Reimer.

(3) Chatterjee, Partha 2004. The Politics of the Governed: Reflections on Popular Politics in most of the World. New York : Columbia University Press.

(4) Corbridge, Stuart, Glyn Williams, Manoj Srivastava and Rene Veron 2005. Seeing the State.

(5) Governance and Governmentality in India. Cambridge, UK : Cambridge University Press.

ISSN : 2394-4366

Received: 14 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

Philosophy of Personnal Management

- Dr. Ajay Gupta
Assistant Professor-
Department of Commerce,
D. S. N. (P.G.) College,
Unnao-209801 (U.P.)

E-mail-
hariparth1234@gmail.com

Summary

In the transformed complex which is based on modern scientific organised an technology production service requires an effort. The main theme of the productions culture is ideal utilization of diversed production factor. Thus it observed that the captain of the industry is busy with the task of optimum utilisation of resources is which are at has command. In the changed environment in the industries factor the care of man power has not lost sight off among the potential factors of production. Not-with-standing with fact that the automation has paved its way, human factor continue to be in dominance. In every industry the is revised and developed under personnel management. Not only this the continuous development in the field of technology, increase in the size of organisations and the complicated group behaviour of the personnel has made personnel management as most dynamic branch of business management. The system and scientific approach to the problem of recruitment, selection. development motivation and placement of the personnel in training. an organisation forms the functional field of Management or Personnel Management. a staffing Personnel Administration, Labour Management. Employee Relations, Industrial Relations, management and they are known by different names such as personnel Manpower Management or Personnel Management.

The primary concern of personnel management in the business and industrial management is to assist rise in a business organisation to the extent that he stands fair chance to develop his personality, business capacities so that he may carry the business from one mile-stone to another. However, this objective can be achieved by seeking cooperation of his staff and motivating them to work hard. He has ereate an army of willing and sincere workers which will be suitable man power at his back. A talented man power completely devoted to the industry is an important perquisite of a successful industry

Personnel Management is that part of management is concerned with people at work and with their relationships within the enterprises. Its main aim is to bring together organisation, the men and develop into and women an effective who make up an enterprise and having for being of the well the individual and of working groups to enable to make their best contribution for its success.

To an industry individuals are much more than factor of production. Their role as the consumers hardly be undermired. They create the demand of a can the product and promote it and design it for future. They and their family members set the pace and direction of consumption and ultimately the pattern of production. In lavs whic different capacities they influence the govern managers and ethics which guide human behaviour The human material of an enterprise is composed of a bi group of complex individuals with needs, inclinations, likes, dislikes and attitudes. these are combine together it represents the power of the human personnel. The delicacy of the in built of man power warrants a careful handling so tha desires When al productiv it can make its full contribution. Thus it considered that Personnel Management is concerned the obtaining and maintaining of satisfied work force.[1]

I can be with a satisfactory and Personnel Management is a code of organisinį and treating individuals at work so that they will eacl get the greatest possible realisation of their intrinsic abilities, thus attaining maximum effeciency for themselves and their groups and thereby giving the enterprise of which they are a part its determining competitive, advantage and its optimum results."[2]

The Personnel Management system transform Inputs into desired outputs. The inputs are challenges In the form of (usually Information) resources. Through personnel activities, and these human Inputs are transformed into the desired outputs, which become feedback to the Personnel management system.

Thus on the one hand the Personnel Management has to serve the interest of the enterprise by helping it to get the required type of men women and at the same time it has to see that they are able to satisfy their desires through work in the enterprises. This will serve the interest of both individuals and the enterprise. will help the business to achieve its goals, as it will create a congenial atmosphere in the industry in which the workers will be motivated to put in great labour and work efficiently.

In the end we can Personnel sum upthat Management is that branch of Management which concerned with recruitment, placement, is development motivation and maintanence workers. the supplanting significant of competent concept Personnel Management recognition This It. and and loyal rapidly of role Personnel Management play in the task and challenges In the an managing organisation, personnel of knowledge and professionalism surrounding personnel recognition personnel management departments in organisation must successfully face the contemporary and existing challenges. management effectively, and the growing body management. In return for this

England and America are the pioncer in the field personnel management. They set up this branch industrial and business organisation before world war. After words in the management personnel acquires much glamour and people began to consider it as an essential for the development of labour and industry. Indian industry also accepted the provision of personnel management in their organisations to achieve gain in th industrial and labour development, a positive effort this direction was made by the goal and the industry the fourth five year plan. Since than, person management has become a part and parcel Organisation of industry create congenial environment in the industry and Rome Labour officers were appointed to settle the disputes. In 1939 some Acts were passed to regulate the working hours of labours and Improvement in their working conditions. In 1941 the Government of India convened labour conference wherein labour producers and Government representatives took part to discuss the labour rules, settlement of disputes.

Thus it is observed that labour welfare on low keynote. The activities were performed exploitation of labourers continued unabatedly. The sproadic attempts were made to improve the worker's lot but the efforts were far from impressive. The labour welfare activities took fervour. rationality and unscientific approach. The personnel management as it is known to us today

was unknown and the question of making workers an equal partner in the industry was merely hypothetical.

(b) After independence : The attainment of independence-

A has proved to be a boom to industrial relation in our new culture emerged which accommodating. The importance of labour as an tool of production was recognised. A new philosophy of country. was soft and important rehabilitating long exploited class of workers in the

Aims of Personnel Management -

The aims of personnel management underlines the philosophy upon which the relations between the employees and the employers should stand. Such relations should have the considerations that workers are the Important organ of Industrial management and they play piviotal role in raising production. Hence they are ignored but are reckoned as potential force. They should be considered a part and parcel of organisation than a Then only new not rather strangers. environment of tralanquity will come to industry. These objectives are summerised in the following lines-

1. Optimum Individual Development Management should always keep an eye on the working of the workers and should develope such an atmosphere in the organisation which helps the workers to develope their personality. A worker is a diversed microscopic model who differs in ability, understanding. nature and tempraments. management should take note of these facts The while devising its manpower policy. They should design the a way that an policy in such an individual get opportunity of developing himself and gets satisfaction from his job.

2. Good Relationship between Management and Workers-

The main object of personnel management is to create and maintain a sound working relationship between managament and workers. The personnel management should the make the top management realise that labour is a human commodity and should be given a humane treatment. So that workers completely Identify themselves with the industry. The feeling that an industry belongs to them should be fostered in them. Then only the desired goal can be achieved of Therefore, that 3. Effective moulding of the human resources as against the physical resources: Labour is an active factor production. It makes other factors to work. the management should create such measures human resources become more effective in production. They should realise the difference between this and the others. If the management does not mould human resources then physical in production remain unutilised and ineffective. the factor factors will-

Specific objectives of Personnel Management -

1. Selection of Employees - The induction of a to the industry is the main task of management. the is a person personnal proper The underlying objective selection which is free from bias, prejudices and other passions. It is the primary objective of a personnal management to see that an appropriate person is selected for a job. The selected person should have a talent perform the jobs which is assign to him to The assignment should be according to his nerves and does not run away from it.

2. Induction of the new employees to job- A newly Induction of the new employees to selected employees should not be sent directly jer place of job because he will not able to handle his work to the stranger properly as he is not acquainted with the job which has been assigned to him. He will find himself a without understanding he will not be able competence. He will find himself in the midst of and his difficulties and will soon get frustrated. For to show better results it is necessary that he is trained for the job and is made well versed so that he puts in both his brain and brawn. Thus it is yet another important objective of personnal management to educate a newly inducted person before he is asked to act. Failing to this the objective of proper and careful selection will be lost.

Some job training is also necessary for the workers. In government services, administrators are selected through comprehensive selection test. before they are placed on the job they are sent to

Administrative Staff Training College. Police and Army Officers need more comprehensive training. Banks, many But some commercial and industrial undertaking have their OW staff colleges. The personnal management should aim at creating and maintaining such institutes. or make provisions for training their staff. This would minimise waste, avoid accidents and damage to the machine and will enhance efficiency.

3. Provision working conditions and facilities- better of better Personnel Management should see that a service conditions exist in its Industry. 11 should work out its economics and should assess as what t no at jo extent it contributes towards enhancing labour productivity. Good working conditions pecuniary and pecuniary incentives like for wage structure, bonus welfare activities, incentives and assured motivates a worker to put in whatever he possesses to the industry. Obviously it will help the industry it will be able to expand its working at minimum CO Thus it is imperative that a better working condition is a boom both to the management and to the workers. is a quality of a good personnel management which industry crave for. e.

4. Fair Consideration: Another selective obje - which a management should adopt is impartiality in behaviour. The principle of justice and ethics sho adopted in the dally routines of an industry. It should discriminate and be partisi not in appointment termination facilities to of granting in inago service, promotion and Its employees. It will improve the of the organisation in the public and will assure peace and smooth functions.

5. Relationship with Trade Unions - Last but not the have least. another objective of good management is to cordial industrial relation. For unfettered development of an industry it is essential to give due to labour and their organisation. Thus it is recognition imperative that the worker's right of trade unionism should be accepted. It is the responsibility of the management convert a to labour organisation as a consitructive institution. It should be involved in the administrative and productive activities of the industry. This management labour combine will give much confidence among the workers and they will start the industry and will do all possible to develop the needed owning industry.

To sum up, it can be said that the objective of personnel manegement is to satisfy the workers at In doing so the personnel management only serves.

Personnel management is the most aspect of modern management. It is a symbol of important rational and scientific administration. Now a days it has become a corner stone of administrative structure of industrial and commercial It is a nerve centre of complex. industrial and commertial hierachy. Every concern strive for earning maximum profit. For this it completely overhaul its productions, marketing and organisational set-up. However, this efforts of adjustments and readjustment can only be fruitful when manpower at work plays its role effeciently and honestly. Here we that there is a positive role to play by personnel management. It find staff to has to motivate other junior become work conscious and it can be done when it has fair deal with them.

Reference

1. Blum, M. 1. "Industrial Psychology, Hanper and Row, New York.
2. Chand, Ram - Personnel Management Problems India, Premier Publishing, London.
3. Dawar Rustam, S. - "Personnel Management and Industrial Relations in India" Vikas Publishing House, New Delhi.
4. Kulkarni, P.V. - Personnel Management, Hamilaya Pubulishing House, Bombay .
5. Porthcott C. H - Personnel Management, Principles and Practices, Mc Graw Hill, Personnel Administration, A point of view and a Method-McGraw Hill. Personnel Management in India, The Practical Approach relations to human by Personnel India. Compiled Indian Institute of personal Management.
6. Zachariah, K.A. - Personnel Problems Relations, Himalaya House, Bombay, and Industrial Puolisning.
7. Pigors and Meyers - Personnel Administration, Publishing House, Bombay.
8. Famashastri J.V.C. - Nationalisation Role, Bombay and Managerial.
9. Sers, E.A. - Hand Book of Corporation Management and Procedure, New York.
10. Lotia, C. - Managerial Problems of publuc Sector in India, Bombay.

ISSN : 2394-4366

Received: 16 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

GLOBAL CLIMATE CHANGE

- Prof. (Dr.) Manju Awasthi
Department of Economics,
D. B. S. (P.G.) College, Kanpur-208006 (U.P.)

E-mail-
manjuawasthi1965@gmail.com

- Dr. Archana Mishra
Assistant Professor -
Department of Botany,
D. A. V. (P.G.) College,
Kanpur-208001 (U.P.)

E-mail-
archnamishra11@gmail.com

Abstract

Climate change is one of the major challenges of our time and adds considerable stress to our societies and to the environment. From shifting weather patterns that threaten food production, to rising sea levels that increase the risk of catastrophic flooding, the impacts of climate change are global in scope and unprecedented in scale. Without drastic action today, adapting to these impacts in the future will be more difficult and costly. This overview deals with the concept of Global Climate Change, the associated terms, causes, consequences, solutions and its potential health impact. It shows the need to act urgently if we are to avoid an irreversible build-up of greenhouse gases (GHGs) and global warming atapotentially huge cost to the economy and society world wide. Therefore, addressing climate change requires an "unprecedented level of cooperation, not only between countries, but also between different levels of Governments, private sector and individuals.

Keywords - ***Global, Climate Change.***

1. Introduction-

The evidence of climate change is compelling : sea levels are rising, glaciers are retreating, precipitation patterns are changing, and the world is getting warmer. According to the Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC), the current rate of greenhouse gas emissions is likely to cause average temperatures to rise by 0.2℃ per decade, reaching by 2050 the threshold of 2℃ above pre-industrial levels. Recent evidence suggests even more rapid change, which will greatly, and in some cases irreversibly, affect not just people, but also species and ecosystems (Elizabeth et al., 2010).

Climate change indeed is real. Super typhoon Haiyan is the latest natural disaster that has also led credence to the reality of climate change. This sad occurrence hit land and devastated the Philippines. This record-breaking storm is the strongest storm in history to make landfall. It tore apart buildings and left entire provinces without power or communication. The 370-mile-wide storm packed winds 3.5 times as strong as Hurricane Katrina. Winds reached 195 mph and had gusts of up to 235 mph. Walls of water as high as fifteen feet swept over the countrywashing away townson many islands and washedships ashore wherehomes

oncestood. The U.N.says, "Around 920,000 people were displaced by the storm and a total of 11.8 million people have been affected. Officials said the deadly storm left more than 3850 injured and at least 77 people reported missing across the Philippines."(The Argo, 2013).

Climate change is a serious risk to poverty reduction and could undo decades of development efforts. While climate change isglobal, itsnegative impactsare more severely felt by poor people and poor countries. They are more vulnerable because of their high dependenceon natural resources and limited capacity to cope with climate variability and extremes. Restoring and maintaining key ecosystems can help communities in their adaptation efforts and support livelihoods that depend upon the services of these ecosystems. Moving towards low-carbon societies can help reduce greenhouse gas emissions, improving human health and well-being and creating green jobs.

Climate change is a fact of life. We need to act urgently if we are to avoid an irreversible build-up of green- house gases (GHGs) and global warming at a potentially huge cost to the economy and society worldwide. Organisation for Economic Co-operation and Development (OECD) analysis suggests that if we act now, we have 10 to 15 years' "breathing space" during which action is possible at a relatively modest cost. But every year of delay reduces this breathing space, while requiring ever more stringent measures to make a difference. Current financial turmoil is not a reason to delay. Indeed, its macroeconomic consequences will be resolved in a relatively short time, after which growth will resume, while the consequences of inaction on global warming will continue to grow more and more costly over time.

This study presents an overview of Global Climate Change with a view to help appreciate the concept, its urgency and to give an insight to the ways it affects society and the natural environment and proffering solutions.

2. Defining Weather and Climate-

Weather is the state of the atmosphere at a specific time in a specific place. Temperature, cloudiness, humidity, precipitation, and winds are examples of weather elements. Thunderstorms, tornadoes, and monsoons are also part of the weather of some places during some seasons.

Climate is defined as long-term weather patterns that describe a region. For example, the New York metropolitan region's climate is temperate, with rain evenly distributed throughout the year, cold winters, and hot summers.

2.1. Climate Variability and Climate Change

Climate variability refers to variations in the prevailing state of the climate on all temporal and spatial scales beyond that of individual weather events. Variability may be due to natural internal processes within the climate system, or to variations in natural or anthropogenic (human-driven) external forcing. Global climate change indicates a change in either the mean state of the climate or in its variability, persisting for several decades or longer. This includes changes in average weather conditions on Earth, such as a change in average global temperature, as well as changes in how frequently regions experience heat waves, droughts, floods, storms, and other extreme weather. It is important to note that changes in individual weather events will potentially contribute substantially to changes in climate variability. Climate change could occur naturally as a result of a change inthe sun's energy or Earth's orbital cycle (natural climate forcing), or it could occur as a result of persistent anthropogenic forcing, such as the addition of green house gases, sulfate aerosols, or black carbon to the atmosphere, or through land - use change.

2.2. Climate System-

Climate is a complex and interactive system. It consists of the atmosphere, land surface, snow and ice, oceans and other water bodies, and living beings. Among these, the first component, atmosphere characterizes climate.

Various external factors influence the internal dynamics of the Climate Systems and

these include natural phenomena such as volcanic eruptions and solar radiations, as well as human-induced changes in atmospheric composition. The entire climate system gets the power and energy from the Sun. The radiation balance of the Earth mayget modified by three fundamental ways: (1) by changing the incoming solar radiation; (2) by changing the fraction of solar radiation that is reflected (called "albedo"); and (3) by altering the long wave radiation from Earth back towards space Climate, in turn, responds directly to such changes, as well as indirectly, through a variety of feedback mechanisms.

2.3. Why "Global Warming" ss the Wrong Term-

Global warming (as well as global cooling) refers specifically to any change in the global average surface temperature. Global warming is often misunderstood to imply that the world will warm uniformly. In fact, an in- crease in average global temperature will also cause the circulation of the atmosphere to change, resulting in some areas of the world warming more, others less. Some areas can even cool. Unfortunately, although it significantly misrepresents what really happens, the term' global warming' is still often used by media and others to describe climate change. Climate change is more than a warming trend (which is why the term "global warming" is an inaccurate description of the phenomenon).

2.4. Brief History of International Agreements on Climate Change-

For the first timein June, 1988 at the World Conference on the Changing Atmosphere in Toronto, politicians and scientists conclude "humanity is conducting an unintended, uncontrolled, globally pervasive experiment whose ultimate consequences could be second only to a global nuclear war." The conference recommends reducing carbon dioxide emissions 20% by 2005. In the same year IPCC published its First Assessment Report, which highlighted the increasing accumulation of human-made greenhouse gases in the atmosphere. The first Conference of the Parties (1995) in Canada, realized the need of binding commitments by industrialized countries are required to reduce emissions. In December 1997 around 150 countries signed the Kyoto Protocol, which binds 38 industrialized countries(called Annex 1 countries) to reduce green house gas emissions by an average of 5.2% below 1990 levels for the period of 2008-2012. The Kyoto Protocol became international law on 16 February, 2005.

For any nation, the more urgent priorities like economic development always tends to take over threats like climate change or global environment change and this is why it is so difficult to achieve a coordinated international response to such issues. Recently, United Nations Climate Change Conference in Bali, Indonesia (December, 2007) was attended by representatives from over 180 countries, together with observers from intergovernmental and nongovernmental organizations. Participants agreed on "Bali roadmap", which provide guidelines to reach a treaty by the end of 2009 to replace the Kyoto Protocol. That year in April during the UN Climate Talks in Bangkok – the first meeting after the Bali conference – an ambitious timetable had been developed to complete the complex negotiations on a new climate deal in time for the UN Climate Conference in Copenhagen in December 2009.

2.5. Green house Effect-

A natural system known as the "greenhouse effect" regulates temperature on Earth. Just as glass in a green house keeps heat in, our atmosphere traps the sun's heat near earth's surface, primarily through heat-trapping properties of certain "gree house gases". Earth is heated by sunlight. Most of the sun's energy passes through the atmosphere, to warm the earth's surface, oceans and atmosphere. However, in order to keep the atmosphere's energy budget in balance, the warmed earth also emits heat energy back to space as infrared radiation. As this energy radiates upward, mostis absorbed by clouds and molecules of green house gases in the lower atmosphere. These re-radiate the energy in all

directions, some back towards the surface and some upward, where other molecules higher up can absorb the energy again. This process of absorption and re-emission is repeated until, finally, the energy does escape from the atmosphere to space. However, because much of the energy has been recycled downward, surface temperatures become much warmer than if the greenhouse gases were absent fromthe atmosphere. This natural process is known as the greenhouse effect. Without greenhouse gases, Earth's average temperature would be - 19℃ instead of +14℃, or 33℃ colder. Over the past 10,000 years, the amount of green house gases in our atmosphere has been relatively stable. Then a few centuries ago, their concentrations began to increase due to the increasing demand for energy caused by industrialization and rising populations,and due to changing land use and human settlement patterns.

2.6. Green house Gases-

The green house gases and the irsources areas follows:

Water vapouris the most common green house gas but others are very important too. Some occur naturally and some come from human activity.

Carbon dioxide or Co_2 is the most significant green house gas released by human activities, mostly through the burning of fossil fuels. It is the main contributor to climate change.

Methane is produced when vegetation is burned, digested or rotted with no oxygen present. Garbage dumps, rice paddies, and grazing cows and other livestock release lots of methane

Nitrous oxide can be found naturally in the environment but human activities are increasing the amounts. Nitrous oxide is released when chemical fertilizers. Nitrous oxide is released when chemical fertilizers and manure are used in agriculture.

Halocarbons are a family of chemicals that include CFCs (which also damage the ozone layer), and other human-made chemicals that contain chlorine and fluorine.

2.7. Since Green house Gases Makeup Sucha Small Percentage of the Atmosphere,Why Do Changes in Their Concentrations Have Such a Big Effect onClimate?

Most green house gases are extremely effective at absorbing heat escaping from the earth and keeping it trapped. In other words, it takes only small amounts of these gases to significantly change the properties of the atmosphere. 99% of the dry atmosphere consists of nitrogen and oxygen, which are relatively transparent to sunlight and infrared energy, and have little effect on the flow of sunlight and heat energy through the air. By comparison, the atmospheric green house gases that cause the earth's natural green house effect total less than 1% of the atmosphere. But that tiny amount increases the earth's average surface temperature from - 19℃ to +14℃—a difference of about 33℃. A little bit of green house gas goes a long way. Because the concentration of green house gases in the atmosphere is so low, human emissions can have a significant effect. For example, human emissions of carbon dioxide (CO_2) currently amount to roughly 28 billion tonnes per year. Over the next century human emissions will increase the concentration of carbon dioxide in the atmosphere from about 0.03% today to almost certainly 0.06% (a doubling), and possibly to 0.09% (a tripling).

2.8. Causes of Global Climate Change-

Earth's climate changes naturally. Changes in the intensity of sunlight reaching the earth cause cycles of warming and cooling that have been a regular feature of the Earth's climatic history. Some of these solar cycles – like the four glacial-interglacial swings during the past 400,000 years extend over very long time scales and can have large amplitudes of 5℃to 6℃. For the past 10,000 years, the earth has been in the warm interglacial phase of such a cycle. Other solar cycles are much shorter, with the shortest being the 11 year sunspot cycle. Other natural causes of climate change in clud evariations in ocean currents (which can alter the distribution of heat and precipitation) and large eruptions of volcanoes (which can sporadically

increase the concentration of atmos-pheric particles, blocking out more sunlight). Still, for thousands of years, the Earth's atmosphere has changed very little. Temperature and the balance of heat-trapping green house gases have remained just right for humans, animals and plants to survive. But today we're having problems keeping this balance. Because we burn fossil fuels to heat our homes, run our cars, produce electricity, and manufacture all sorts of products, we are adding more green house gases to the atmosphere. By increasing the amount of these gases, we have enhanced the warming capability of the natural greenhouse effect. It's the human-induced enhanced green house effect that causes environmental concern, because it has the potential to warm the planet at a rate that has never been experienced in human history.

2.9. Consequences of Global Climate Change-

Although the consequences of climate change could be discussed under a number of different categories, the scope of this discussion limits it to both natural and economic consequences.

2.9.1. Natural Consequences-

These are already visible, for instance, temperatures are rising, polar caps are melting, sea level is rising, the desertification increases and the winters in Europe become ever wetter. It has been scientifically demonstrated that Mount Kilimanjaro through the years contains less and less snow as a consequence of global heating. It is questionable whether this mountain in Tanzania will be coveredwith snow at all in 50 years.It is also concluded that the number of natural disasters increases more and more. Tsunamis, floods and extreme drought occur morefrequent thanin timespast. Inthe period1950-1960worldwide 13natural disasters havebeen registered,against 72 in the period 1990-1998. Now already the consequences are clearly demonstrable and most likely they will only increase in extent and frequency in the future.

The IPC Cpredicts that climate change will become apparent in the following main ways:

- By around 2100 global temperatures will have risen by between 1.1℃ and 6.4℃. The exact increase de- pends on future emissions of green house gases and other pollutants and on the combined action of physical and chemical processes in the atmosphere.
- Some parts of the world will receive more precipitation,with others be coming drier.
- In the course of the present century sea levels will rise by between 18 and 59 centimetres. This is because warmer water occupies more space than cold water and because of the retreat ofglaciers and polar ice sheets. Our understanding of the melting of the Greenland and Antarctic ice sheets is still incomplete. This, together with the fact that there may be large regional variations in sea level rise, means that in some parts of theworld the consequences may be even more dramatic than predicted by IPCC.
- The Gulf Stream, which transports relatively warm water from the Caribbean to Europe, is expected to de-cline in strength, causing temperatures in northwest Europe to rise less markedly than elsewhere. Standard climate models, however, make no allowance for an abrupt change in the Gulf Stream.

1.1.2. EconomicConsequences-

Changes in global climate will have enormous consequences for living nature as well as the economy. Even a small rise in mean annual temperature can have a major impact on a region's ecology and biological diversity (Pounds & Puschendorf, 2004). Biodiversity is of crucial importance for the stability of ecosystems as well asforhuman health (Harvard, 2002).Theeconomic impact ofdrought, floods and other climate change effects will become quite substantial. Some researchers estimate that these costs are set to rise to between 5% and 20% of global income (Stern, 2006). The IPCC has not yet managed to provide a rock-solid cost estimate of the consequences of climate change. It has estimated the cost of limiting further change, though. If such action is taken, global income will grow by only slightly less than if nothing is done: overall economic

growth up to the year 2030 would then be 3 percentage points lower (57% instead of 60%, for example).

Avoiding extreme climate change is also important if the "Millennium Development Goals" are to be achieved, formulated by the United Nations as follows-

- Eradicate extreme poverty and hunger.
- Achieve universal primary education.
- Promot egende requality and empower women.
- Reduce child mortality.
- Improvematernal health.
- Combat HIV / AIDS, malaria and other diseases.
- Ensure environmental sustainability.
- Develop aglobal partnership for development.

That climate policy and the Millennium Goals go hand in hand is readily illustrated. In regions where climate change leads to more severed rought, for example, poverty and hunger will be exacerbated rather than eradicated. Climate change will mean that malaria spreads further round the globe rather than being effectively combated. The multiple impacts of climate change on biodiversity will mean less environmental sustainability, not more. The message is clear: if climate change is not halted, the Millennium Goals will simply not be achieved.

1.2. Potential Health Impacts of Climate Change -

Global climate change would affect human health via pathways of varying complexity, scale and directness and with different timing. Similarly, impacts would vary geographically as a function both of environment and topography and of the vulnerability of the local population. Impacts would be both positive and negative (although expert scientific reviews anticipate predominantly negative). This is no surprise since climatic change would disrupt or otherwise alter a large range of natural ecological and physical systems that are an integral part of Earth's life support system. Via climate change humans are contributing to a change in the conditions of life on Earth.

The main pathways and categories of health impact of climate change are shown in **Figure-1**.

- Some parts of the world will receive more precipitation, with others becoming drier.
- In the course of the present century sea levels will rise by between 18 and 59 centimetres. This is because warmer water occupies more space than cold water and because of the retreat of glaciers and polar ice sheets. Our understanding of the melting of the Greenland and Antarctic ice sheets is still incomplete. This, together with the fact that there may be large regional variations in sea level rise, means that in some parts of theworld the consequences may be even more dramatic than predicted by IPCC.
- The Gulf Stream, which transports relatively warm water from the Caribbean to Europe, is expected to de- cline in strength, causing temperatures in northwest Europe to rise less markedly than elsewhere. Standard climate models, however, make no allowance for an abrupt change in the Gulf Stream.

2.9.2. Economic Consequences-

Changes in global climate will have enormous consequences for living nature as well as the economy. Even a small rise in mean annual temperature can have a major impact on a region's ecology and biological diversity (Pounds & Puschendorf, 2004). Biodiversity is of crucial importance for the stability of ecosystems as well asforhuman health(Harvard, 2002). The economic impact of drought, floods and other climate change effects will become quite substantial. Some researchers estimate that these costs are set to rise to between 5% and 20% of global income (Stern, 2006). The IPCC has not yet managed to provide a rock-solid cost estimate of the consequences of climate change. It has estimated the cost of limiting further change, though. If such action is taken, global income will grow by only slightly less than if nothing is done : overall economic growth up to the year 2030 would then be 3

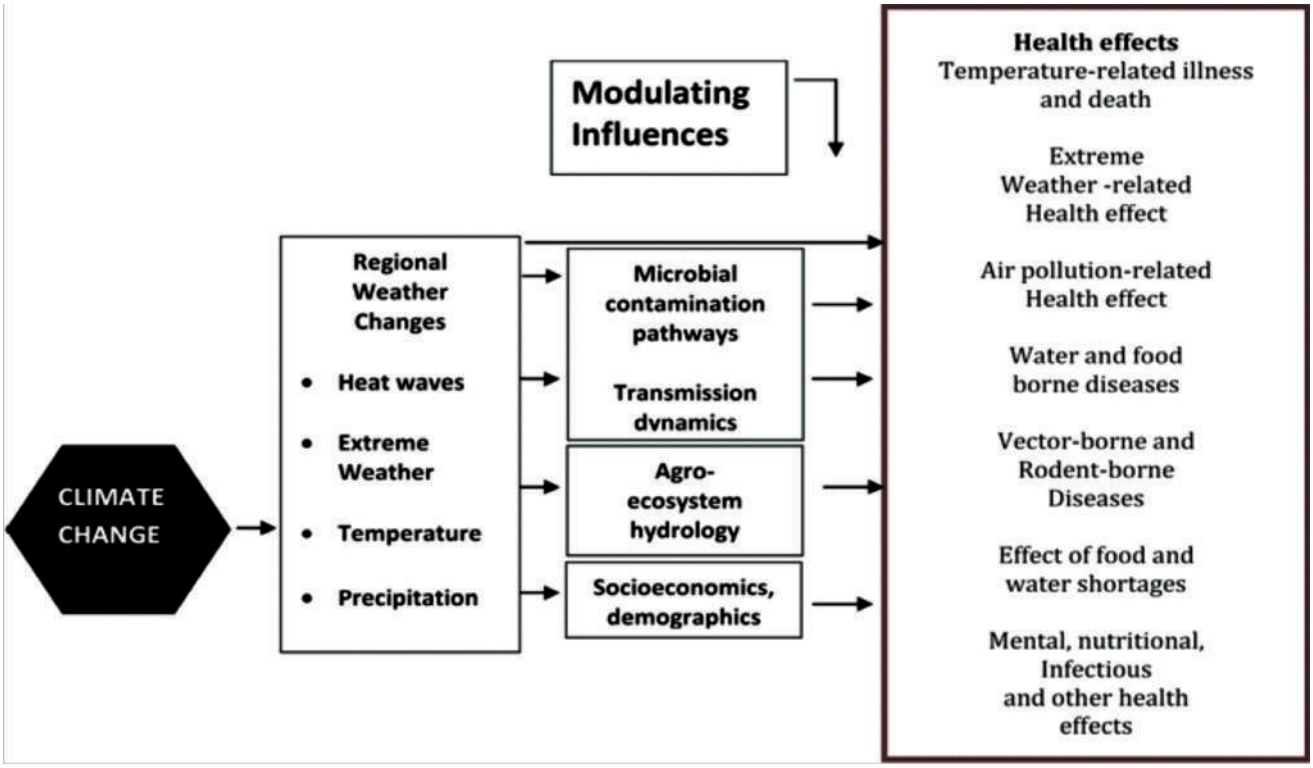

percentage points lower (57% instead of 60%, for example).

Avoiding extreme climate change is also important if the "Millennium Development Goals" are to be achieved, formulated by the United Nations as follows-

- Eradicate extreme poverty and hunger.
- Achieve universal primary education.
- Promote gender equality and empower women.
- Reduce child mortality.
- Improve maternal health.
- Combat HIV/AIDS, malaria and other diseases.
- Ensure environmental sustainability.
- Develop aglobal partnership for development.

That climate policy and the Millennium Goals go hand in hand is readily illustrated. In regions where climate change leads to more sever edrought, for example, poverty and hunger will be exacerbated rather than eradicated. Climate change will mean that malaria spreads further round the globe rather than being effectively combated. The multiple impacts of climate change on biodiversity will mean less environmental sustainability, not more. The message is clear: if climate change is not halted, the Millennium Goals will simply not be achieved.

2.10. Potential Health Impacts of Climate Change-

Global climate change would affect human health via pathways of varying complexity, scale and directness and with different timing. Similarly, impacts would vary geographically as a function both of environment and topography and of the vulnerability of the local population. Impacts would be both positive and negative (although expert scientific reviews anticipate predominantly negative). This is no surprise since climatic change would disrupt or otherwise alter a large range of natural ecological and physical systems that are an integral part of Earth's life support system. Via climate change humans are contributing to a change in the conditions of life on Earth.

The main pathways and categories of health impact of climate change are shown in Figure-1. **(See Figure-1)**

1. Pathways by which climate change affects human health including local modulating influences and the feedback influence of

adaptation measures. Source : adapted from Patz et al., 2000.

The more direct impacts on health include those due to changes in exposure to weather extremes (heatwaves, winter cold); increases in other extreme we a the revents (floods, cyclones, storm-surges, droughts); and increased production of certain air pollutants and aeroallergens (spores and moulds). Decreases in winter mortality due to milder winters may compensate for increases in summer mortality due to the increased frequency of heatwaves. In countries witha highlevel of excess wintermortality, such as the United Kingdom, the beneficial impactmay out weigh the detrimental (Langford & Bentham, 1995; Rooney et al. 1998). The extent of change in the frequency, intensity and location of extreme weather events due to climate change remains uncertain.

Climate change, acting via less direct mechanisms, would affect the transmission of many infectious diseases (especially water, food and vector-borne diseases) and regional food productivity (especially cereal grains). In the longer term and with considerable variation between populations as a function of geography and vulnerability, these indirect impacts are likely to have greater magnitude than the more direct (Mc Michael & Githeko, 2001; Epstein, 1999).

For vector-borne infections, the distribution and abundance of vector organisms and intermediate hosts are affected by various physical (temperature, precipitation, humidity, surface water and wind) and biotic factors (vegetation, host species, predators, competitors, parasites and human interventions).

By reflecting the increased retention of heat energy in the lower atmosphere, global warming also affects the atmospheric heat budget so as to increase the cooling of the stratosphere (Shindell et al., 1998) Should this cooling persist, the process of ozone depletion could continue even after chlorine and bromine loading (by human emission of ozone-destroying gases) starts to decline. If so, the potential health consequences of stratospheric ozone depletion (increase in incidence of skin cancer in fair-skinned populations; eye lesions such as cataracts; and, perhaps, suppression of immune activity) would become an issue for climate change.

1.1. MitigationSolutions-

Between 1970 and 2004 global emissions of greenhouse gases rose by 70%, mainly as a result of rising energy consumption. The Co_2 emissions of electrical power stations, factories, motorvehicles, homes, offices and other sources grew even greater: by 80%. Developed countries are responsible for half the world's Co_2emissions.

While the share of emerging economies like China and Latin Americain global Co_2 emission sisrising, itis still far less than that of Europe and the United States taken together (both in absolute terms and per head of the population.) If no action is taken, global Co_2 emissions are projected to rise by a further 45% to 110% between 2000 and 2030.

In many of the world's regions and countries governments have introduced policies to reduce emissions of Co_2 and other green house gases. This is often referred to as mitigation policy. A case in point is the Kyoto Protocol, under which industrialized countries have committed themselves to a certain cut in emissions; this has not been ratified by Australia or the US, however. The European Union has an additional policy target of reducingits Co_2 emissions by twenty to thirty percent by the year 2020 relative to 1990. One of the key instruments for securing these targets is the European "carbon emissions trading scheme". At the national and local level, too, action is being taken by governments as well as environmental organizations. One example of the latter type of action is Green-4 sure, a green energy plan presented to the Dutch government in 2007 by the Netherlands' largest environmental and trades unions organizations.

Young people themselves can also take action to limit climate change. The first step is for them to realize that many everyday activities – computer gaming, showering, travel, and so onconsume energy and that energy is also required

to produce food, clothing, cars, buildings and all kinds of other products. Everyone uses energyand every unit of energy consumed can further exacerbate climate change. It's therefore important to realize that all of us share some of the responsibility for climate change. What we ourselves can do to tackle climate change depends very much on our personal situation. It therefore makes sense to first work out how high your green-house gas emissions are, for example by going to one of the following websites-

- www.carbonfootprint.com
- www.climateneutralgroup.com
- www.carbonneutral.com
- www.co_2meter.nl

These sites will then point you to ways of reducing your emissions. There are three golden rules for cutting your personal Co_2 emissions-

(1) Use as little energy as possible-

- Replace old window panes with double - glazing (HR^{++} grade) and improve your home by insulating the floor, cavity-walls, loft and roof.
- Replace your old central heating system with a high-efficiency heater and makes are the system gets regular maintenance.
- Turn your central heating down adegree or two and putiton the night-time setting half an hour earlier.
- Avoid using air-conditioning systems if you can, using a fan, for example; if you do buy an airco, have a good look at the energy label.
- Use power socket swith on-off switches for your adapters, to ensure that energy is not being wasted when equipmentis on stand-by.
- Replace old inc and escent light bulbs with compact fluor escent ones.
- To save (heated) water, fitalow-energy shower head and takes horter showers; use a solar boiler for your hot water.
- Only use appliances with an A - label or better for energy use.
- Say not o energy-guzzlers like tumble dryers, plasma Tvs and water beds.

(2) Try and ensure the energy you do use comes from renewable sources (wind, water, solar).

(3) Compensate for any fossil energy you use by supporting energy efficiency projects or by other means (a variety of schemes are available).

When it comes to reducing emissions of the other main green house gases – methan eandnitrous oxide – the single best tip is to eat less meat and more organically grown food.

1.2. Adaptation Solutions-

Adaptation is processes through which societies make themselves better able to cope with an uncertain future. Adapting to climate change entails taking the right measures to reduce the negative effects of climate change (or exploit the positive ones) by making the appropriate adjustments and changes (UNFCCC, 2007). The Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC) defines adaptation as 'adjustment in natural or human systems inresponse to actual or expected climatic stimuli or their effects, which moderates harm or exploits beneficial opportunities (IPCC, 2009). The consequences of climate change can be seen all over the world. Sea level rise, flooding, hotter summers and wetter winters are the picture of present and future. The key question is to what extent these changes will persist and how we should adapt to them. Contrary to mitigating measures, adaptive solutions do not contribute to a reduction of the climatological problems. Instead, we reconcile ourselves to the changes and adapt ourselves as best we can to the consequences. This means that much infrastructural development will be needed: raising of dikes, improving of sewer systems, making more space for water and similar measures. We must become conscious of the fact that we will not always be safe anymore (from flooding), but we must adapt ourselves to the changes-

- Se a levelrising / floods / water nuisance.

When considering the rising of the sea level and the increased possibility of floods in a country, the Nether- lands for example, there are two courses to a solution. On the one side the Dutch can protect their country even better by raising the dikes and reinforcing the coastal areas. But by doing this, the consequences in case of a failure (the bursting of a dike) will only be worse. In fact, raising dikes will only be like building a high protecting wall around the country, creating a kind of 'bath tub' at the same time. If the protection wall fails the consequences will be greater. Another adaptive solution is learning to live with floods. Instead of concentrating on reinforcing the protecting areas (dunes and dikes) we rather put our efforts in limiting the consequences. Thistoo will reduce the risk. After all, risk is defined as opportunity x consequence. If the opportunity remains the same, but the consequences are less severe, the risk will decrease. And exactly the limiting of the consequences can be started off on local government level. You could think of local policies like "no constructions in lower areas of the country" or on the contrary "specially adapted constructions in lower areas of thecountry".

Drought and Desertification-

The UN-plan that was passed in 1994 underlines a "bottom-up"-approach, with which one wants to find particularly local solutions to prevent desertification together with the local communities. One tries to find the solution in sustainable development, tackling social, economic and ecologic problems at one time. A similar attitude requires quite a co-ordination and close collaboration between regional, national and international bodies, but environmentalists are not convinced that the political will to take measures is strong enough to turn the tide. To resist the advancing desertification, in 1994 the Convention to Combat Desertification (CCD) was established,as a consequence of the Earth summit of 1992. The Convention, which in the meantime has been signed by 191 countries, entered into force in December 1996. To make degraded ecosystems fertile again is a long lasting process and requires an integrated approach of rural development, expansion of irrigation systems and application of new technologies. Still, it is possible. In China the quantity of fertile soil vanishing yearly dropped be- tween 2000 and 2004. In February the Chinese government launched a plan to reclaim 250.000 square kilometres from the desert by 2020 by means of planting trees and grass. Also, the Chinese government wants to invest in dry regionsin theefficientuseofwaterand renewableenergy sources,such aswind and water.Furthermore,it is the opinion of the UN-Environmental organization (UNEP) that where it is difficult toturn the tide, one should make a virtue of necessity. The story of a report that was published 5 June ran as: "As long as deserts become more inhospitable and less suitable for human habitation, wemust be imaginative and take advantage of the new situation". UNEP sees an important potential particularly for the exploitation of solar energy, fish- production, research of the medicinal properties of desert plants and the breeding of crops resistant to drought and salinity. Also, new technologies to develop more efficient irrigation systems and to desalinate estuaries could help.

Heat-

Temperature rise caused by climate change can in extreme situations (heat) have a direct negative impact on the human health. Possible health effects in Europe are: problems by heat stress, increase of the spreading of Lyme's disease, effects of bad air quality (summer smog) and an increase of allergies. Population groups at high risk (such as the elderly, children or asthmatic people) may experience stronger effects (a greater sickness bur- den). Policy can play an important role in the limiting of the health effects of climate change. The Netherlands ought to be capable to resist certain health effects of climate change, by means of the maintaining/improving of existing policies or with new policy decisions. Little is known about biological or passive adaptation of man to climate change (for example acclimatization, immunization). Possible policy

options/adaptation possibilities are amongst others:

- Improving of living conditions, e.g. airconditioning, ventilation.
- Improving of preventive / curativeheal thcare, e.g. personnel with special educations, vaccination.
- Monitoring / alarm systems.
- Public information / education.
- Some adaptation possibilities will be more effective and / orcost-effective than others.

2. Conclusion-

Climate change is happening and it is caused largely by human activity. Its impacts are beginning to be felt and will be worsen in the decades ahead unless we take action. The increasing rate of global warming courtesy of carbon dioxide and other green house gas emissions from human activities have led to climatic changes and environmental degradation, which in turn have resulted to great challenges in relation to diseases and human health. Many diseases which were previously unknown in certain climatic zones are now finding their way to such areas, due to changes in the weather conditions. Further, many diseases that had been thought extinct are reemerging in areas with altered climatic conditions that favor their comeback. It is therefore important that stakeholders and decision makers at industrial, government and international policy levels come up with stringent and workable means of cutting down on green house gases emission to combat the spread of global warming effects, and the resultant climate change, which has produced devastating impacts especially among poorer nations. Further, there should be increased funding of adaptation and coping programs and projects in affected areas to minimize the impacts on human health and curtail the spread of diseases.

References

1. Climate Change Information Resources, New York Metropolitan Region. hhttp://ccir.ciesin. columbia.edu / nyc / pdf / q1a.pdf Epstein, P. R. (1999). Climate and Health. Science, 285, 347-348.
2. Harvard, & Chivian, E. (2002) Biodiversity : Its Importance to Human Health Harvard Medical School. IPCC On line, Glossary of Terms Usedin the IPCC Third Assessment Report (2001) IPCC _ Third _ Assessment _ Report (Accessed December 2009).
3. Langford, I. H., & Bentham, G. (1995). The Potential Effects of Climate Changeon Winter Mortality in England and Wales. International Journal of Biometeorology, 38,141-147.
4. Mc Carthy,J.J.etal.(2001). Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change. New York, USA : Cambridge University Press.
5. Mc Michael, A. J., & Githeko, A. Human Health. In : Climate Change 2001 : Impacts, Adaptation, and Vulnerability. Contribution of Working Group II to the Third Assessment.
6. New Climate Change Fact Sheet, Facts about Climate Change.
7. Patz, J. et al. (2000). The Potential Health Impacts of Climate Variability and Change for the United States: Executive Summary of the Report of the Health Sector of the US National Assessment. Environmental Health Perspectives, 108, 367-376.
8. Pounds, J. A., & R. Puschendorf (2004). Clouded Futures. Nature, 427, 8 January, 2004.
9. Rens Kortmann (C E Delft), Edgar Peijnenborgh (RPS), Judith Harrewijn, Lindskevan Hulst (SME Advies) (2007). Climate Change: Causes, Consequences, and Solutions, Scientific Background to the On-Line Platform Climate Quest.
10. Rooney, C.etal. (1998). Excess Mortality in England and Wales during the 1995 Heatwave. Journal of Epidemiology and Community Health, 52, 482-486.
11. Shindell, D. T. etal. (1998). Increased Polar Stratospheric Ozone Losses and Delayed Eventual Recovery Owingto Increasing Greenhouse Gas Concentrations. Nature, 392, 589-592.
12. Stern,N.(2006). The Economics of Climate Change — The Stern Review. Cambridge : Cambridge University Press Sudip Mitra, Global Climate Change an Introduction. http://www.climate - leaders.org/wp-content/uploads/global - climatechange - sudipmitra . pdf.
13. The Argo (2013) Typhoon Haiyan Hits Philippines : Stockton Community Takes Action,The Independent Student Newspaper of the Richard Stockton College of New Jersey. 83.
14. UNFCCC (UN Frame work Conventionon Climate Change) (2007). Climate Change : Impacts, Vulnerabilities and Adaptation in Developing Countries (p. 12). Bonn : UNFCCC.
15. Willetts, E., Guadagno, L., & Ikkala, N. (2010). Addressing Climate Change, Issues and Solutions from a round the World (40 p). Editors. Gland, Switzerland : IUCN.

ISSN : 2394-4366

Received: 18 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

Depression Level Among Senior Citizens Living in Different Living Arrangements in Lucknow City

- Priyanka Jaiswal
Research Scholar-
Department of Home Science,
Lucknow University, Lucknow-226007 (U.P.)

E-mail:
pj271001@gmail.com

- Research Supervisor-
- Prof. (Dr.) Kiran Singh
Professor -
Dept. of Home Science,
Pt. Deen Dayal Upadhyay Govt. Girls (P.G.) Collage, Rajaji puram, Lucknow - 226017 (U.P.)

E-mail:
kiranrajeev23@gmail.com

Abstract

This research paper explores the impact of different living arrangements on the depression levels among senior citizens in Lucknow City. It aims to compare elderly individuals residing alone, with family members, or in old-age homes. Using a sample of 300 senior citizens, the study found that those living alone exhibited significantly higher depression levels compared to those living with family or in old-age homes. The paper also investigates the socio-demographic factors influencing depression among the elderly, including health status, financial insecurity, and social isolation. The findings suggest that interventions focusing on community support, family involvement, and better mental health care for elderly people are essential to reduce the burden of depression.

1. Introduction-

1.1 Background-

The elderly population in India is steadily growing, with projections suggesting that by 2050, the number of people aged 60 years and above will constitute over 20% of the total population. As life expectancy increases, the challenges related to elderly care, including their mental well-being, have become more prominent. Among the most prevalent mental health issues in elderly populations is **depression**, which significantly impacts quality of life, longevity, and overall health.

Depression in the elderly is particularly concerning due to its underdiagnosis and undertreatment in India. Various factors contribute to depression in older adults, such as chronic illness, death of a spouse, financial constraints, and social isolation. One of the most important factors in shaping the mental health of the elderly is **living arrangements**. Elderly people living alone may experience higher levels of loneliness and social isolation, leading to depression. Conversely, those living with family members or in old-age homes often have varying degrees of social interaction and support, which can influence their mental health outcomes.

This study aims to investigate the relationship between **living arrangements** and depression among senior citizens in **Lucknow City**, a prominent urban area in India. The findings could serve as a basis for understanding the mental health challenges faced by the elderly and help design interventions tailored to their needs.

1.2 Objectives of the Study-

The primary objectives of this study are as follows-

1. To assess the depression levels among senior citizens living in Lucknow City.

2. To compare depression levels based on living arrangements: those living alone, those living with family members, and those residing in old-age homes.

3. To investigate socio-demographic factors such as gender, health status, financial situation, and education level as potential predictors of depression.

4. To provide policy recommendations to improve the mental well-being of elderly citizens in urban India.

2. Literature Review-

2.1 Depression Among Elderly People in India-

Depression in older adults is a common but often overlooked health issue in India. According to a study by Murthy (2002), depression is prevalent among elderly individuals due to factors like chronic physical illnesses, financial insecurity, and loss of social networks. Depression in older adults is also frequently misdiagnosed as a normal part of aging, which prevents timely intervention.

Studies have found that approximately 15% to 20% of elderly people in India experience some form of depression (Prakash & Madhusudhan, 2010). However, many cases remain undiagnosed due to a lack of awareness about mental health issues and the stigma associated with mental illness. The urbanization and migration of younger generations for work have led to an increase in the number of elderly people living alone, further contributing to the rise in depression among the elderly population.

2.2 Social Isolation and Depression-

Social isolation is a key risk factor for depression in the elderly. According to Cohen and Wills (1985), elderly people living alone are at a higher risk of developing depression due to limited social interaction. In India, the traditional joint family structure is breaking down, and elderly people are increasingly living separately from their children. This isolation can lead to feelings of abandonment, loneliness, and helplessness, all of which contribute to depression.

The experience of widowhood is another significant factor in the mental health of elderly individuals. Research has shown that widowed elderly individuals are more likely to experience depression, particularly if they live alone (Chauhan et al., 2024). Loss of a spouse can lead to a sense of profound emotional and social loss, which exacerbates mental health issues.

2.3 Impact of Living Arrangements on Mental Health-

Living arrangements play a critical role in the mental health of elderly individuals. Studies have shown that elderly individuals living with family members typically experience better mental health due to increased social support, regular communication, and participation in family activities. Family support has been shown to protect against depression, as emotional support from family members helps mitigate feelings of loneliness (Blazer & Hybels, 2004).

On the other hand, elderly individuals living in old-age homes may experience both positive and negative outcomes. Old-age homes provide structured care and companionship but may also lead to feelings of loss of independence and social stigma. A study by Kumar and Singh (2021) found that residents of old-age homes often report depression due to a lack of autonomy, the institutional environment, and the adjustment required to live with strangers. However, in some cases, old-age homes offer a sense of security and regular care that can help manage physical health problems and prevent further mental decline.

3. Methodology-

3.1 Research Design-

This study employs a **cross-sectional descriptive design** to assess depression levels among elderly individuals in different living arrangements. The design is suitable for understanding the relationships between living conditions and mental health in a specific population.

3.2 Participants-

The sample for this study consists of 300 elderly individuals from Lucknow City, divided equally into three groups-

1. **Living Alone**: 100 participants
2. **Living with Family**: 100 participants
3. **Residing in Old-Age Homes**: 100 participants.

Participants were selected using a **stratified random sampling technique**, ensuring that each group was adequately represented.

3.3 Data Collection-

Data were collected using two primary tools-

☛ **Periatric Depression Scale (GDS-15)** A widely recognized tool to measure depression in elderly individuals. The GDS-15 consists of 15 questions, with each question answered as 'es'or 'o.'The scale helps categorize the severity of depression.

☛ **Socio-Demographic Questionnaire** This was used to gather information on participants'age, gender, marital status, education level, health status, and income.

3.4 Ethical Considerations-

The study ensured informed consent was obtained from all participants. Participants were assured of confidentiality, and their participation was voluntary. Ethical approval was obtained from the relevant institutional review board before data collection.

4. Results-

4.1 Socio-Demographic Characteristics-

The mean age of the participants was 68.5 years (ranging from 60 to 85 years). Approximately 58% of the sample were male, and 42% were female. The educational background of the participants varied, with 40% having completed primary education, 35% having seondary education, and 25% having attained higher education. Health status was reported as follows: 50% of participants had chronic conditions such as arthritis, diabetes, and hypertension.

4.2 Depression Levels Based on Living Arrangement-

The following mean depression scores (on the GDS-15) were observed based on living arrangements-

☛ **Living Alone-** The mean depression score was 9.2 .1, with 65% of individuals showing mild depression, 25% moderate depression, and 15% severe depression.

☛ **Living with Family-** The mean depression score was 6.3 .4, with 40% of individuals showing mild depression, 10% moderate depression, and 5% severe depression.

☛ **Old-Age Homes-** The mean depression score was 7.8 .9, with 50% of individuals showing mild depression, 25% moderate depression, and 10% severe depression.

4.3 Sociodemographic Predictors of Depression-

Degression analysis indicated that certain factors were significantly associated with depression levels-

☛ **Living Alone-** A strong predictor of depression (= 0.43, < 0.01).

☛ **Phronic Health Conditions-** A significant predictor of depression (= 0.38, < 0.05).

☛ **How Income-** Moderately predicted depression (= 0.25, < 0.05).

5. Discussion-

5.1 Living Alone and Depression-

The findings of this study confirm that elderly individuals living alone are more likely to experience higher levels of depression. The absence of social support, lack of daily

interactions, and feelings of loneliness appear to be significant contributing actors. These findings are consistent with previous studies, which have found that elderly individuals living alone are more vulnerable to depression due to social isolation (Smith et al., 2018).

5.2 Depression in Old-Age Homes-

The results also indicate that elderly individuals living in old-age homes exhibit moderate levels of depression. While old-age homes provide healthcare and companionship, they can also lead to a sense of loss of independence and emotional distress. The stuctured, institutional environment may not meet the emotional needs of elderly residents, contributing to higher depression levels.

5.3 Family Support and Depression-

Living with family members appears to provide a protective effect against depression. Elderly individuals living with family have better access to emotional support, regular social interaction, and practical help with daily activities. These factors play asignificant role in reducing feelings of isolation and helping to buffer against depression.

6. Conclusion-

This study highlights the importance of **iving arrangements**in shaping the mental health of elderly individuals in Lucknow City. Elderly individuals living alone are at a significantly higher risk of developing depression, while those living with family members experience better mental health outcomes. Old-age homs, while providing some benefits, also present challenges that may contribute to depression.

6.1 Recommendations-

Based on the findings, the following recommendations are proposed-

1. Community Support Initiatives- Establish community-based programs that provide social activities and emotional support for elderly individuals, especially those living alone.

2. Family Engagement- Increase awareness among families about the importance of supporting elderly members, particularly in urban areas where isolation is more common.

3. Policy Reforms- Create policies that improve healthcare access, particularly mental health services, for elderly people, and provide financial support for those living alone.

7. References

1. Revikrishna, N. B., et al. (2024). *urden of undiagnosed depression among older adults in India MC Psychiatry.*
2. Kaul, S. (2025). *LASI-based study of depression in Indian older adults*. *National Journal of Community Medicine*.
3. Chauhan, Y. D., Chaudhary, P. S., Puwar, B., Kapoor, A., & Biswas, R. (2024). *Prevalence and associates of depression among the elderly in different living arrangements in Western India: A cross-sectional study*. *Aging Medicine and Healthcare*.
4. Tiwari, S. C., et al. (2012). *Mental health problems among inhabitants of old age homes in India*. *Indian Journal of Community Psychiatry*.
5. Goswami, S. (2021). *The prevalence of depression among the elderly people in India*. *Indian Journal of Psychological Medicine*.
6. Kumar, J. (2025). *Social isolation and depression among elderly from an urban slum in Raipur city*. *Journal of Indian Aging*.
7. National Journal of Community Medicine. (2024). *Prevalence of depression among elderly population in India: Meta-analysis results*. *Njcmindia.com*.
8. Srivastava, S., & Singh, P. (2021). *The association of widowhood and living alone with depression among older adults in India*. *Scientific Reports*.
9. "Depression in elderly: A review of Indian research." (n.d.). *Indian research review*.
10. Samanta, T., et al. (2015). *Living arrangements and health of older adults in India*. *The Journals of Gerontology: Series B*.
11. Akbar, S. (2018). *Prevalence of psychiatric illness among residents of old age homes in India*. *PMC Articles*.
12. Agrawal, S., et al. (2012). *Effect of living arrangement on the health status of elderly in India*. *Indian Journal of Public Health*.
13. Devikrishna, N. B., et al. (2024). *Undiagnosed depression among community-dwelling older Indian adults*. *PubMed*.
14. "Prevalence and associated factors of geriatric depression." (2024). *International Journal of Community Medicine and Public Health*.
15. "Investigation and analysis of mental health status of older adults (rural India study)." (2025). *Frontiers in Public Health*.

ISSN : 2394-4366

Received: 12 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

Importance of Soft Skills in Students Development : A Synthesis

- Dr. Ishwar Chandra Vidya Sagar Agnihotri
Assistant Professor-
Department of Engligh,
Laxmi Yadunandan Degree College, Station Road, Kaimganj, Kasganj - 209502 (U.P.)

E-mail:
icvsagnihotri@gmail.com

Abstract

Soft skills can be divided into three major categories- personal attributes for example strong work ethics, high self esteem, integrity, being resilient, managing time successfully personal presentation), interpersonal skills (for instance communication, leadership, emotional intelligence, team work, managing conflict) and problem solving and decision making skills (like critical and creative thinking). It is a well known fact that soft and hard skills go parallel in an individual who has proved to be successful However, communication skills not only essential for an individual's professional career, but it helps in contributing widely to one's so-called social competence, a Sacr which reasonably applies to many other soft skills too. Good social skills reflected at the work place further helps in enhancing the career.

The opinion on soft skills has changed considerably in many societies during the past one decade. Studies show that in the past, mastering of hard skills was rated very high and having soft skills were to be nice to have. But with the passage of time this perception has taken a different shape. An expert from University of Illinois on teacher education is of the opinion that the present generation of college students and teachers need to be as fluent with people from different cultures as they are with their own, and it is observed that in the 21st century soft skill has become an essential part of life.

It is realized that the employers as well as educators complain frequently about a lack in soft skill among Graduates even from tertiary education institutions. Communication skills are missed through and through and the recent observations reveal, that they lack in soft skill especially team working. Though at times candidates are normally academically proficient but they lack in communication i.e. verbal as well as numerical reasoning and our examination-oriented education system and its contents are inadequate in developing such social skills. But many Universities all over the World are presently focusing on producing Graduates who are possessing knowledge about their various disciplines of

study along with adequate soft skills. Today, even the task-oriented technical fields such as accounting and information system also demand soft skills and good communication skills can easily be used to cover up a lack in hard skills.

Therefore, according to a survey, soft skills should be developed among students from the very beginning and for this good family upbringing plays a very vital role. From a very initial stage a proper upbringing by the parents help in building the right foundation and teaching how to act appropriately in the society. Probably, it is a known fact, that the strongest influence in a person's life and on his soft skills is the family he grew up in. In this context, the birth order, the personality of parents, treatment from siblings, the socioeconomic status of the family and education shall determine the shape of the soft skills of a person. It is also viewed, that a child having a good family upbringing along with a good schooling, that child is probably likely to do very well in his future life. Those parents and teachers who have molded children with rational minds and have strengthened in building good character can look forward to a bright career and can significantly contribute to their employer's success. Such individuals are greatly valued by their employers. Thus the nurturing of soft skills among students should go on in secondary schooling (indeed, right from primary level).

Before debating any further about the importance of soft skills we have to clarify the question 'What exactly are soft skills. Though a basic question, but the perception of what is a soft skill varies from context to context. Qualities, personality traits and social skills which everyone possesses in varying degrees are soft skills. A subject may be considered a soft skill in one particular area, and may be considered a hard skill in another and therefore, the understanding of what should be recognized as a soft skill varies widely. It is interesting to note that the internationally renowned encyclopedias have very little to say about soft skills. Wikipedia" the online encyclopedia, gives a very broad definition of soft skills, which leaves much room for discussion. "Soft skills refer to the cluster of personality traits, social graces, facility with Language, personal habits, friendliness, and optimism that mark people to varying Degrees. Soft skills complement hard skills, which are the technical requirements of a job." (Wikipedia, 2007). Another definition of soft skill by Dr.GoeranNieragden's is, "Soft or social skills are those personal values and interpersonal skills that determines a person's ability to fit into a particular structure, such as a project team, a rock group, or a company. The skills include personality traits like emotional maturity, eagerness to learn, and willingness to share and embrace new ideas". There is a wide distinction maintained between soft skills and hard skills. While technical and academic skills are related to hard skills and can be more easily defined, observed and measured whereas on the other hand soft skills are related to wide-ranging personal and interpersonal skills and the measurement of these skills are very complex. As these skills are difficult to define, observe and measure, so they are also intangible. Such interpersonal skills involve items such as etiquette, netiquette (appropriate practices and use of expressions and content in internet and e-mail communications, etc.), appropriate lexical choice, use of style, meaning and sentences, etc. Along with a tone of friendliness, optimism, and various techniques of persuasion.

Soft skills can be divided into three major categories-personal attributes for example strong work ethics, high self esteem, integrity, being resilient, managing time successfully personal presentation), interpersonal skills (for instance communication, leadership, emotional intelligence, team work, managing conflict) and problem solving and decision making skills (like critical and creative thinking). It is a well known fact that soft and hard skills go parallel in an individual who has proved to be successful However, communication skills not only essential

for an individual's professional career, but it helps in contributing widely to one's so-called social competence, a Sacr which reasonably applies to many other soft skills too. Good social skills reflected at the work place further helps in enhancing the career. Though the crisis of soft skills is a universal phenomenon, its problems in the Indian subcontinent are very peculiar because of the varied following reasons :

1. Firstly, our education system is designed in such a manner that forces the students to concentrate more on rote-learning than on developing an inquisitive attitude, which is the most predominant factor to achieve success at a work place.

2. Secondly, during the education at high school level, many engineers would have neglected subjects like humanities, languages and arts as a result of parental and peer pressure to master science and mathematics, subjects which are helpful in clearing competitive entrance exams. In this process of learning, an all- mund development of complementary human intelligences and faculties He creativity and imter-personal skills are not up to the mark.

3. Thirdly, the syllabus of almost all the Indian Universities are not frequently updated and so they remain outdated with the result, there is a wide industry academic gap. In this process the actual requirement is to in the anachers as well as to introduce value-added courses for the students.

4. Fourthly, there should be a provision for the undergraduates to relate their studies on a theoretical framework pertaining to soft skills. Such a framework will help in guiding the undergraduates to effectively practice the soft skills that have been included in the curriculum rather than learning them in a haphazard manner through the trial-and-error method.

5. Lastly, it viewed the Psychologists the self-image key personality behavior. This relation, specific leaming event which experienced based, required help the undergraduates develop positive self-image. Therefore, the universities first decide the their Graduates and what skills should Graduates possess besides knowledge about their disciplines? This should taught preferably during first semester and soft skills should made the curriculum and and assessment processes.

After elaborated much soft skills, the answer why are considered being important is still There are numerous reasons having a critical person's soft and socializing easily are rated superior to others who lack these skills. Such, soft stand with equal importance next hard skills, but they should not be misused camouflage person's lack expertise particular areas.

To acquire soft skills there are several methods of learning and improving. One learn is enrolling formal training, eg taking evening classes on Rhetoric, languages, presentation skills, conflict cultural management. Very easily job applications. The slight sarcasm in last sentence is intentional, because there no guarantee that certain prescribed course actually enhances person's soft skills.

The other acquiring skills we looked at is self-training, generally books and has become increasingly popular like: Electronic Learning usually abbreviated to e-learning. A very pleasant way of self-training about one's soft skill is – frequent socializing with friends, colleagues and with other members of the society. This may sound astonishing, but here it means socializing consciously, Le with the purpose in mind to enhance certain soft skills. We are already aware that, in this way we can improve our ability to talk. But there is a lot more soft skills especially related to Communication skills, which can be easily practiced while chatting and discussing with others in an informal manner for e.g. language proficiency in general, listening. Discussing, etiquette, self-esteem and body language. Hopefully, in most education institutions and at all levels of teaching, methodology has been changed or will be changed towards more student oriented learning. Such a shift goes hand in hand covering soft skills into the teaching of hard skills. In other

words, students participating in a lecture with the aim of learning a hard skill will inevitably and unconsciously practice a range of soft skills. This comes very close to an ideal way of teaching through lecture method.

Discussions are to be made at large how to improve the soft skills of students and to make them aware about its importance and the consequences of its shortcomings and therefore it is noted that, to overcome the crisis and to achieve the desirable results, certain changes are required to be made in the curriculum, the teaching methodology, the classroom management as well as the evaluation process. At present the curriculum is designed in such a manner that it does not include practical knowledge of all the four language skills, namely, reading and writing, listening and speaking. The learning of soft skills is very important along with these hard skills. The curriculum should be more oriented towards equipping the student to manage and excel at the work place and in order to achieve optimum results the curriculum should be re-structured including some of the following topics like- Effective Communication Skills such as verbal, non-verbal, pronunciation and intonation, identifying and removing barriers to communication as well as acquisition of different styles. Communication. Along with this, business presentation skills like negotiation, structuring effective presentation, assertiveness, behavioral traits like attitude, motivation, time and stress management, business ethics, leadership, inter-personal skills and team building, problem-solving skills like creative, critical and analytical thinking, conflict handling, and decision making should also be included. Students should be encouraged to enhance their soft skills by reading dedicated books, attending courses, and joining clubs or societies to broaden their horizon.

Another approach, a formal one to solve the problem would be, to incorporate soft skills subject into programmer's curriculum. On an initial level a course that requires students to do a bit of research and to present their results to the class afterwards has been proved effective. On Graduation level a course on management skills, including some communication skills together with the management of time, conflict and cultural issues are of major importance, and has been well received by students when practicing. However, very often the curriculum is badly overloaded with the courses related to hard skills making it almost impossible to add or substitute other courses. Group discussions, student's presentations and using special methodologies, if correctly applied throughout the course will automatically increase the attractiveness and effectiveness of a course regarding both hard and soft skills.

It is important for the teachers to react to the changing scenario and equip themselves to meet the need of the hour. Talking about the teachers, at this crucial point of time they are supposed to play a vital role in filling the gap between what is now available in the form of curriculum and the demands of the corporate world outside. This transformation can be successfully achieved by shifting from the traditional method of teaching language skills to the communicative method of language teaching. The present-day teachers need to concentrate on improving language efficiency and soft skills by making use of real life situations as teaching material instead of focusing on grammatical rules, syntax structures, rote memorization of vocabulary and using literary texts as teaching material. Further, a more tive, analytical, logic oriented and interactive method of teaching should be adopted. In brief, the teachers should be more of a facilitator and less of an instructor and to excel in this new role the teachers should adopt the following changes such as methodology of teaching, classroom management as well as assessment and evaluation.

Before adopting any other methodology, the teacher should assess the strength and weaknesses of the students individually. This type of requirement will guide, both the teacher and the

students, to consolidate and enhance the strength and reduce the weaknesses inherent in the students. Along with this, the teacher should explore and experiment various methods of teaching to meet the required needs where the students are given ample scope and opportunities to participate, interact and communicate. Instead of lecture oriented method, it should be interactive and communicate. The bottom line is to make students practice, practice and more practice and this can be only accomplished by conducting task based activities like debates, group discussions, case analyses, role plays, and business games and so on in individual, pair or groups. To improve the listening capacity, comprehension and presentation, media and video shows can also be effectively used. Talking about Classroom Management, the teacher has to ensure that the objectives of learning are realized in a classroom and has to shift from the practice of lecture method.

By keeping in mind that all our classes consist of mixed-ability population in most of the schools of India, therefore, it is the duty of the teacher in task-based interactive sessions who are confronted by mixed-ability classrooms to inspire them to read carefully as they need to match instructional approaches to the readiness, interest, learning speed, styles, attitudes, intelligence and communicative ability of all the students. The activities should be completed in a given time-frame, no matter whatever differences are reflected in performing the assigned activity. The assessment of the students should take place on a continuous basis and should be at three levels: Self, Peer and Teacher. Assessment can be done by the self and peer objectively by analyzing and comparing the performance. But the feedback given by teachers is equally significant because of teacher's rich experience.

Having discussed about soft skills and coming to the ground reality, it is observed that during the last decade, the of society has changed drastically. The value of soft skills has increased significantly and it is important for everyone to acquire adequate soft skills beyond academic or technical knowledge. Educators play a special role regarding the teaching of soft skills, because the school and University level have a major impact on the development of their students soft skills. Apart from the awareness regarding the importance of soft skills and encouraging the sides to improve their skills, teachers should actively practice the development of soft skills with their students and in order to do this in an effective and efficient manner soft skills training should be a part of teaching of hard skills. To see the positive side, the lessons will become more attractive and interesting and which in return shall increase the success rate of learners Therefore, the importance of soft skills in shaping an individual's personality by complementing his/her hard skills help in promoting successfully because good hard skills alone are not necessarily enough anymore.

References

1. Cologne, GoeranNieragden. “The Soft Skills of Business English. The weekly column (www.eltnewsletter.com/back/september2000 a282000.htm). September 2000.
2. Websites: www.agr.org.uk.
3. www.horton.com.
4. www.pisa.oecd.org.
5. Waggoner, Jaqueline: http//mountailrise.weu.edu/html/waggoner.pdf.
6. Wikipedia: www.cn.wikipedia.com.

ISSN : 2394-4366

Received: 18 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

Regulation in Artificial Intelligence : An Indian Perspective

- Prof. Suneet Awasthi
Professor-Dept. of Economics, D. A.-V. (P.G.) College, Kanpur-208001 (U.P.)

E-mail:
dr.suneet.awasthi@gmail.com

The term artificial intelligence was instituted by Author Mc Carthy, in 1956. Man-made reasoning is the capacity of an advanced PC or PC-controlled robot to perform errands ordinary connected with insightful creatures. Man-made intelligence, similar to some proficiency fna dequacy alongside being savvy and efficient. Howere, on the pessimistic side, It can a real sense, usurp the work of millions of individuals around the world, independent of their work profile.

In India, NITI Aayog delivered an argument paper, `Public Strategy for Artificial Intelligence, In June, 2018, which thought about the significance of Al. While this large number of improvements are occuring on the merchanical front, no extensive regulation to direct the developing industry has been formed in the country to date.

Further, NITI Aayog in its report has solely talked about the difficulties and the center region of the worldwide improvement of Al. It has been expressed in that worry for the protection of information, an ugly licensed innovation system, low power of Al examination, and low attention to embracing Al in business processes, will be a portion of the significiant obstrauctions too the effecive or organization of Al in India.Be that as it may, as Futurist Gray Scott says, - `The geniuine inquiry is, when will we draft a man-made consciousness bill of privileges What wit that comprise7 Furthermore, who will get to conclude that?

Introduction to Artificial Intelligence (Al) -

Individuals are geneisily viewed as the keenest animal on the planet innovation advancing at nighty and there is no question that human capacities are at present being planted by At Computerod reasoning is one such development.

Man-made an-made intelligence at its generally fundamental level, is a machine that can have an independent mind Man-made consciousness can be characterized as a machine's ability to reproduce a smart way of behaving Simulated intelligence alludes to an organically motivated data framework and incorporates a tremendous scope of innovations like AL profound learning vision, regular language handing machine thinking and serious areas of strength for and. Even though Al is worried about a similar point of using PC gas human keenness,tin't restricted to approaches that can be noticed organically.

In every day grasping Man-made consciousness, a part of

software engineering, is the diversion of human insight processes by machines, intending to make shrewd inachines which can frequently act and respond the people and makes feasible for PCs to perform errands including human-ke direction, knowledge, mastering abilities or aptitude.

Man-made reasoning is theoretical and centers around performing undertakings utilizing insight strategies like :

- Rationale.
- Learning.
- Critical thinking
- Insight.
- Etymological
- Intelligence.

It, nonetheless, can completely upset the everyday existences of every person, for better or for more awful, it is our obligation to follow a legitimate system to guarantee the positive effect of Artificial Intelligence. A smart element has five ascribes, for example.

- Correspondence.
- Inside information.
- Outer information.
- Objective driven conduct.
- Inventiveness.

For a machine to act and respond like a human, the machine should be moved by the right data about the world. To carry out information, designing Al is vital for accessing properties, classifications, objects, and their relations.

Recent Developments in Light of the Increasing Need for Al-

Sci-fi has impacted the interest of individuals for quite a while with the idea of Artificial Intelligence into reality first time with PCs and presently with robots and machines. This impact was seen when Saudi Arabia allowed citizenship to a robot named Sophia, Mechanical technology is a significant field connected with Al. It expects insight to deal with the assignments like control and route, alongside sub-issues of limitation, movement arranging and planning.

Individuals are turning out to be more adjusted to chatbots and the utilization of virtual individual aides like Siri, Alexa, and alright, and Google is continually extending Man-made intelligence isn't restricted to Android telephones however has seen utilized at a little yet profoundly compelling scale in the different Industries in India. Robot-themed eateries have opened in Chennai and Hyderabad where robots serve and talk in visitors in English and Tamil. As of late, Kerala Police have integrated robots into their labour force. In the year 2018, a cardiologist in Ahmedabad played out a telerobotic coronary intercession on 32 patients kilometers far off. The models above obviously outline the effect of Artificial Intelligence on our regular routines.

Data sets have filled significantly in the earlier 10 years to deal with the new peculiarities known as “large information. This suggests the enormous worldwide extent of current informational collections, which are generally gotten from the PC frameworks that presently intercede each feature of day-to-day existence For example, scientists have prepared PC models to recognize a singular character characteristic more precisely than their companions solely on what Facebook posts they had preferred.

Google has as of late purchased man-made consciousness (Startup Deep Mind), made an Al framework (Tensor Flow), and has planned a framework that concentrates on the communication of individuals with an Al framework.

Amazon and Apple Medical finding, client support, complete robotization of administrations (allowing of Driving permit), voice-empowered savvy partners, network safety, independent vehicles, and other Al applications are presently ordinary in our lives, inciting organizations like Google, Uber, Amazon, and Apple to expand their interest in man-made reasoning advancements.

Considering the requirement for progression in innovation in the legitimate assistance market of India, new companies have been laid out which are centered around building NLP-based applications and legitimate examination data sets which will assist the attorneys with directing exploration and investigation without any problem.

A portion of these associations have been

presented underneath: SPOTDRAFT: "Spotdraft can survey contracts in minutes. It's a start to finish lawful innovation framework for drafting, exploring, and overseeing contracts for organizations, everything being equal. "We were dazzled with the snappiness and precision of Spot Drafts conveyance," said Shashank Bijapur and MadhavBhagat, who established the in Gurugram. Spot Draft had the option to quickly and effectively investigate contracts according to our standards, diminishing a fourteen day contract cycle to a couple of hours," said the CEO of NDTV Goodtimes. Casement Established by Anuradha Yadav, is a startup that utilizes Al to figure out joins between different case regulations, give a synopsis of those case regulations and assist with making legitimate exploration greater quicker than expected.

Practice League -

This platform empowers many business units with accurate reporting, faster delivery of legal services, and data-driven insights to become the next business enablers of their organization.

Perks of Artificial Intelligence in Day to Day World -

Individuals from everywhere over the globe are interested in man-made consciousness. Computer-based intelligence 2's significant design is to work with development, diminish human work, and boost human potential furthest degree conceivable. The Al framework has worked on its abilities and can now be ready to precision. The improvement of robots and Al-produced work has shown achieve the task with more prominent the way that PCs can figure out how to finish tasks independently once the codes have been placed. Artificial intelligence is presently fit for creating music, news reports and compositions. Man-made reasoning (AI) is a worldwide innovation wave that is clearing the world.

Car crashes lead to around 400 passings daily in India, 90% of which are brought about by preventable human blunders. Independent vehicles that depend on Al can decrease this all together, through brilliant admonitions and preventive and protective procedures. Patients might pass on because of an absence of specific specialists. Computer-based intelligence can close the hole between patients and clinicians.

There are many advantages of having Al helping the experts, which incorporate, yet are not restricted to:

- Time preserving It drives down the time taken to play out an errand. It empowers performing various tasks as well as brings down the requirement for existing assets.
- Having the option to zero in on more mind-boggling work-Al empowers the execution of perplexing assignments without tremendous expense costs.
- Savvy.
- Better ability improvement It contentions the capacities of in an unexpected way abled people.
- Calculation based forecasts.
- Contract examination and drafting.
- Man-made consciousness in decision pursuing It works with choice-making by making the interaction more intelligent and quicker.

Opportunities for Artificial intelligence in Various sectors -

Many ventures are in progress to explore and convey Al in the public area, as well as in government, against debasement tasks, and other related attempts. The business sectors for Al administrations are supposed to increment, and the more extensive economy will essentially acquire from planned Al administrations. By further developing decision-production with information-driven strategies, Al innovation might have the option to aid the goal of perplexing worldwide worries, for example, environmental change and asset use, as well as the effect of populace extension. It has been perceived that Al can work on individuals' lives by giving new Information and advanced individual aides that expect our necessities.

Artificial intelligence (Robots) in the assembling business and administration area -

In the assembling industry, the utilization of modern robots has extended decisively and evidently. It might likewise bring about a decrease in yield. In help organizations, for example, cafés and medical clinics, talented robots are being utilized. They assist incapacitated people and people with keeping away from unsafe or drawn-out work. Man-made consciousness (Al) can resolve social issues, for example, eldercare.

Artificial Intelligence in the auto area -

Different Al-related research drives in the auto business guarantee that independent vehicles (AV) will decrease gridlock, cut fuel utilization, and discharges, increment street security, further develop portability for the older and crippled, and save drive time for different obligations. Drones (a kind of AV) are turning out to be progressively famous.

Man-made Brainpower IN LAW -

In India, where 59,867 cases are forthcoming in the Supreme Court, 44.75 lakh cases are forthcoming in different High Courts, and an amazing 3.14 crore cases are forthcoming at the region and other subordinate level courts/councils as of November 2019, the headway of Al and its utilization in the equity conveyance framework is basic since people alone can not hear an expected 3.75 crore cases in a proficient and ideal way. The Indian legal framework utilizes man-made brainpower in an assortment of ways, including legitimate examination, a reasonable level of effort, and contract age (shrewd agreements), from there, the sky is the limit. Cyril Amarchand Mangaldas, one of India's top law offices, was the main Indian organization to sign an arrangement with Kira Systems to get admittance to their Al framework to accelerate their legitimate exploration and creation. Sharad Arvind Bobde, the Chief Justice of India, on an occasion coordinated by the Supreme Court Bar Association on the Constitution Day in 2019, expressed that "We propose to present, if conceivable, an arrangement of man-made reasoning. There are numerous things that we want to take a gander at before we present ourselves. We would rather not give the feeling that this truly going to substitute the adjudicators."

Man-made consciousness and regulation are principally worried about the utilization of calculations to make the law more objective, reasonable, and probable. We've seen Al being carried out in different organizations all over the planet, including little and medium organizations. Subsequently, the Indian legitimate calling has gotten comfortable with Al and its applications. There are various benefits to having Al help lawful experts, including, but not restricted to:

Time Conserving -

With 3.75 crore cases previously forth coming, settling cases in the Indian Legal System is turning out to be exceptionally extreme. The excursion from recording a case to its judgment is an extremely lengthy and depleting one. Legitimate exploration, revelation, a reasonable level of effort, contract drafting. And agreement examination have all become simpler with the utilization of Al. Disclosure discusses when the arraignment needs to give the guard all the data and proof that they have about the case. This is an extremely intense undertaking to do as sometimes there is such a lot of administrative work and proof that it would be misuse of assets as well as a cash depleting position as well as a period taking something important to go over all the desk work, nonetheless, with the utilization of Al, this assignment can now be performed by digitizing every one of the documents to be given over. Here, Al helps with figuring out terabytes of information by just entering a couple of watchwords. Essentially, an expected level of investment in M&A used to be a tedious method, yet with Al, doing a reasonable level of effort is as straightforward as composing a couple of catch phrases if you realize what you're searching for. The documenting of cases is being made conceivable through web-based gateways also. This makes e-recording such a ton simpler, today, rather than playing out a ton of work physically, one can essentially document a case with a couple of keystrokes.

Being Able to Focus More on Complex Work -

With At assuming its part in playing out the small undertakings, the attorneys can zero in more on the intricacies of a case, while the product handles the repetitive positions.

Practical-

Tasks like documentation, investigation, and so forth, used to take a ton of labor supply, consequently bringing about more compensation being paid and hence more monetary assets being spent. Nonetheless, with the utilization of Al, these tedious and simple errands have become more productive and fast. In this way. It prompts a cost decrease.

Better Skill Development -

Indian legal counselors have carved out opportunities to become familiar with the different subtleties of the law. In any case, this used to be a tedious and muddled process that necessary a lot of exertion. In any case, since Al is shrewd, it has made brilliant work, and presently even new legal advisors can rapidly get a handle on the intricacies of the law.

Calculation-Based Predictions -

When a legal counselor is drawn nearer by a client, it generally so happens that the attorney gets a case or a specific region of the case that is exceptionally normal. Simulated intelligence can then be utilized by the legal advisor to give the Al's calculation something to do and the calculation, then on the foundations of its shrewd investigation highlights, predicts whether the attorney will win the case. Which consoles the client.

Contract Analysis and Drafting -

Previously, contract examination and drafting was a song cycle that necessary a lot of hours and an expected level of investment. High-level Al calculations, then again, have made it more straightforward to investigate contract needs and anticipate an agreement draft.

Man-Made Consciousness in Decision Making-

Artificial Intelligence integrates different scholarly endeavors to satisfy one of its purposes, that is navigation. India, then again, can't be anticipated to embrace this Al include not long from now, similar to India, which is as yet an emerging nation, and taking this action would prompt a business emergency and India can't depend on the ability of Artificial Intelligence itself in choosing the army of parts of a specific case, particularly because the judgment would influence the existences of individuals associated with the case and any sort of “misfire in the framework would be exceptionally out of line.

Computerized reasoning in Legal Reseach -

Lawyers generally utilize plenty of old decisions as points of reference while pushing for their situations in vague circumstances. This requires a ton of legitimate examination and worker hours; an adjudicator, attorney, and regulation understudies all contribute a ton of energy and time in lawful exploration, in any case, with the assistance of Al programming's creative and modern calculations, finishing this troublesome and tiring cycle has become a lot more straightforward. A couple of information bases are accessible to help attorneys in finding pertinent case regulations and rules to continue with their work.

Man-made reasoning in Document Review -

As called attention to previously, one of India's top law offices, Cyril Amarchand Mangaldas has shown its advantage in utilizing Al of Kira Systems, to work with an expected level of effort and Document audit for viability and accuracy which will be of benefit to their clients Artificial intelligence Ross, created by IBM, has been embraced by numerous law offices around the world, especially in the USA, and is principally used to vet legitimate agreements, direct lawful exploration, momentarily sum up case regulations, and so forth. Also, Linklaters LLP, a worldwide regulation organization, is making Nakhoda, an Al programming to give effective agreement organization and organized legitimate information. With man-made reasoning (Al) building up forward movement in India's legitimate area, whether or not Al is continuously supplanting attorneys emerges. No, that isn't true. Regardless of whether Al is a practical other

option, it misses the mark on human qualities, for example, “senses,” “hunches,” and “experience.” Al is an information-driven framework that answers just given the data given and the benefits of current realities. It can't adjust such data, can't change such realities, and can offer a straight forward cure. Toward the day's end, the attorney is responsible for going with the last choice. There's nothing left but to help attorneys, judges, officers, and regulation understudies in acquiring an information-driven arrangement all the more productively and cost-successfully. Besides, genuine people are expected to contend in court, and this isn't an undertaking that can be achieved via computerized programming. Nor is the errand of going with a choice. Accordingly, it is protected to infer that Al is neither supplanting attorneys nor investing in them out of the effort.

Among all of the previously mentioned leap forwards in the Al area, various key inquiries have been created including :

(a) What is Al's awful character? Is it conceivable to provide the situation with an individual or a 'resident?

(b) Who is responsibly assuming that a misfortune emerges because of an Ar's carelessness? For this situation will the guideline of outright or vicarious culpability apply? What discipline might be attributed to a fake character in the last option case?

(c) How far might Al at any point be utilized in the lawful calling?

(d) Whether an individual who benefits from the administration of Al can be named as a “Buyer” under the consumer Protection Act, 1986, and so on.

Conclusion -

The innovation of [A] Artificial Intelligence has progressed decisively in the last age. As a rule, man-made brainpower (Al) alludes to processing advances that can supplant human knowledge in the presentation of specific exercises. This innovation is presently advancing at a high speed, like data set innovation's remarkable extension in the late 20th 100 years. Data sets have developed to turn into the center foundation that drives venture-level programming. Likewise, Al is anticipated to drive, to some extent, most of the new worth made from programming later on many years. Artificial intelligence, similar to some other progression, has its arrangement of advantages and cons. In addition to side, Al can help people in finishing esponsibilities with more prominent productivity and viability while likewise setting aside cash and time. However on the pessimistic side, it can usurp the work of millions of individuals around the world, independent of their work profile. As would see it, Artificial Intelligence and its purposes are wrongly dreaded by the legal counselors as a danger to their reality and occupations. I might want to draw in the consideration of different ventures like online businesses, which are faring quite well but not hurting any human representatives by utilizing Al.

References

1. Working Document: Towards Responsible #AlforAll Part (issued August (https://niti.gov.in/ sites/ default/ files/ 2020-07/Responsible-Al.pdf), and the latest one being the Working 2020).
2. Document: Towards Responsible RAIforAll Part Γ (issued November 2020), (https://niti.gov.in/ sites/default/ files/ 2020-11/Towards-Responsible-Al-Enforcement-of-Principles.pdf). https://www.washingtonpost.com/health/2019/10/24/racial-bias-medical-algorithm-favors-white-patients-ove r-sicker-black-patients.
3. The UK has formulated a Centre for Data Ethics and Innovation, Under Department for Digital, Culture, Media & Sport, Singapore has formulated an Advisory Council on Ethical Use of Al and Data, Under the Infocomm Media Development Authority (IMDA), http://www.niti.gov.in/writereaddata/files/document publication/NationalStrategy-for-Al-Discussion-Paper.pd.
4. F. P. C., “Sizing the prize: What's the real value of Al for your business and how can you capitalize” (March 2017). (Available at: (Hyperlink) Klaus Schwab, “The Fourth Industrial Revolution: What It Means and How To Respond”, Foreign Affairs, 12th December 2015. (Available at: (Hyperlink).
5. BrindaSapra, “Al for All: How India Can Become an Artificial Intelligence Superpower” Next Billion, November. 2019. (Available at: (Hyperlink).

ISSN : 2394-4366

Received: 04 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May..-2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

सामाजिक एकता के पोषक नाथ साहित्य

– प्रो. सुमन सिंह
प्रोफेसर – हिन्दी विभाग,
दयानन्द गर्ल्स (पी. जी.) कॉलेज,
कानपुर–208001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
sumandevi99918@gmail.com

सारांश

सम्पूर्ण मानव समाज को आज नाथ पंथ और नाथ साहित्य की अत्यधिक आवश्यकता है। जहाँ एक भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण के प्रभाव से सामाजिक व्यवस्था छिन्न–भिन्न होती जा रही है, ऐसी स्थिति में नाथ पंथ के योगियों का समाजपयोगी ज्ञान वर्तमान में प्रासंगिक हो गया। प्रसिद्ध साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदाय' में नाथ साहित्य की प्रासंगिकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''नाथ परम्परा की शुरुआत बहुत ही प्राचीन रही है। नाथ प्रचलन विभिन्न धर्मों के संतों के बीच विद्यमान है। वस्तुतः नाथ पंथ समाज साहित्य व भारतीय संस्कृति का अनिवार्य अंग है।'' वर्तमान में उनके अनुयायी धार्मिक और आध्यात्मिक निरन्तरता के साथ स्थायी रखने के लिए हर संभव प्रयास कर रहे हैं। सामाजिक समरसता के पोषक नाथ साहित्य समानता, न्याय और सांस्कृतिक एकता के साथ मानव कल्याण की भावना को दृढ़ करता है। सामाजिक समरसता के बिना विकास को गति नहीं मिल सकती। अतः हम सबका दायित्व है कि नाथ पंथ के इस मूलमंत्र को अपनाकर सामाजिक एकता व अखण्डता को बनाये रखने में अपना सहयोग प्रदान करें।

आदिकालीन साहित्य को वर्गीकरण की दृष्टि से तीन वर्गों में बाँटा जाता है– धार्मिक, लौकिक एवं इतर साहित्य। नाथ साहित्य इनमें से धार्मिक साहित्य के वर्ग में आता है। नाथ साहित्य हिन्दी साहित्य का आदिकालीन एक महत्वपूर्ण धार्मिक साहित्य है जो नाथ सम्प्रदाय के साहित्य के रूप में जाना जाता है। यह साहित्य मुख्यतः योग साधना, गुरु शिष्य परम्परा और शिव उपासना पर केन्द्रित है। नाथ साहित्य रहस्यवाद, हठयोग और उलटबांसी जैसी अवधारणाओं से भी प्रभावित है। इस साहित्य का दार्शनिक पक्ष शैव मत से और व्यावहारिक पक्ष हठयोग से सम्बन्धित है। इन नाथों की रचनाओं में नैतिक आचरण, वैराग्य भाव इन्द्रिय निग्रह, नीति और साधना की व्यापकता है और उसके साथ ही जीवन की अनुभूतियों का सघन चित्रण भी है। नाथ साहित्य की भाषा संधा भाषा और अर्ध–मागधी अपभ्रंश है जो हिन्दी की प्रारम्भिक काल की है। इस साहित्य को जागृतकाल की महत्वपूर्ण रचनायें मानी जाती हैं। जो जनमानस को योग की शिक्षा, जनकल्याण तथा जागरूकता प्रदान करने के लिए था। कुछेक भाषाओं को छोड़कर नाथ साहित्य सम्पूर्ण भारतीय वांग्मय में प्राप्त होता है।

सामाजिक एकता का अर्थ है सभी को अपने समान समझना। जातिगत भेद–भाव एवं अस्पृश्यता को दूर कर लोगों में परस्पर प्रेम एवं सौहार्द बढ़ाना तथा समाज के सभी वर्गों एवं वर्णों के मध्य एकता स्थापित

करना ही सामाजिक समरसता है। हम कह सकते हैं कि ''सामाजिक समरसता ऐसी संकल्पना है जो जातिगत भेदभाव एवं अस्पृश्यता का जड़ से उन्मूलन कर समाज में परस्पर प्रेम और सौहार्द्र बढ़ाने का काम करती है। यदि सामाजिक समरसता समाज में स्थापित होगी तो निश्चय ही उस समाज में एकता भ्रातृत्व भावना, साम्प्रदायिक सौहार्द की स्थापना अपने आप हो जायेगी, जिससे समाज निरन्तर प्रगति और विकास के पथ पर अग्रसर होगा।'' समाज में रहने वाले लोगों में समाज के प्रति सेवा, सहयोग एवं समर्पण का भाव होगा तो देश में कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी। जाति व वर्ण दोष का भेद ही समाज में समरसता का अभाव उत्पन्न करती है।

साहित्य में समानता और न्याय की अभिव्यंजना सनातन है। प्रत्येक युग में हर भाषा के साहित्यकारों ने इन्हें संवेदना के केन्द्र में रखा है। विशेषकर हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल में ही इनकी गंभीर अभिव्यंजना देखने को मिलती है। हिन्दी भाषा और साहित्य की सांस्कृतिक प्रकृति ही सामाजिक है, क्योंकि वहाँ कई बोलियों और क्षेत्रीय विशेषताएँ समरस हुई हैं। आदिकालीन साहित्य इसी सामाजिक समरूपता का आरम्भिक और बेहतरीन उदाहरण है। इस संदर्भ में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी जी लिखते हैं कि– ''वस्तुतः किसी साहित्य के आरम्भ की पहचान वहाँ से की जा सकती है जहाँ पर धार्मिक कर्मकाण्ड और रहस्य भावना से क्रमशः उन्मुक्त हो रहा हो। इस दृष्टि से हिन्दी सिद्धों–नाथों से लेकर कबीरदास तक यह प्रक्रिया देखी जा सकती है।''[1]

नाथ पंथ सिद्धों के ब्रजयान और सहजयान के तत्वों को लेकर विकसित हुआ है। राहुल जी ने ''नाथ पंथ को सिद्धों की परम्परा का ही विकसित रूप माना है।''[2] सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान योग साधना की प्रक्रिया के रूप में नाथ पंथियों की हठयोग साधना आरम्भ हुई। जीवन के कर्मकाण्ड के जाल से मुक्त कर सहज रूप की ओर ले जाने का श्रेय नाथ पंथ को ही जाता है। इस सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक एवं प्रथम गुरु 'शिव' को माना जाता है, फिर भी इस सम्प्रदाय में अनेक गुरु हुए, जिसमें गुरु मत्स्येन्द्र नाथ, जालंधर नाथ व गोरखनाथ जी सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। नाथ सम्प्रदाय देश के विभिन्न प्रान्तों में फैला हुआ है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार के साथ–साथ पंजाब राज्य में भी नाथ पंथ का प्रभाव रहा है। ऐसा माना जाता है कि पंजाब राज्य नाथों की कर्मभूमि रहा है। पंजाबी भाषा के आरम्भिक विकास में नाथ सम्प्रदाय की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गुरु गोरखनाथ ने पंजाब साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अगर उन्हें पंजाबी साहित्य का ''आदि कवि'' कहा जाये तो अन्योक्ति नहीं होगी।

भगवान शिव के उपासक नाथों द्वारा रचा गया साहित्य 'नाथ साहित्य' कहलाता है। हिन्दी साहित्य के आदिकालीन धार्मिक साहित्य का एक भाग नाथ साहित्य है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने नाथ पंथ के चरमोत्कर्ष का समय ''बारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक माना है। उनका मत है कि नाथ पंथ से ही भक्तिकाल के संतमत का विकास हुआ था, जिसके प्रथम कवि कबीर थे।''[3]

सिद्धों की विचारधारा को लेकर नाथ साहित्य एक नवीन विचारों की प्राण प्रतिष्ठा की। नाथ साहित्य का दार्शनिक पक्ष शैवमत से और व्यावहारिक पक्ष हठयोग से सम्बन्धित है। इन नाथों की रचनाओं में नैतिक आचरण, वैराग्य भाव, इन्द्रिय निग्रह, प्राण साधना, मन साधना और गुरु महिमा का उपदेश मिलता है। इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता है और उसके साथ ही जीवन की अनुभूतियों का सघन चित्रण भी है। नाथ पंथ ने अपने सिद्धान्तों की मीमांसा जनभाषा के आश्रय से साखियों और पदों में की। नीति, आचार, संयम और योगादि नाथ साहित्य के प्रधान विषय हैं। नाथ पंथ के पहले प्रमुख गुरु मत्स्येन्द्र नाम से 'सन्त संग्रहों' में कुछ हिन्दी के पद प्राप्त होते हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि ''उन्होंने उन पदों का संग्रह 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' नाम से किया है और उसे नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है।''[4] इसी पंथ के दूसरे प्रमुख सिद्ध जालंधर नाथ के लिखे सात ग्रन्थ माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय के तीसरे महान सिद्ध गोरखनाथ हुए, इस पंथ के वास्तविक उन्नायक यही हैं। गोरखनाथ का नाम अपने सम्प्रदाय में ही नहीं, भारत विभूतियों में भी महत्वपूर्ण है।

गोरखनाथ के व्यक्तित्व, गुरुत्व और महानता को और अधिक प्रकाशित करने में उनके साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। इनकी रचनायें संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषा में है। गोरखनाथ जी की हिन्दी रचनाएँ कम महत्वपूर्ण नहीं है। तेरहवीं–चौदहवीं शती की देशी भाषा के रूप में प्राप्त ये रचनायें विविध रूपात्मक हैं और उस काल में प्रचलित विविध रचना शैलियों में लिखी हुई। हरियाणा का लोकजीवन भी नाथ पंथ से काफी प्रभावित रहा है। हरियाणा के गांव–गांव में प्रचलित 'गूगापीर' के गीत एवं

कहानी खिचड़ी पर्व की महिमा स्थान–स्थान पर नाथों के डेरे आदि हरियाणा वासियों की श्रद्धा को ही व्यक्त करता है। हरियाणा के लोकगीतों में भी नाथ साहित्य में प्रचलित प्रतीकात्मक शब्दावली संप्रेषण से योग और ज्ञान का उपदेश दिया गया है। इस तरह गोरखनाथ ही समाजोद्धारक, लोकरक्षक के साथ–साथ बौद्धों और शैवों में ही नहीं शाक्तों और कापालिक साहित्य में भी इनकी महनीयता स्वीकृत है। इनके द्वारा हिन्दी में लिखी गयी ग्रन्थों की संख्या चालीस मानी जाती हैं किन्तु डॉ0 पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने केवल चौदह रचनायें ही उनके द्वारा रचित मानी हैं। ''डॉ. पीताम्बर बड़थ्वाल ने 'गोरखबानी' में इन रचनाओं का संपादन किया है जिन्हें वे अन्य रचना की तुलना में ज्यादा प्रमाणिक मानते हैं।''[5] इनकी रचनाओं में गुरु महिमा, इन्द्रिय–निग्रह, प्राण साधना, वैराग्य, कुण्डलिनी, जागरण, शून्य–समाधि आदि का वर्णन किया गया है। गोरखनाथ जी की संस्कृत और हिन्दी दोनों प्रकार की रचनाओं का यदि मूल्यांकन किया जाये और उनके व्यक्तित्व से उनका समन्वय किया जाये तो स्पष्ट भासित होगा कि ये उपदेश केवल योगियों के लिए ही नहीं सामान्य जनसमाज के लिए भी उपयोगी और महत्वपूर्ण है। इसलिए आज भी भारतवर्ष में सामाजिक समरसता के पोषक के रूप में सर्वाधिक स्मरणीय बने हुए हैं।

गोरखनाथ जी की हिन्दी रचनाओं में दार्शनिक साधनात्मक और नैतिक प्रवृत्तियाँ व्यक्त हुई हैं। इसीलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास में गुरू गोरखनाथ और उनके पंथवालों की रचनाओं को एक विशेष महत्व प्राप्त है। गुरू गोरखनाथ ने सामाजिक समरसता का सबसे बड़ा अभियान चलाया। उनके इस अभियान में हिन्दू धर्म की विभिन्न जातियों के साथ कई मुस्लिम भी नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और सिद्ध के रूप में प्रतिष्ठा पाई। नाथ सम्प्रदाय का भारत के सामाजिक सांस्कृतिक ढांचे के संरक्षण में अद्वितीय योगदान है। लम्बे समय से विदेशी दासता झेल रहे समाज में इस सम्प्रदाय ने नई स्फूर्ति पैदा की और ऊँचनीच की भावना से परे जाकर आध्यात्मिक तत्व को समझने की दृष्टि पैदा की।'' इस प्रकार गोरखनाथ की साधना का मूल स्वर शील, संयम और शुद्धतावादी है और उन्होंने तांत्रिक उच्छृंखलताओं का विरोध कर निर्मम हथौड़े से साधु और गृहस्थ दोनों की कुरीतियों को चूर्ण–विचूर्ण कर दिया।''[6]

नाथ साहित्य की हिन्दी रचनायें अभी तक अधिकतर हस्तलिखित रूप में ही मिलती हैं, जिसे देखने व पढ़ने वालों को कम ही सुअवसर प्राप्त हो पाता है, फिर भी नाथ साहित्य को अपनी दार्शनिक साधनात्मक और नैतिक प्रवृत्तियों के कारण हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक विशेष महत्व प्राप्त है। इन विशेषताओं के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की बातें दर्शनीय हैं– ''परवर्ती हिन्दी साहित्य में चारित्रिक दृढ़ता, आचरणशुद्धि और मानसिक पवित्रता का जो स्वर सुनाई पड़ता है, उसका श्रेय इस साहित्य (नाथ साहित्य) को ही है। इसीलिए इस पंथ के साहित्य से परवर्ती हिन्दी साहित्य का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।''[7]

हिन्दी साहित्य के आदिकालीन साहित्य में नाथ साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी रचनाओं में पाखण्डों, आडम्बरों आदि का विरोध मिलता है तथा चित्त, मन, आत्मा, योग, धैर्य, मोक्ष आदि का समावेश मिलता है, जो साहित्य के जागृति काल की महत्वपूर्ण रचनायें मानी जाती हैं। इसके द्वारा जनमानस में सामाजिक समरसता जैसे समानता, न्याय, सौहार्द आदि संवेदनाओं को जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान मिला। नाथ पंथ आरम्भ से लेकर आज तक आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व सामाजिक समरसता के लिए सुविख्यात है। ''नाथ पंथ के प्रवर्तक गुरु श्री गोरखनाथ तत्कालीन जाति व्यवस्था के ऊँच–नीच, छुआछूत जैसी कुरीतियों के विरुद्ध खड़े हुए तथा इस विषम सामाजिक परिस्थिति में भारतीय जनता को ज्ञान देने वाले गुरु ने जिस पंथ को एक संगठन के रूप में खड़ा किया वह भारतीय जनमानस के अनुरूप था।[8]

गोरखनाथ जी भारतीय इतिहास के ऐसे तपस्वी हैं जिन्होंने विशुद्ध योगी व तपस्वी होते हुए भी सामाजिक राष्ट्रीय चेतना का नेतृत्व किया। इन्होंने सामाजिक पुनर्जागरण के उद्देश्य से ही नाथ पंथ का गठन किया और भारतीय समाज में सदाचार, नैतिकता, समानता एवं स्वतंत्रता की लौ जलाई, जिसमें जाति–पाँति, ऊँच–नीच, छुआ–छूत, भेदभाव जैसे कुप्रवृत्तियों को समाप्त करने के लिए उपदेश दिए। नाथ पंथ का मानना है कि मानव एक हैं–

''हिन्दू मुसलमान खुदाई के बन्दे।
हम जोगी न कोई किसी के छन्दे।''

नाथ पंथ के विचार दर्शन ने एक ऐसी परम्परा को जन्म दिया, जिसने भारतीय संस्कृति को एकीकृत स्वरूप

प्रदान किया। नाथ पंथी ने जाति व्यवस्था के श्रेष्ठतावादी सिद्धान्त को चुनौती दी एवं सभी वर्णों एवं जातियों को एक समान घोषित किया और सभी वर्गों एवं जातियों के लोगों को दीक्षित भी किया। यही नहीं तत्कालीन जाति व्यवस्था जैसे कुरीतियों के विरुद्ध खड़े हुए। इस विषम सामाजिक परिस्थितियों में भारतीय जनमानस के अनुकूल एक संगठन खड़ा किया। इनमें एक ओर तो ईश्वर में विश्वास की एक निश्चित धारणा थी, वहीं दूसरी ओर धार्मिक पाखण्डों, सामाजिक रूढ़ियों एवं कुरीतियों पर कड़ा प्रहार किया। उनका मानना था कि धर्म के क्षेत्र में बाह्याडम्बर के लिए कोई स्थान नहीं है। मूर्तिपूजा, ऊँच–नीच के भेदभाव आदि का विरोध करते हुए निराकार ब्रह्म की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए गोरखनाथ जी कहते हैं–

''हिन्दू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परमपद, जहाँ देहुरा मसती।''[9]

गोरखनाथ ने धार्मिक कट्टरता, धार्मिक उन्माद इत्यादि सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास किया और सभी लोगों के लिए योग को ऐसे सहज मार्ग के रूप में प्रतिपादित किया जो बिना भेदभाव के ईश्वर से साक्षात्कार करा सकता है। नाथ साहित्य में एकरस समाज का निरन्तर प्रयत्न देखा जा सकता है। गुरु जी कहते हैं– ''मानव शरीर में ही भगवान का वास है। अन्तः साधना ही मूल है। योग के माध्यम से शरीर और आत्मा को साधकर प्रत्येक मानव प्राणी मोक्ष प्राप्त कर सकता है।''[10] नाथ साहित्य में योगी के साथ–साथ सांसारिक लोगों को भी सही राह दिखाने वाला प्रमुख ग्रन्थ गोरखबानी है। निरोगी काया कैसे प्राप्त किया जा सकता है। उसके नियम का वर्णन अवलोकनीय है–

''अवधू अहार तोड़ौ निद्रा मोड़ौ,
कबहु न होइगा रोगी।
छठै छठ मासै काया पलटिबा,
ज्यूँ को को बिरला विजोगी।''[11]

गुरु गोरखनाथ की रचना में हठयोग का वर्णन मिलता है। हठयोग और इन्द्रिय निग्रह के कारण ही नाथ सम्प्रदाय का भारत विभूतियों में महत्वपूर्ण स्थान है। गोरखनाथ में शंकराचार्य की भाँति अदम्य साहस, अपूर्व संगठन शक्ति एवं वैराग्य व नियमन का विलक्षण योग था। योग मार्ग जिसे हठयोग कहते हैं, इसका इस तरह संगठन व संचालन किया कि वह भक्ति आन्दोलन के पूर्व सर्वाधिक शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन बन गया। ''हठयोग के 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' ग्रन्थ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चन्द्र। इन दोनों के योग को ही 'हठयोग' कहते हैं।''[12]

योग के महत्व को बताते हुए गोरखनाथ जी लिखते हैं कि–

''वेदे न सास्त्रे कतेवे न कुरांणे,
पुस्तके न बंच्या भाई।
ते पद जाना विरला जोगी,
और दुनी सब धंधै लाई।।''[13]

अर्थात् वेदों, शास्त्रों, धर्मों की किताबों, कुरान आदि ग्रन्थों में जिस ब्रह्मपद का वर्णन नहीं पढ़ा जा सकता, उस पद को बिरले योगी जानते हैं। बाकी दुनिया तो माया में लिप्त होकर धंधों में ही लगे रहते हैं।

भारत के सुदूरवर्ती क्षेत्रों तक की यात्रा करके गुरु गोरखनाथ जी दलित, पीड़ित और उपेक्षित जन समाज का उद्धार करने के साथ ही मानवता का संदेश देकर तत्कालीन समाज को स्वस्थ, सबल, चारित्रिक आदर्श के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। योगियों के भी कर्तव्य को बताते हुए कहते हैं कि योगियों का घर पूरी दुनिया है। जनहित के लिए भ्रमण करते हुए अपने काम, क्रोध व अहंकार के निवारण पर ध्यान देना चाहिए–

''नाथ कहे तुम सुनहु रे अवधू,
दिढ़ करि राषहु चीया।
काम क्रोध अहंकार निबारौ,
तौ सबै दिसंतर।।''[14]

नाथ साहित्य सम्पूर्ण समाज का मार्ग दर्शन करते हुए बताया है कि संयमित जीवनचर्या ही शरीर का सुख है, यहीं स्वर्ग है, असंयमित और रोगग्रस्त जीवन ही दुःख का कारण है। नाथ साहित्य में समाज में फैली अहिंसा की विषवेली को काटकर चारित्रिक दृढ़ता और मानसिक पवित्रता पर विशेष जोर दिया गया है। मन की शुद्धता और नैतिक आचरण ही सामाजिक समरसता स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गुरु गोरखनाथ अपने मतानुयायियों को शीलवान होने का उपदेश देते हुए कहते हैं कि हँसना, खेलना और गीत गाना जीवन का अभिन्न अंग है किन्तु चित्त को दृढ़ रखना भी आवश्यक है–

''हसिबा बोलिबा रहिबा रंग,
काम क्रोध न करिबा संग

हसिबा बोलिबा गाइबा गीत,
दिढ़ करि राषि अपना चीत।।''[15]

नाथ साहित्य (पंथ) अपने अभ्युदय काल से ही उपासना की जटिलता और धार्मिक आडम्बरों तथा पाखण्डों का प्रबल विरोध किया। जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र तथा लिंग इत्यादि के समस्त विषमताओं के उलट सभी नाथ पंथ के योगी एकत्व एवं समत्व के लिए समर्पित थे। गोरखनाथ ने कर्मकाण्ड, पाखण्ड मुक्त उपासना पद्धति प्रदान की जो अमीर, गरीब, ऊँच– नीच, सभी के लिए समान रूप से सर्वसुलभ थी। इस प्रकार नाथ पंथ एक सामाजिक क्रान्ति के रूप में थी जो हर व्यक्ति को सुखपूर्वक व निरोगी जीवन जीने का उपदेश देती है।

नाथ पंथ ने समरस समाज की स्थापना में धार्मिक आध्यात्मिक दर्शन को न केवल स्थापित किया अपितु सम्पूर्ण मानव मात्र के लिए योग, धर्म और आध्यात्म को सर्वसुलभ बनाया। निम्न वर्ग के लोग अत्यधिक संख्या में नाथ पंथ में दीक्षित हुए थे। इस संदर्भ में हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि –''चौरासी सिद्धों में बहुत से मछुआरे, चमार, धोबी, डोम, कुम्हार, लकड़हारे, दर्जी और अनेकों शूद्र जाति के लोग थे। नाथ पंथ के प्रभाव से भारत में सूफी विचारधारा का विकास हुआ।'' यह सामाजिक समरसता की बहुत बड़ी मिशाल है।

नाथ सम्प्रदाय में गुरु का स्थान सर्वोपरि माना गया है। इसीलिए गुरु शिष्य परम्परा को नाथ सम्प्रदाय में अधिक महत्व दिया गया है। उनकी मान्यता है कि वैराग्य भाव का दृढ़िकरण और विविध साधना गुरु ज्ञान से ही संभव हो पाता है। गोरखनाथ ही कहते हैं कि गुरु ही आत्मा ब्रह्म से अवगत कराते हैं। गुरु से प्राप्त ज्ञान के प्रकाश में तीनो लोक का रहस्य प्रकट हो सकता है। इसीलिए गुरु का होना आवश्यक है–

''गुरु कीजै गहिला, निगुरा न रहिला।
गुरु बिन ग्यान न पायला रे भाइला।''

गुरु गोरखनाथ का मानना था कि आकाश मण्डल में एक औंधे मुँह का कुआँ है, जिसमें अमृत का वास है। जिसने अच्छे गुरु की शरण ली है वहीं उसमें से भर–भर कर अमृत पी सकता है जो सच्चे गुरु के शरण में नहीं रहता वह अमृत का पान नहीं कर सकता–

''गगन मंडल मैं ऊँधा कूवा तहाँ अमृत का बासा।
सगुरा होई सुभरि भरि पीवै, निगुरा जाई पियासा।।''[16]

आदिकालीन हिन्दी को समृद्ध करने में नाथ साहित्य की भाषा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि नाथों ने संस्कृत भाषा में भी रचनायें लिखी हैं। लेकिन सामान्यजनों के लिए उन्होंने अपने विचार जनभाषा में ही अभिव्यक्त किया है। नाथ साहित्य में नाथ पंथ ने अपने सिद्धान्तों की मीमांसा जनभाषा के आश्रय से साखियों और पदों में की है। नीति, आचार, संयम और योगादि इनके साहित्य के प्रधान विषय हैं। गोरखनाथ ने ही षट्चक्रों वाला योग मार्ग हिन्दी साहित्य में चलाया था। इस मार्ग में विश्वास करने वाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था। इस संदर्भ में यह दोहा अवलोकनीय है–

''नौ लख पातरिं आगे नाचै, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।''[17]

कबीर की उलटवासियों में जिस गूढ़ प्रतीकों की सृष्टि की गयी है, इसे समझने के लिए नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित हठयोग का ज्ञान होना चाहिए। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का मानना है कि ''गोरखनाथ जी ने परवर्ती संतों के लिए श्रद्धा चरण प्रधान धर्म की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। जिन संत साधकों की रचनाओं से हिन्दी साहित्य गौरवान्वित है, उन्हें बहुत कुछ बनी बनाई भूमि मिली थी।''[18] धार्मिक साहित्य कहा जाने वाला नाथ साहित्य भारतीय साहित्य के इतिहास के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि नाथ साहित्य समाज में मौजूद सामाजिक मुद्दों और असमानताओं के बारे में जागरुक कर सामाजिक एकता के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

नाथ साहित्य के विकास में जिन अन्य नाथ कवियों ने योगदान दिया, उनमें चौरंगीनाथ, गोपीचन्द, चुणकरनाथ, भरथरी, जलन्धीपाव, चर्पटनाथ, बालानाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तनाथ, गरीबनाथ आदि ने इस काव्यधारा को समृद्ध किया। इन कवियों की रचनाओं में उपदेशात्मक तथा खण्डन–मण्डन का प्राधान्य है। नाथ साहित्य की देन को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा जी लिखते हैं कि– ''गोरखनाथ ने नाथ सम्प्रदाय को जिस आन्दोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गयी वहाँ दूसरी ओर विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर भी आघात किया। जीवन

को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहजमार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।'' आदिकालीन साहित्य में नाथ साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है और वर्तमान में भी पथ प्रदर्शक के रूप में आलोकित रहेगा।

अतः सम्पूर्ण मानव समाज को आज नाथ पंथ और नाथ साहित्य की अत्यधिक आवश्यकता है। जहाँ एक भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण के प्रभाव से सामाजिक व्यवस्था छिन्न–भिन्न होती जा रही है, ऐसी स्थिति में नाथ पंथ के योगियों का समाजपयोगी ज्ञान वर्तमान में प्रासंगिक हो गया। प्रसिद्ध साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदाय' में नाथ साहित्य की प्रासंगिकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''नाथ परम्परा की शुरुआत बहुत ही प्राचीन रही है। नाथ प्रचलन विभिन्न धर्मों के संतों के बीच विद्यमान है। वस्तुतः नाथ पंथ समाज साहित्य व भारतीय संस्कृति का अनिवार्य अंग है।''

इस प्रकार नाथ पंथ का वैचारिक अधिष्ठान 'सामाजिक समरसता ही राष्ट्रीयता है' के सूत्रवाक्य में है। समरसता भरे समाज के आधार पर राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की जिस अवधारणा की आधार शिला महायोगी गोरखनाथ जी ने रखी थी, उसे वर्तमान में उनके अनुयायी धार्मिक और आध्यात्मिक निरन्तरता के साथ स्थायी रखने के लिए हर संभव प्रयास कर रहे हैं। सामाजिक समरसता के पोषक नाथ साहित्य समानता, न्याय और सांस्कृतिक एकता के साथ मानव कल्याण की भावना को दृढ़ करता है। सामाजिक समरसता के बिना विकास को गति नहीं मिल सकती। अतः हम सबका दायित्व है कि नाथ पंथ के इस मूलमंत्र को अपनाकर सामाजिक एकता व अखण्डता को बनाये रखने में अपना सहयोग प्रदान करें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास – डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या – 24।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – संपादन डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ संख्या – 82।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – संपादन डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ संख्या – 82।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. ईश्वरीदत्त शील, पृष्ठ संख्या – 12।
5. गोरखनाथ – नागेन्द्र उपाध्याय, पृष्ठ संख्या – 5।
6. नाथ सम्प्रदाय – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या–188।
7. नाथ सम्प्रदाय – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या–98।
8. नाथ सम्प्रदाय और सामाजिक समरसता – गोरक्षक पीठ प्रकाशक – प्रियदर्शी, पृष्ठ संख्या – 12।
9. गोरखबानी – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ संख्या–25।
10. गोरखबानी – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ संख्या–09।
11. गोरखबानी – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ संख्या – 13।
12. नाथ सम्प्रदाय – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या–135।
13. गोरखबानी – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ संख्या –04।
14. गोरखबानी – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ संख्या – 11।
15. गोरखबानी – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ संख्या – 04।
16. गोरखबानी – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ संख्या – 30।
17. गोरखबानी – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ संख्या – 227।
18. नाथ सम्प्रदाय – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या – 99।

ISSN : 2394-4366

Received: 06 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

भारत में महिलाओं की स्थिति : वैदिक काल से आधुनिक भारत तक एक ऐतिहासिक विश्लेषण

(The Status of Women in India: A Historical Analysis from the Vedic Period to Modern India)

– डॉ. पूनम अस्थाना
असिस्टेन्ट प्रोफेसर –
समाजशास्त्र विभाग,
कालीचरन (पी.जी.) कालेज,
लखनऊ–226003 (उत्तर प्रदेश)

ई. मेल–
poonamasthana065@gmail.com

सारांश

भारत में महिला स्थिति का विकास वैदिक स्वतंत्रता से लेकर आधुनिक संवैधानिक सशक्तिकरण तक एक लम्बी ऐतिहासिक यात्रा का परिणाम है। नारी ने हर युग में अपनी भूमिका का पुनर्निर्माण किया है। कभी वेदपाठी, कभी संत–कवयित्री, कभी स्वतंत्रता सेनानी, और आज वैज्ञानिक, प्रशासक और नीति–निर्माता के रूप में। फिर भी चुनौतियाँ अनेक हैं। सामाजिक रूढ़िवादिता कार्यस्थल भेदभाव, घरेलू हिंसा, और डिजिटल युग में नई असमानताएँ। सशक्तिकरण केवल कानूनों से नहीं, बल्कि मानसिकता में परिवर्तन से संभव होगा। 21वीं सदी में महिला शिक्षा दर 70 प्रतिशत से अधिक पहुँची है। कॉर्पोरेट, राजनीति और विज्ञान में महिलाओं की भागीदारी निरन्तर बनी किन्तु सामाजिक– मानसिक रूढ़ियाँ और कार्यस्थल पर भेदभाव अब भी चुनौतियाँ हैं। इस्लाम और भारतीय महिला स्थिति का परस्पर प्रभाव इस्लाम ने विवाह, मेहर, तलाक और विरासत में स्त्रियों के अधिकारों को धार्मिक मान्यता दी, जो तत्कालीन हिन्दू समाज से कहीं प्रगतिशील था। किन्तु व्यवहार में, भारत में इस्लामी समाज ने भी पर्दा–प्रथा और घरेलू सीमाओं को सुदृढ़ किया है।

यह शोध भारत में महिलाओं की स्थिति का एक दीर्घकालिक ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें वैदिक युग से लेकर आधुनिक भारत तक स्त्रियों की दशा, दिशा और सामाजिक स्थिति में हुए परिवर्तन का अध्ययन किया गया है। वैदिक काल में जहाँ स्त्रियाँ स्वतंत्र, शिक्षित और सम्मानित थीं, वहीं धर्मशास्त्रीय और मध्यकालीन काल में उनकी स्थिति क्रमशः अधोगामी होती गई। औपनिवेशिक युग ने सुधारवादी चेतना का आरंभ किया, जब कि स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक समानता और नारी सशक्तिकरण ने उनके जीवन में नए अवसर प्रदान किए। शोध यह भी इंगित करता है कि यद्यपि आज भारतीय महिलाएँ राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति कर रही हैं, फिर भी सामाजिक–सांस्कृतिक रूढ़ियाँ और मानसिक अवरोध उन्हें समानता के वास्तविक शिखर तक पहुँचने से रोकते हैं।

1. भूमिका –
(Introduction)-

भारतीय सभ्यता में "नारी" को सृजन, पालन और संस्कृति के केन्द्र के रूप में देखा गया है। वह केवल परिवार का ही नहीं, बल्कि समस्त समाज का नैतिक और सांस्कृतिक स्तम्भ रही है। मनुस्मृति में कहा गया है– "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता" अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं। किन्तु यह आदर्श रूप केवल वैदिक ग्रंथों तक सीमित रहा, व्यवहारिक जीवन में नारी की स्थिति समय–समय पर बदलती रही। भारतीय इतिहास का यह परिवर्तन वैदिक स्वतंत्रता से लेकर मध्यकालीन दमन, औपनिवेशिक सुधारों और आधुनिक संवैधानिक समानता तक फैला हुआ है। इस शोध–पत्र का उद्देश्य उसी ऐतिहासिक क्रम में यह समझना है कि भारतीय स्त्री ने किन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों में अपना अस्तित्व बनाए रखा और आज उसकी स्थिति समाज में प्रयुक्त वैश्विक मानकों पर कहाँ खड़ी है।

2. शोध के उद्देश्य –
(Objectives of the Study)-

वैदिक काल से आधुनिक काल तक भारतीय महिलाओं की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना। इस्लामी शासन और औपनिवेशिक प्रभावों के दौरान स्त्रियों की सामाजिक–सांस्कृतिक भूमिका का विश्लेषण करना। स्वतंत्र भारत में संविधानिक और कानूनी सुधारों के माध्यम से हुए सशक्तिकरण का मूल्यांकन करना। भारत की समकालीन महिला स्थिति का वैश्विक लैंगिक सूचकों (Gender Indicators) से तुलनात्मक अध्ययन करना।

3. शोध–पद्धति –
(Research Methodology)-

यह अध्ययन द्वितीयक स्रोता (Secondary Sources) पर आधारित है, जिसमें ऐतिहासिक ग्रंथ, शोध–पत्र, विश्वविद्यालयीय अध्ययन, सरकारी रिपोर्टें और अंतरराष्ट्रीय संगठनों (UNDP) World Bank आदि) के आँकड़े शामिल किए गए हैं। शोध की पद्धति ऐतिहासिक–विश्लेषणात्मक (Historical & Analytical Method) रही है, जिसमें प्रत्येक कालखण्ड की सामाजिक–राजनीतिक पृष्ठभूमि के आधार पर महिला स्थिति की व्याख्या की गई है।

4. भारत में महिलाओं की स्थिति –
कालखण्डीय विश्लेषण (Chronological Analysis)-

4.1 वैदिक काल (1500 ई.पू.–500 ई.पू.)– स्वतंत्रता और सम्मान का युग– वैदिक युग भारतीय नारी के लिए स्वर्णयुग कहा जाता है। इस काल में स्त्रियों को शिक्षा, यज्ञ, धार्मिक विमर्श और सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त था। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा और घोषा जैसी विदुषियाँ वैदिक विचार–विमर्श में भाग लेती थीं। स्त्री को "सहधर्मचारिणी" कहा गया– अर्थात वह पुरुष की समान सहभागी थी। "स्वयंवर" जैसी परम्पराएँ स्त्री की विवाह–स्वायत्तता को दर्शाती हैं। ऋग्वेद में उल्लेख है– "अथो अबला नारी नास्ति, परा शक्तिः स नारी।" इससे स्पष्ट है कि नारी को केवल गृहिणी नहीं, बल्कि शक्ति के रूप में देखा गया। किन्तु यह सम्मान मुख्यतः उच्च–वर्णीय समाज तक सीमित था। श्रमिक वर्ग की महिलाएँ, यद्यपि श्रम में भाग लेती थीं, किन्तु उनके अधिकार सीमित थे।

4.2 उत्तर–वैदिक और धर्मशास्त्रीय काल (500 ई.पू.– 600 ई.स.) – निर्भरता की ओर संक्रमण– इस काल में "मनुस्मृति", "याज्ञवल्क्य स्मृति" और "नारद स्मृति" जैसे ग्रंथों ने स्त्री की भूमिका को गृह–सीमा में बाँधा। मनु के अनुसार– "पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने, पुत्रो रक्षति वार्धक्ये।" अर्थात् स्त्री जीवनपर्यंत किसी पुरुष की अभिभावकता में रहेगी। शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में उनकी भागीदारी घटने लगी। बाल–विवाह, दहेज, बहुपत्नी प्रथा जैसी कुरीतियाँ फैलने लगीं। फिर भी बौद्ध और जैन धर्म ने कुछ सुधारात्मक आयाम दिए कृ महाप्रजापती गौतमी (बुद्ध की पालक माता) पहली भिक्षुणी बनीं। जैन परम्परा में मल्लिनाथ जैसी महिला तीर्थंकर का उल्लेख भी उल्लेखनीय है।

4.3 मध्यकाल (600 ई.स.– 1700 ई.स.)– पतन और प्रतिरोध का युग– मध्ययुग में भारत पर मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ महिलाओं की सामाजिक स्थिति में तीव्र परिवर्तन आया। पर्दा प्रथा, बाल विवाह, जौहर, और सती जैसी कुरीतियाँ प्रचलित हुईं। स्त्री को घरेलू दायरे में सीमित कर दिया गया। किन्तु इसी काल में कुछ महिलाओं ने इन सीमाओं को तोड़ा कृ रजिया सुल्ताना दिल्ली की पहली महिला शासक बनींय मीराबाई, लल्ला योगेश्वरी, अक्कमहादेवी जैसी संत–कवयित्रियाँ धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज बनीं।

इस्लामी प्रभाव से हिन्दू समाज और अधिक रक्षात्मक हुआ, जिसके परिणामस्वरूप स्त्री स्वतंत्रता और भी सीमित होती चली गई। The medieval Indian woman though marginalized found her voice in bhakti and sufi traditions-ß (Dawn, 2010)

4.4– औपनिवेशिक काल (1700– 1947)– सुधार और पुनर्जागरण का आरम्भ– ब्रिटिश शासनकाल ने भारतीय समाज को आत्ममंथन के लिए प्रेरित किया। पश्चिमी शिक्षा और प्रिन्ट संस्कृति के प्रसार से सुधार आंदोलनों का उदय हुआ। राजा राममोहन राय ने सती–प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया– 1829 में Sati Abolition Act पारित हुआ। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा–पुनर्विवाह का समर्थन किया– 1856 में Widow Remarriage Act पारित हुआ। महिलाओं की शिक्षा के लिए पंडिता रमाबाई, सावित्रीबाई फुले, आनन्दीबाई जोशी जैसी अग्रणी महिलाओं ने दिशा दी। ब्रिटिश भारत के उत्तरार्ध में भारतीय महिला परिषद (Indian Women's Conference), राष्ट्रीय महिला सभा जैसे संगठन बने। स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी ने उन्हें सार्वजनिक नेतृत्व का अवसर दिया– सरोजिनी नायडू, कैप्टन लक्ष्मी सहगल, भीकाजी कामा जैसी महिलाएँ राष्ट्र की धुरी बनीं। The colonial period paradoxically laid both the foundation of reform and the roots of modern feminism in India- (PSOU (2022).

4.5 स्वतंत्रोत्तर भारत (1947 – वर्तमान)– समानता और सशक्तिकरण का युग– स्वतंत्र भारत के संविधान ने महिलाओं को विधिक रूप से समान अधिकार प्रदान किए। अनुच्छेद 14, 15 और 16 ने समानता, स्वतंत्रता और समान अवसर का अधिकार सुनिश्चित किया।

महत्वपूर्ण कानूनी प्रावधान– हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (1956) सम्पत्ति पर समान अधिकार दहेज निषेध अधिनियम (1961) समान वेतन अधिनियम (1976) घरेलू हिंसा अधिनियम (2005) महिला आरक्षण विधेयक (2023) संसद व विधानसभाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण 1970–80 के दशक में नारी आन्दोलनों (जैसे Mathura Rape Case, Self-Employed Women's Association) ने महिला अधिकारों को नई चेतना दी।

21वीं सदी में महिला शिक्षा दर 70 प्रतिशत से अधिक पहुँची है। कॉर्पोरेट, राजनीति और विज्ञान में महिलाओं की भागीदारी निरन्तर बनी किन्तु सामाजिक–मानसिक रूढ़ियाँ और कार्यस्थल पर भेदभाव अब भी चुनौतियाँ हैं।

5. इस्लाम और भारतीय महिला स्थिति का परस्पर प्रभाव– इस्लाम ने विवाह, मेहर, तलाक और विरासत में स्त्रियों के अधिकारों को धार्मिक मान्यता दी, जो तत्कालीन हिन्दू समाज से कहीं प्रगतिशील था। किन्तु व्यवहार में, भारत में इस्लामी समाज ने भी पर्दा–प्रथा और घरेलू सीमाओं को सुदृढ़ किया। मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा सीमित रही, यद्यपि कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं– बेगम हजरत महल, बेगम रुखैया सखावत हुसैन जैसी महिलाओं ने स्वतंत्रता और शिक्षा के क्षेत्र में नेतृत्व किया। Islamic legal thought offered rights to wom,e but cultural patriarchy curtailed them in practice (Tasnim & L.B. Journal, 2023)

6. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारत की स्थिति (India in Global Perspective)- 2024 में UNDP के Gender Development Inde के अनुसार– भारत की रैंकिंग 115 के आस–पास है। महिला श्रम भागीदारी दर केवल 24 प्रतिशत है (विश्व औसत 47 प्रतिशत)। महिला साक्षरता दर 70.3 प्रतिशत, पुरुषों की तुलना में लगभग 10 प्रतिशत कम। राजनीतिक प्रतिनिधित्व में सुधार हुआ है, संसद में महिलाओं की भागीदारी अब 15 प्रतिशत तक पहुँच चुकी है।

विश्व बैंक (2024) के अनुसार भारत ने मातृ मृत्यु दर, शिक्षा उपलब्धता और स्वास्थ्य सेवाओं में उल्लेखनीय सुधार किया है। किन्तु लैंगिक वेतन–अंतर, कार्यस्थल सुरक्षा, और घरेलू हिंसा की घटनाएँ अब भी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। भारत वैश्विक परिदृश्य में "मध्यम प्रगति" वाले देशों में आता है– यानी संवैधानिक समानता तो है, पर सामाजिक समानता अभी दूर है।

7. विश्लेषणात्मक निष्कर्ष (Analytical Discussion)- भारत में महिलाओं की स्थिति का विकास एक रेखीय नहीं, बल्कि चक्रीय प्रक्रिया रही है। हर युग में नारी ने किसी न किसी रूप में अपनी पहचान पुर्नस्थापित की। कालखण्ड, वैदिक काल प्रमुख स्थिति, स्वतंत्र और शिक्षित विशिष्ट विशेषताएं, वेदाध्ययन, स्वयंवर, धार्मिक भागीदारी कालखण्ड, उत्तर–वैदिक काल प्रमुख स्थिति,

निर्भरता की शुरुआत विशिष्ट विशेषताएं, धर्मशास्त्रीय नियंत्रण, शिक्षा में गिरावट कालखण्ड, मध्यकाल प्रमुख स्थिति, दमन और रूढ़ियाँ विशिष्ट विशेषताएं, पर्दा, बाल–विवाह, स्त्री–दमन कालखण्ड, औपनिवेशिक काल प्रमुख स्थिति,रू सुधार और पुनर्जागरण विशिष्ट विशेषताएं, सामाजिक सुधार, महिला शिक्षा कालखण्ड, स्वतंत्र भारत प्रमुख स्थिति, संवैधानिक समानता विशिष्ट विशेषताएं, विधिक अधिकार, आरक्षण, सशक्तिकरण।

8. निष्कर्ष (Conclusion) – भारत में महिला–स्थिति का विकास वैदिक स्वतंत्रता से लेकर आधुनिक संवैधानिक सशक्तिकरण तक एक लम्बी ऐतिहासिक यात्रा का परिणाम है। नारी ने हर युग में अपनी भूमिका का पुनर्निर्माण किया है। कभी वेदपाठी, कभी संत–कवयित्री, कभी स्वतंत्रता सेनानी, और आज वैज्ञानिक, प्रशासक और नीति–निर्माता के रूप में। फिर भी चुनौतियाँ अनेक हैं। सामाजिक रूढ़िवादिता कार्यस्थल भेदभाव, घरेलू हिंसा, और डिजिटल युग में नई असमानताएँ। सशक्तिकरण केवल कानूनों से नहीं, बल्कि मानसिकता में परिवर्तन से संभव होगा। (Equalityforwomen is not only a right, it is the foundation of a progressive society).

9. सुझाव (Recommendations)- प्राथमिक स्तर से लैंगिक–संवेदनशील शिक्षा का समावेश। कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा के लिए कठोर अनुपालन। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला उद्यमिता को प्रोत्साहन। राजनीतिक भागीदारी को आरक्षण से परे बढ़ाने के उपाय। मीडिया और डिजिटल क्षेत्र में महिला प्रतिनिधित्व को सशक्त बनाना।

सन्दर्भ–सूची
(References)

1. Your Article Library - (2016), Status of Women in Ancient India.
2. IJRES Journal, (2021) - Status of Women during Post-Vedic Period in India.
3. Dawn News - (2010), Time-Check: Women in Medieval India.
4. Tasnim - L B Journal of Humanities & Social Sciences - (2023), Islamic Influence on Indian Women's Position.
5. SGVU University - (2023), Women in Indian Society: Modern India (MA History Module HS-504)
6. PSOU University-(2022), Social Reforms and Women in Colonial India.
7. NIOS - (2020), Gender Studies – Women in Modern India.
8. Ideas for India - (2023), Women Empowerment in India : Does Colonial History Matter?
9. World Bank - (2024),World Development Indicators – Female Labour Force Participation.
10. UNDP - (2024), Human Development Report 2024 – Gender Development Index.

ISSN : 2394-4366

Received: 08 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

भारतीय दर्शन एवं जैन न्याय में डॉ महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य का योगदान

– मनीष कुमार जैन
(प्राकृताचार्य)
शासकीय शिक्षक, बिहार सरकार
शोधकर्ता – जैन विद्या अध्ययन केन्द्र, तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी, मुरादाबाद – 244102 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
jainmanish136@gmail.com

– प्रो. अशोक कुमार जैन
/डॉ. हर्षित जैन
निर्देशक –
जैन विद्या अध्ययन केन्द्र, तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी, मुरादाबाद – 244102 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
jainashokkumar@gmail.com

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति कही जाती है। भारतीय संस्कृति पावनतोया गंगा है। उसमें दो महान नदी आकर मिली हुई है–श्रमण और वैदिक। इन दोनों के संगम से विशाल संस्कृति की गंगा बनी है। न अकेली श्रमण धारा को हम भारतीय संस्कृति कह सकते है न अकेली वैदिक धारा को हम भारतीय संस्कृति नाम दे सकते है। किन्तु दोनों मिलकर भारतीय संस्कृति का निर्माण करती है।

डॉ महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य का जन्म वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के दिन (11 मई, 19119) खुरई (म.प्र.) की पवित्र भूमि पर हुआ, पूर्णिमा के दिन जन्म होने के कारण आपका प्रारम्भिक नाम था 'पूर्णचन्द्र' जो बाद में महेन्द्र कुमार के नाम से प्रसिद्ध हुआ, आपकी माता का नाम श्रीमती सुन्दरबाई और पिता का नाम जवाहर लाल जैन था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जन्म भूमि खुरई में सम्पन्न हुई थी।[1] माध्यमिक शिक्षा मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध नगर इन्दौर से प्राप्त कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने ज्ञान की राजधानी वाराणसी गये, जहां पर आपने ''न्यायाचार्य' एम. ए. तथा जैन न्याय तीर्थ की उपाधि' काशी नगरी के संस्कृत विश्वविद्यालय से प्राप्त की थी। जिससे आपके नाम के साथ 'न्यायाचार्य' भी जुड़ गया और आप 'न्यायाचार्य' के नाम से जाने जाने लगे। आपको सर्वप्रथम काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ''सिद्धिविनिश्चय''ग्रन्थ पर विद्यावारिधि की उपाधि प्राप्त हुई।[2] आपको विश्वविद्यालय ने वैदिक दर्शन के प्राध्यापक पद पर नियुक्त किया।

आपसे पहले पूज्य श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी तथा पं. माणिकचन्द्र कौन्देय न्यायाचार्य हो गए थे। डॉ. महेन्द्र कुमार जी तृतीय न्यायाचार्य थे और पं. दरबारी लाल कोठिया चतुर्थ न्यायाचार्य हुए। डॉ. महेन्द्र कुमार जी केवल उपाधि धारक नहीं थे अपितु जैन न्यायशास्त्र पर अद्वितीय कार्य भी किया था जिसे ध्यान में रखकर आपको यदि इस युग का 'अकलंक' कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। आपने 48 वर्ष की अल्पायु में ही जैनन्याय के ग्रन्थों के साथ जैनेतर न्यायशास्त्रों का भी अध्ययन करके गम्भीर न्याय शास्त्र की विद्वत्ता को प्राप्त कियाराष्ट्र के यशस्वी और मूर्धन्य विद्वान् डॉ. महेन्द्र कुमार न्यायचार्य जी जैन का भारतीय दर्शनशास्त्र और जैनदर्शन के योगदान में ''यावत् चन्द्र दिवाकरौ' अमर रहेगा। आपकी गणना इस शताब्दी के मूर्धन्य विद्वानों में आती है। वे जैन दर्शन के ही नही अपितु समस्त भारतीय दर्शनों के तलस्पर्शी विद्वान थे।

पण्डित परिश्रमी, दृढ़–संकल्पी होने के साथ–साथ विनीत स्वभाव से सम्पन्न थे। वे वारिष्ठ विद्वानों का सम्मान करते थे। उनके बीच रहकर न्याय शास्त्र आदि ग्रन्थों पर चर्चा करते और मार्गदर्शन मांगते थे। पं. नाथूराम प्रेमी, महापण्डित राहुल सांकृत्ययन, पं सुखलाल जी संघवी, महामहोमाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज, डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पं. गणेश प्रसाद जी वर्णी, डॉ. हीरालाल जैन आदि के सान्निध्य में रहकर प्रेरित और उत्साहित रहकर

विनीत भाव से मार्गदर्शन प्राप्त करते थे।[3] यही कारण है कि विभिन्न संकटों को पर कर प्राचीन जैनाचार्य समन्द्रभद्र, प्रभाचन्द्र और अकलंक स्वामी के ग्रन्थों को अक्षुण्ण बनाए रखा।

धर्म, दर्शन और न्याय – धर्म मुख्य रूप से 'आचार' का प्रतिपादक कहलाता है और धर्म द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का विवेकपूर्वक विचार करना दर्शन है। धर्म और दर्शन के विचारों का तर्क द्वारा खण्डन –मण्डन करके स्वसिद्धान्त का सम्पोषण करना न्याय या तर्कविद्या या प्रमाणशास्त्र कहलाता है। जैसे 'सत्य बोलो, असत्य मत बोलो' इस तरह विधि– प्रतिशेध (कर्त्तव्य– अकर्त्तव्य) रूप आचार का कथन धर्म है। इसमें जब 'क्यों' का प्रश्न उठता है तो उत्तर के रूप में दर्शन का विषय आता है, जैसे– सत्य बोलने से पुण्य होता है और प्रतिष्ठा मिलती है। असत्य बोलने से पाप होता है और अप्रतिष्ठा होती है। न्यायशास्त्र हेतुओं के द्वारा धर्म और दर्शन के कर्त्तव्य– अकर्त्तव्य रूप विचारों को सुदृढ़ करता है। इस तरह न्यायशास्त्र एक तर्कशास्त्र है, जैसे न्यायालय में एक वकील तर्कों के द्वारा अपने मुवक्किल के पक्ष को परिपुष्ट करता है वैसे ही धर्मशास्त्र में न्यायविद्या युक्ति या तर्क या प्रमाण देकर अपनापक्ष सिद्ध करता है और दूसरे का खण्डन करता है। इस न्यायविद्या के ग्रन्थों का ज्ञाता न्यायविद्, तर्क–वागीश, न्यायाचार्य, न्यायतीर्थ आदि उपाधियों वाला होता है।इसी परम्परा में पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, डॉ. दरबारीलाल कोठिया, डॉ. उदयचन्द्र जैन आदि हुए।

दर्शनशास्त्र के अध्ययन में आप बचपन से ही निपुण रहे है। यही कारण है कि आपने 10 वर्ष की उम्र में ''न्यायतीर्थ'' की परीक्षा उत्तीर्ण कर विद्वानों के हृदय में जगह बना ली थी। ''स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते।' ज्ञान और अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल पर आपने गणमान्य जनों के द्वारा सम्मान प्राप्त किया।

भारतीय न्यायशास्त्र में तर्क–शास्त्र का अत्यधिक महत्व रहा है। सत्य की खोज और प्रमाण, प्रमेय और प्रमा की विवेचन न्यायशास्त्र का प्रमुख विषय रहा है। न्यायचार्य महेन्द्र कुमार जैन ने आधुनिक काल में जब संस्कृत और प्राकृत भाशा में लिपिबद्ध दार्शनिक ग्रंन्थों का अध्ययन करने वाले विद्वान लुप्त हो रहे थे। तब इस परिस्थिति में आपने अपने चिन्तन मनन और लेखन के द्वारा भारतीय दर्शन पर अपनी अलोकित छवि अंकित की थी।भारतीय दर्शन के क्षेत्र में किये गये योगदान के द्वारा अल्पायु में ही दर्शन, न्याय और जैन दर्शन की विद्वानों की परम्परा में आपकाशीर्श विद्वानों के क्रम में नाम अंकित हो गया था।

कार्यक्षेत्र– अध्ययन करने के उपरान्त भी आप ज्ञान की पिपासा दूर नहीं हुई। क्योंकि महान पुरुषों का मन में जो विचार होता वही वे बोलते है और कृति में भी लाते है। ''मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येक महात्मनाम्'' उक्ति को साकार करते हुए, वे माँ सरस्वती की सेवा कर जैन पाठशाला खुरई,[4] वाराणसी, महावीर जैनविद्यालय[5] मुंबई, काशी नगरी के प्रसिद्ध श्री स्याद्वाद महाविद्यालय,[6] में अध्ययन–अध्यापन का कार्य कराने लगे। तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बौद्ध दर्शन विभाग[7], आपने अध्यापन कार्य के साथ साथ दुर्लभ ग्रन्थों का संपादन कार्य किया।बाद आपकी नियुक्ति संस्कृत विश्वविद्यालय काशी में हुई परन्तु ज्वाइन करने के पूर्व ही आपको 14 मई, 1959 को पक्षाघात हो गया और 20 मई को इस संसार से विदा हो गए ।

डॉ. महेंद्र कुमार जैन 'न्यायाचार्य' का योगदान एक विद्वान, संपादक और शिक्षक के रूप में अतुलनीय है। उन्होंने अपने काम से जैन साहित्य की समृद्ध परम्परा को आधुनिक युग से जोड़ा और उसे नई पीढ़ी के लिए प्रासंगिक बनाया। उनका निधन भले ही कम उम्र में हो गया हो, लेकिन उनका कार्य आज भी शोधार्थियों और विद्वानों को प्रेरित कर रहा है।

भारतीय ज्ञानपीठ[8]– डॉ. महेन्द्र कुमार जैन भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना के समय से ही उसके साथ जुड़े रहे। आपके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था'' स्वकार्य साध्ययेत् धीमान'' अर्थात बुद्धिमान का कर्तव्य है कि अपने कार्य को सिद्ध करे। इस स्वभाव को देखते हुए आपको भारत के प्रसिद्ध प्रकाशन ''भारतीय ज्ञानपीठ'' में प्रधान सम्पादक के रुप में नियुक्त किया गया। जहां आपके निदेशन में विविध भारतीय साहित्य का प्रकाशन हुआ और ज्ञानपीठ की पत्रिका 'ज्ञानोदय' का संपादन कार्य के साथ साथ प्रकाशन विभाग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपका योगदान जैन साहित्य के प्रकाशन तक ही सीमित नहीं था, बल्कि आपने हिंनी साहित्य के कई अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन में भी सहयोग किया।

जैन न्याय की परम्परा – जैन न्याय के सूत्र तो हमें दृष्टिवाद नामक अंग आगम से मिलते हैं परन्तु आचार्य समन्तभद्र (ई. 2सरी शता.) को जैन न्याय (तर्कविद्या) का प्रतिष्ठापक माना जाता है।इसके बाद सिद्धसेन दिवाकर (ई. 6ठी शताब्दी) को उसे अंकुरित करने वाला तथा आचार्य भट्टाकलङ्क (ई. 7–8वीं शता.) को जैन न्याय के भव्य प्रासाद को मूर्त रूप देने वाला कहा जाता है। भट्टाकलंक का आश्रय लेकर ही परवर्ती जैन न्याय के ग्रन्थ लिखे गए हैं।आचार्य विद्यानन्द (ई. 9वीं शता.) ने उस न्याय

विद्या को प्रौढ़ता प्रदान की जिससे विषय गम्भीर और दुर्बोध हो गया। पश्चात् आचार्य प्रभाचन्द्र (ई. 980–1065) ने उस दुर्बोधता को सुबोध बनाया। इन्होंने जैनेतर न्याय पण्डितों के दुरूह ग्रन्थों (प्रशस्तपादभाष्य, व्योमवती, न्यायभाष्य, न्यायवार्तिक, न्यायमञ्जरी, शाबरभाष्य, श्लोकवार्तिक, बृहती, प्रमाणवार्तिकालंकार, तत्त्वसंग्रह आदि) का गम्भीर आलोडन करके उनकी ही शैली में प्रबल तर्कों के द्वारा उनका खण्डन तथा जैन सिद्धान्तों का मण्डन किया। प्रभाचन्द्राचार्य ने कुमुदचन्द्र, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड आदि ग्रन्थों को लिखकर जैन न्याय में चार चाँद लगाए। इसी क्रम में परीक्षामुख, प्रमेयरत्नमाला, तात्पर्यवृत्ति, प्रमाणमीमांसा, आप्तमीमांसा, स्याद्वादमञ्जरी, प्रमेयरत्नाकर, न्यायदीपिका, सप्तभङ्गीतरङ्गिणी, जैनतर्कभाषा आदि विविध न्याय विषयक ग्रन्थ लिखे गए। 12वीं शताब्दी के जैनेतर विद्वान् गङ्गेश उपाध्याय ने दुरूह शब्दावली युक्त नव्य न्यायशैली को अपनाया जिस पर यशोविजय आदि जैनों ने भी उस शैली में न्याय के ग्रन्थ लिखे।माणिक्यनंदी ने सर्वप्रथम परीक्षामुख लिखकर जैन न्याय को सूत्रबद्ध बनाया।

आप जैनदर्शन के साथ–साथ विविध भारतीय दर्शनों के ज्ञाता थे। आप ने बहुत सरल और सुबोध शैली में अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया था। इन ग्रन्थों की प्रस्तावना शताधिक पृष्ठों में लिखकर दर्शन शास्त्र के गूढ रहस्यों को स्पष्ट किया है।

आपने आचार्य प्रभाचन्द्र आदि अनेक प्राचीन जैनाचार्य के साहित्य पर कार्य करके आचार्य अकलंक देव के जटिल शास्त्रों का मर्म का रसास्वदन समाज को कराया था। आचार्य अकलंक देव के ग्रन्थों का कुशल सम्पादन एवं उन पर विशद भूमिकाएं आदि शोधपरक सामग्री लिखकर उन्होंने श्रमसाध्य दुर्लभ कार्य को सरल बनाया था।

ग्रन्थों का सम्पादन एवं लेखन– डॉ.महेन्द्र कुमार जी ने आचार्य प्रभाचन्द्र आदि अनेक प्राचीन जैनाचार्य के साहित्य पर कार्य करके आचार्य अकलंक देव के जटिल शास्त्रों का मर्म का रसास्वदन समाज को कराया था। आचार्य अकलंक देव के ग्रन्थों का कुशल सम्पादन एवं उन पर विशद भूमिकाएं आदि शोधपरक सामग्री लिखकर उन्होंने श्रमसाध्य दुर्लभ कार्य को सरल बनाया था।[9] हिन्दी भाषा में लिखित जैन दर्शन आपकी अत्यन्त सरल और प्रामाणिक कृति है। इसमें जैन इतिहास, सिद्धान्त, न्याय और आचार का सम्यक् विवेचन है जो जैन एवं जैनेतर जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा टिप्पणियों के साथ तथा विस्तृत प्रस्तावना के साथ जिन ग्रन्थों पर कार्य किया गया है गया वे निम्न हैं– 1. न्यायकुमुद, 2. प्रमेयकमलमार्तण्ड, 3. अकलंक ग्रन्थत्रय, 4.न्यायविनिश्च, 5. तत्वार्थवार्तिक, 6. सिद्धिविनिश्चय, 7. तत्वार्थवृत्ति, 8. जयधवला, 9.प्रमाणमींमास, 10. जैनतर्क भाषा, 11. जैनदर्शन, 12. षट्दर्शन समुच्चय, 13. सत्यशासपरीक्षा, 14. विश्वतत्व प्रकाश, 15. प्रमाणप्रमेयकलिका, 16. युक्त्यनुशासन, 17. आत्मानुशासन, 18. विविध तीर्थकल्प, 19. प्रभावक चरित्र आदि पर कार्य किया गया है।[10] जिसमें में से 20.'जैनदर्शन' पंडित जी की मौलिक कृति है। चालीस वर्ष पूर्व लिखित इस कृति में इस विषय पर बडी गम्भीरतापूर्वक ऊहापोह किया गया है जिसकी समानता में आधुनिक अनेक कृतियाँ उस स्तर की नहीं बन पाई हैं।

इनसे कुछ ग्रन्थों पर गम्भीर प्रस्तावनाएँ भी लिखीं जो शोधकर्त्ताओं के लिए कुंजी के समान हैं। इनसे आपकी अद्भूत ज्ञान–क्षमता का पता चलता है ।

इस तरह आपने दुरुह न्याय शास्त्रों का सम्पादन आदि किया। यह आपका अद्भुत कार्य था। इसके अतिरिक्त आप एक सिद्धहस्त कहानीकार, निबन्धकार, संस्कृत कवि तथा निर्भीक पत्रकार भी थे।

जैनदर्शन–जैनन्यायविषयक ग्रन्थ

जैन न्याय और तर्कशास्त्र–

यह वर्ग ज्ञान की वैधता (प्रमाण) और दृष्टिकोणों की सापेक्षता (अनेकांतवाद) के सिद्धांतों पर आधारित है–

1. न्यायकुमुदचन्द्र – आचार्यप्रभाचन्द्र, जैन न्याय पर आचार्य प्रभाचन्द्र की विशाल और प्रसिद्ध टीका। यह लघीयस्त्रय ग्रंथ की विस्तृत व्याख्या है।[11]

2. अकलंक ग्रन्थत्रयी – आचार्यअकलंक देव, यह आचार्य अकलंक के तीन मुख्य न्यायग्रंथों का समूह है। लघीयस्त्रय, न्याय विनिश्चय, और सिद्धि विनिश्चय। अकलंक को जैन न्याय का संस्थापक माना जाता है।[12]

3. प्रमाणमीमांसा – हेमचन्द्राचार्य, जैन ज्ञानमीमांसा का एक संक्षिप्त और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ, जो प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणों का विवेचन करता है।[13]

4. प्रमेयकमलमार्तण्ड – आचार्य प्रभाचन्द्र, परीक्षा मुख ग्रंथ पर आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा रचित एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विशाल टीका, जो प्रमेयों (ज्ञेय पदार्थों) का विस्तृत वर्णन करती है।[14]

5. न्यायविनिश्चय – आचार्य अकलंक देव, जैन न्याय पर अकलंक देव की मौलिक कृति। प्रत्यक्ष, अनुमान, और आगम प्रमाणों का तार्किक और गहन विवेचन।[15]

6. सिद्धिविनिश्चय – आचार्य अकलंक देव, अनेकांतवाद और स्याद्वाद के माध्यम से वस्तु के स्वरूप की

तार्किक स्थापना करने वाला एक अत्यंत जटिल एवं महत्त्वपूर्ण न्याय ग्रंथ।[16]

7. जैनतर्क भाषा – हेमचन्द्राचार्य, जैन तर्कशास्त्र पर एक सरल और सुबोध प्रवेशिका ग्रंथ, जो प्रमाण और नय सिद्धान्तों को स्पष्ट करता है।[17]

8. सत्यशासन परीक्षा– आचार्य विद्यानन्द, जैन सिद्धान्तों को स्थापित करने के लिए अन्य दर्शनों के मतों का तार्किक खण्डन और परीक्षा करने वाला ग्रंथ।[18]

9. प्रमाणप्रमेय कलिका – आचार्य नरेन्द्रसेन, प्रमाण (ज्ञान) और प्रमेय (ज्ञेय विषय) के स्वरूप का विश्लेषण करने वाला एक लघु न्याय ग्रंथ।[19]

10. युक्त्यनुशासन– आचार्यसमन्तभद्र, तर्क (युक्ति) के आधार पर तीर्थंकरों के आप्त (प्रमाणिक) होने को सिद्ध करने वाला स्तोत्र ग्रंथ।[20]

आगम और मूल सिद्धांत पर ग्रंथ–

यह वर्ग जैन धर्म के मूल तत्त्वों और सिद्धांतों की व्याख्या पर आधारित है–

11. तत्त्वार्थवृत्ति – श्रुतसागर सूरि/प्रभाचन्द्र, तत्त्वार्थ सूत्र (आचार्य उमास्वामी कृत) पर टीका, जो जैन धर्म के मूल सात तत्त्वों की व्याख्या करती है।[21]

12. तत्वार्थवार्तिक – आचार्य अकलंक देव, तत्त्वार्थ सूत्र पर राजवार्तिक के नाम से प्रसिद्ध विशाल एवं दार्शनिक टीका।[22]

13. जयधवला – आचार्य वीरसेन एवं जिनसेन, दिगम्बर आगम षट्खण्डागम पर आचार्य वीरसेन और जिनसेन द्वारा रचित कर्म सिद्धान्त की सबसे विशाल और महत्त्वपूर्ण टीका।[23]

14. विश्वतत्वप्रकाश – ज्ञात नहीं (परम्परागत), जैन ब्रह्माण्ड विज्ञान और लोक–व्यवस्था का वर्णन।[24]

तुलनात्मक दर्शन, जैनदर्शन, एवं नीति और इतिहास–

यह वर्ग जैन धर्म के अन्य दर्शनों से तुलना, आध्यात्मिक आचरण, और इतिहास पर आधारित है–

15. षड्दर्शन समुच्चय – आचार्य हरिभद्र सूरि, विभिन्न छह भारतीय दर्शनों (जैन, बौद्ध, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा) का निष्पक्ष और तुलनात्मक परिचय।[25]

16. प्रमाणवार्तिक – आचार्य धर्मकीर्ति, यह जैन ग्रंथ नहीं, बल्कि बौद्ध न्याय के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ (आचार्य धर्मकीर्ति द्वारा रचित) का नाम है, जिसका जैन आचार्यों ने अपने ग्रंथों में खण्डन किया है।[26]

17. आत्मानुशासन – आचार्य गुणभद्र, आध्यात्मिक एवं नैतिक आचरण संहिता पर वैराग्य प्रधान ग्रंथ।[27]

18. विविध तीर्थकल्प – आचार्य जिनप्रभ सूरि, जैन धर्म के विभिन्न पवित्र तीर्थों और उनके इतिहास का संग्रह।[28]

19. प्रभावक चरित्र – आचार्यप्रभाचन्द्र, जैन परम्परा के प्रभावशाली आचार्यों के जीवन चरित्रों का ऐतिहासिक संग्रह।[29]

20. जैन दर्शन – पं. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य, 'जैन दर्शन' नामक ग्रन्थ में दर्शन शब्द को परिभाषित करते हुए लिखते है कि 'दर्शन का मोटा और स्पष्ट अर्थ है साक्षात्कार करना। अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान से किसी वस्तु का तर्क के द्वारा निर्णय करना है। यह किसी एक प्राचीन ग्रंथ का नाम नहीं, बल्कि जैन धर्म के दर्शन को समग्र रूप से समझने वाली एक सामान्य मौलिक कृति है।[30]

न्यायकुमुदचन्द्र–

1. न्यायकुमुदचन्द्र–यह ग्रन्थ भट्टाकलंकदेव कृत स्वविवृत्ति सहित लघीयस्त्रय पर प्रभाचन्द्राचार्य की विस्तृत टीका है।यह एक महत्वपूर्ण जैन दार्शनिक ग्रंथ है, यह ग्रंथ जैन न्याय और दर्शन के प्रमुख ग्रंथों में से एक माना जाता है और इसमें न्याय के सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन किया गया है। न्यायकुमुदचन्द्र मुख्य रूप से अकलंकदेव के 'लघीयस्त्रय' नामक ग्रंथ पर लिखी गई एक विस्तृत टीका (विस्तृत व्याख्या) है। इस ग्रंथ में जैन न्याय को स्थापित करने के साथ–साथ अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों, जैसे– बौद्ध, सांख्य और मीमांसा के सिद्धान्तों का भी खण्डन किया गया है। यह ग्रंथ जैन तर्कशास्त्र (न्याय) के जटिल विषयों को सरल और सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करता है। इसमें प्रमाण (ज्ञान के साधन) और प्रमेय (ज्ञान के विषय) का विस्तृत विवेचन है।

आचार्य प्रभाचन्द्र ने इस ग्रंथ में न केवल जैन मत की स्थापना की, बल्कि अन्य दर्शनों के सिद्धान्तों का भी तर्कपूर्ण तरीके से खण्डन किया।

डॉ. महेंद्र कुमार जैन 'न्यायाचार्य' का न्यायकुमुदचन्द्र से गहरा सम्बन्ध है।[31] उन्होंने इस ग्रंथ का संपादन किया था, जो उनके संपादन कौशल का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

डॉ. जैन ने अपने संपादन कार्य में कई पाण्डुलिपियों का गहन अध्ययन कर पाठ की शुद्धता

सुनिश्चित की। उन्होंने इस ग्रंथ पर विस्तृत प्रस्तावना और टिप्पणियाँ लिखीं, जिससे यह जटिल ग्रंथ आधुनिक पाठकों के लिए अधिक सुगम हो गया। उनके संपादन के कारण ही आज यह ग्रंथ विद्वानों और शोधार्थियों के लिए एक प्रामाणिक संदर्भ ग्रंथ बन पाया है।

जैन तार्किक आचार्य अकलंक के लुप्त ग्रंथ 'सिद्धिविनिश्च' और उसकी स्ववृत्ति का उद्धार तथा आचार्य अनन्तवीर्य की टीका के साथ समालोचनात्मक कुशल सम्पादन कर जैन धर्म की महनीय सेवा कर मध्यकालीन युग में दर्शनशास्त्र का बड़ा उपकार किया है।[32]

इस प्रकार, न्यायकुमुदचन्द्र जैन दर्शन का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है, और डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'न्यायाचार्य' के संपादन ने इस ग्रंथ को और भी अधिक प्रासंगिक और उपयोगी बना दिया।

अकलंक ग्रन्थत्रयी–

2. अकलंकग्रन्थत्रय[33]– इसमें लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय, एवं प्रमाण संग्रह इन तीन ग्रन्थों का समावेश है ।

अकलंक ग्रन्थत्रयी, जैन न्याय दर्शन के महानतम ग्रंथों में से एक है। यह नाम एक समूह को संदर्भित करता है, जिसमें आचार्य अकलंकदेव द्वारा रचित तीन प्रमुख और मौलिक ग्रंथ शामिल हैं। इन ग्रंथों ने जैन न्याय को एक सुदृढ़ और व्यवस्थित आधार प्रदान किया, जिससे अकलंकदेव को "जैन न्याय के पिता" के रूप में जाना जाता है।

अकलंक ग्रन्थत्रयी में शामिल ग्रंथ–

1. न्यायविनिश्चययह ग्रंथ आचार्य अकलंकदेव की सबसे महत्वपूर्ण और विस्तृत रचनाओं में से एक है। इसमें प्रमाण (ज्ञान के साधन) और प्रमेय (ज्ञान के विषय) का गहन और सूक्ष्म विवेचन किया गया है।इस ग्रंथ में उन्होंने बौद्ध, मीमांसक और नैयायिक जैसे अन्य दार्शनिकों के सिद्धान्तों का तार्किक खण्डन किया है।

2. लघीयस्त्रय– इसका अर्थ है "तीन छोटे प्रकरण।" यह तीन विषयों पर केंद्रित हैः प्रमाणप्रवेश, नयप्रवेश, और निक्षेप प्रवेश।यह ग्रंथ जैन न्याय के मूल सिद्धान्तों को संक्षिप्त और सारगर्भित रूप से प्रस्तुत करता है। इसी ग्रंथ पर आचार्य प्रभाचन्द्र ने न्यायकुमुदचन्द्र नामक विस्तृत टीका लिखी थी, जिसका संपादन डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'न्यायाचार्य' ने किया था।

3. सिद्धिविनिश्चय – यह ग्रंथ जैन न्याय के सिद्धान्तों को सिद्ध करने और अन्य मतों का खण्डन करने के लिए लिखा गया था। इसमें जैन दर्शन के महत्वपूर्ण सिद्धांतों, जैसे– अनेकांतवाद और स्याद्वाद, को तार्किक आधार पर स्थापित किया गया है।

इन तीन ग्रंथों ने जैन न्याय दर्शन के लिए एक मजबूत नींव रखी। आचार्य अकलंकदेव से पहले जैन न्याय पर व्यवस्थित ग्रंथ कम थे। उन्होंने अपने ग्रंथों से इस कमी को पूरा किया। अकलंकदेव ने अपने ग्रंथों में अन्य दर्शनों के सिद्धांतों का खण्डन इतनी सटीकता और तर्क से किया कि जैन दर्शन को दार्शनिक जगत में सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ।

अकलंकदेव के इन ग्रंथों पर बाद के आचार्यों (जैसे– विद्यानंदि, प्रभाचन्द्र, और अनंतवीर्य) ने कई टीकाएं और भाष्य लिखे, जिससे जैन न्याय का साहित्य और समृद्ध हुआ।

डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'न्यायाचार्य' ने अकलंक ग्रन्थत्रयी का संपादन किया था। यह कार्य उनके गहन पांडित्य और संपादन कौशल का एक और प्रमाण है। उन्होंने मूल ग्रंथों के पाठ को शुद्ध करने के साथ–साथ उस पर विस्तृत प्रस्तावनाएं और व्याख्यात्मक नोट्स लिखे।

उनके इस कार्य से इन जटिल और महत्वपूर्ण ग्रंथों को आधुनिक विद्वानों के लिए सुगम बनाया जा सका, जिससे जैन न्याय का अध्ययन करने वालों को बहुत सहायता मिली। उनका यह संपादन कार्य आज भी विद्वत् जगत में अत्यन्त सम्मानित है।

प्रमाणमीमांसा–

3. प्रमाणमीमांसा– यह श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र की न्याय विषयक कृति है। प्रमाणमीमांसा जैन दर्शन के महानतम ग्रन्थों में से एक है, जिसकी रचना आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने की थी। इस ग्रन्थ में जैन न्यायशास्त्र और ज्ञानमीमांसा[34] का गहन और विस्तृत विवेचन किया गया है। इसे जैन दर्शन में प्रमाणशास्त्र का एक शिखर ग्रन्थ माना जाता है।

"प्रमाण" का अर्थ है "ज्ञान का साधन" या "सत्य ज्ञान का स्रोत"। प्रमाणमीमांसा में आचार्य हेमचन्द्र ने इस बात पर विस्तार से चर्चा की है कि हमें सही ज्ञान कैसे प्राप्त होता है। उन्होंने प्रत्यक्ष (सीधा ज्ञान, जैसे आँखों से देखना) और परोक्ष (अप्रत्यक्ष ज्ञान, जैसे तर्क और अनुमान से प्राप्त ज्ञान) नामक दो मुख्य प्रमाणों का विस्तृत विश्लेषण किया है।

यह ग्रन्थ केवल जैन सिद्धान्तों की व्याख्या तक सीमित नहीं है। इसमें अन्य भारतीय दर्शनों, जैसे– बौद्ध, न्याय–वैशेषिक और सांख्य के प्रमाण–सम्बन्धी सिद्धान्तों

की भी गहन समीक्षा की गई है। आचार्य हेमचन्द्र ने इन मतों के तर्कों का खंडन करके यह सिद्ध किया कि जैन प्रमाण–व्यवस्था अधिक तर्कसंगत और समग्र है।

अनेकांतवाद और स्याद्वाद–इस ग्रन्थ में जैन दर्शन के मूल सिद्धांत अनेकांतवाद (अनेक दृष्टिकोणों का सिद्धान्त) और स्याद्वाद (सापेक्षता का सिद्धान्त) को तार्किक रूप से स्थापित किया गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने यह दिखाया है कि कैसे कोई भी एक दृष्टिकोण वास्तविकता के पूरे सत्य को नहीं बता सकता और इसलिए अनेक दृष्टिकोणों को स्वीकार करना आवश्यक है। आचार्य हेमचन्द्र की लेखन शैली अत्यन्त स्पष्ट और सारगर्भित है। हालाँकि यह ग्रन्थ गहन दार्शनिक विषयों से संबंधित है, फिर भी इसकी भाषा अन्य न्याय ग्रन्थों की तुलना में अधिक सुबोध और व्यवस्थित है।सिद्धान्तों को समझने का एक अनिवार्य स्रोत है। यह ग्रन्थ जैन न्यायशास्त्र की परिपक्वता और गहराई का प्रमाण है।

प्रमेयकमलमार्त्तण्ड–

4. प्रमेयकमलमार्तण्ड– जैन न्याय और प्रमाण मीमांसा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसकी रचना भी आचार्य प्रभाचन्द्र ने की थी, जो न्यायकुमुदचन्द्र के भी लेखक हैं। यह ग्रंथ आचार्य माणिक्यनन्दी के 'परीक्षामुखसूत्र' पर लिखी गई एक विस्तृत टीका है।

'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड' का शाब्दिक अर्थ है–[35] "प्रमेय रूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य।" यह नाम दर्शाता है कि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से कमल खिलता है, उसी प्रकार यह ग्रंथ ज्ञान (प्रमेय) के विषयों को स्पष्ट करता है।इस ग्रंथ में मुख्य रूप से प्रमाण के स्वरूप, उसके भेद (प्रत्यक्ष, अनुमान, आदि) और प्रमाता (ज्ञाता) का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसमें जैन दर्शन द्वारा मान्य प्रमाणों (जैसे– प्रत्यक्ष और परोक्ष) का गहन विवेचन है।अन्य दार्शनिकों के मतों की समीक्षाः आचार्य प्रभाचन्द्र ने इस ग्रंथ में भी बौद्ध, सांख्य, मीमांसक और नैयायिक जैसे अन्य दार्शनिक संप्रदायों के प्रमाण संबंधी मतों की समीक्षा और खंडन किया है।तर्क की सूक्ष्मताः यह ग्रंथ दार्शनिक तर्क और युक्ति की पराकाष्ठा को दर्शाता है। इसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म तार्किक पहलुओं पर विचार किया गया है।

डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'न्यायाचार्य' ने प्रमेयकमलमार्त्तण्ड का भी संपादन किया था। यह संपादन कार्य उनके पाण्डित्य और श्रम का एक और प्रमाण है। उन्होंने इस ग्रंथ की अनेक पाण्डुलिपियों का अध्ययन करके एक प्रामाणिक पाठ तैयार किया।उनके संपादन में ग्रंथ के कठिन अंशों पर विस्तृत टिप्पणियाँ और व्याख्याएं थीं, जिससे यह ग्रंथ विद्वानों के लिए अधिक सुलभ हो सका। इस प्रकार, डॉ. जैन ने इस महत्वपूर्ण दार्शनिक ग्रंथ को संरक्षित करने और आधुनिक अकादमिक जगत में उसे स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

न्यायविनिश्चयविवरण–

5. न्यायविनिश्चयविवरण (दो भागों में)– यह आचार्य अकलंककृत न्यायविनिश्चय पर वादिराजसूरि द्वारा लिखित विस्तृत टीका है।[36]

न्यायविनिश्चय विवरण जैन दर्शन के महानतम और सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में से एक है, जो जैन न्याय और ज्ञानमीमांसा पर आधारित है। इसकी रचना आचार्य विद्यानन्द ने की थी। यह ग्रन्थ आचार्य अकलंकदेव के न्यायविनिश्चय नामक ग्रन्थ पर लिखी गई एक विस्तृत टीका है।यह केवल एक टीका नहीं है, बल्कि यह अपने आप में एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। यह जैन न्यायशास्त्र की सबसे विस्तृत और गहन रचनाओं में से एक मानी जाती है। इसमें तर्क, दर्शन और ज्ञान की गहराई से विवेचना की गई है। इस ग्रन्थ में जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों, जैसे– अनेकांतवाद (अनेक दृष्टिकोणों का सिद्धान्त), स्याद्वाद (सापेक्षता का सिद्धान्त), और नयवाद (दृष्टिकोणों का सिद्धान्त) का तार्किक और दार्शनिक आधार पर विश्लेषण किया गया है। आचार्य विद्यानन्द ने इसमें इन सिद्धान्तों की पुष्टि की है और अन्य दर्शनों, जैसे बौद्ध और वैदिक दर्शनों, के तर्कों का खण्डन किया है।

इस ग्रन्थ में प्रत्यक्ष (सीधा अनुभव) और अनुमान (तर्क से ज्ञान) जैसे प्रमाणों (ज्ञान के स्रोतों) पर भी विस्तृत चर्चा की गई है। यह जैन ज्ञानमीमांसा को समझने के लिए एक अनिवार्य स्रोत है। न्यायविनिश्चय विवरण जैन न्यायशास्त्र का एक विशाल महासागर है, जो जैन दर्शन की तार्किक शक्ति और विद्वत्ता को दर्शाता है।

तत्त्वार्थवृत्ति–

6. तत्त्वार्थवृत्ति– यह तत्त्वार्थसूत्र पर आचार्य श्रुतसागरसूरि की टीका है।[37] तत्त्वार्थवृत्ति, जिसे तत्त्वार्थसूत्र पर लिखी गई एक प्रमुख टीका (व्याख्या) के रूप में जाना जाता है, जैन दर्शन के गहन सिद्धान्तों को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। तत्त्वार्थसूत्र की रचना आचार्य उमास्वामी ने की थी, जिसे जैन धर्म के श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में समान रूप से स्वीकार किया जाता है। इसे 'जैन बाइबिल' या 'जैन दर्शन का सार' भी कहा जाता है। इस ग्रन्थ में आचार्य उमास्वामी ने केवल 357 सूत्रों में पूरे जैन दर्शन का सार प्रस्तुत किया है। इसमें सात तत्त्वों (जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष) और सम्यक् दर्शन, ज्ञान, और चरित्र के सिद्धान्तों को सूत्र रूप में संक्षेप में समझाया गया है। पहला

सूत्र ही जैन दर्शन का मूल आधार हैः "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र ही मोक्ष का मार्ग है)।

सूत्र बहुत संक्षिप्त और गहन होते हैं, उनकी व्याख्या के बिना उन्हें समझना कठिन है। यही कारण है कि विभिन्न आचार्यों ने इन सूत्रों पर टीकाएँ (व्याख्यात्मक ग्रन्थ) लिखी हैं। तत्त्वार्थवृत्ति भी ऐसी ही एक टीका है जो सूत्रों को विस्तृत और सरल ढंग से समझाती है। यह टीका सूत्रों के पीछे के तर्क, सिद्धान्त और उदाहरणों को स्पष्ट करती है, जिससे पाठक के लिए जैन दर्शन के जटिल विषयों को समझना आसान हो जाता है। तत्त्वार्थसूत्र पर कई वृत्तियाँ लिखी गई हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख हैं–

1. **सर्वार्थसिद्धि** (आचार्य पूज्यपाद): यह सबसे प्राचीन और दिगम्बर परम्परा में सबसे अधिक प्रतिष्ठित टीका है। इसे तत्त्वार्थसूत्र पर सबसे अधिकारपूर्ण और प्रामाणिक व्याख्या माना जाता है।

2. **श्लोकवार्तिक** (आचार्य विद्यानन्द) : यह भी एक महत्वपूर्ण टीका है जो जैन न्याय और तर्कशास्त्र के दृष्टिकोण से सूत्रों की व्याख्या करती है।

3. **राजवार्तिक** (आचार्य अकलंकदेव) : यह भी दिगम्बर परम्परा की एक महत्वपूर्ण और विस्तृत टीका है।

4. **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** (आचार्य सिद्धसेन दिवाकर) : यह श्वेताम्बर परम्परा की प्रमुख टीका है। तत्त्वार्थवृत्ति का मूल कार्य तत्त्वार्थसूत्र के संक्षिप्त और गहन सूत्रों को विस्तृत और सरल बनाकर जैन दर्शन के सिद्धान्तों को आम साधक और विद्वान तक पहुँचाना है। ये वृत्त्याँ जैन धर्म के विभिन्न पहलुओं को समझने की कुंजी हैं।

तत्त्वार्थवार्तिक–

7. **तत्त्वार्थवार्तिक** (तत्त्वार्थराजवार्तिक या तत्त्वार्थवार्तिकालंकार) यह तत्त्वार्थ सूत्र पर अकलंकृत टीका है।[38]

तत्त्वार्थवार्तिक, जिसे राजवार्तिक के नाम से भी जाना जाता है, जैन दर्शन के सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों में से एक है। इसकी रचना प्रसिद्ध जैन दार्शनिक आचार्य अकलंकदेव ने की थी। यह ग्रन्थ आचार्य उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र पर लिखी गई एक विस्तृत और गहन टीका है।

आचार्य अकलंकदेव को 'जैन न्याय का जनक' माना जाता है। उनके द्वारा लिखित यह टीका तत्त्वार्थसूत्र की सबसे प्रामाणिक और दार्शनिक रूप से गहन व्याख्या मानी जाती है। दिगम्बर परम्परा में यह एक अत्यन्त सम्मानित और अध्ययन किया जाने वाला ग्रन्थ है।

दार्शनिक संवाद – यह सिर्फ सूत्रों की व्याख्या नहीं है, बल्कि यह एक विस्तृत दार्शनिक संवाद है। इसमें जैन सिद्धान्तों को स्थापित करने के लिए अन्य प्रमुख भारतीय दर्शनों (जैसे– सांख्य, मीमांसा, बौद्ध और न्याय–वैशेषिक) के तर्कों का खण्डन किया गया है। आचार्य अकलंकदेव ने अपने तर्कों से जैन अनेकान्तवाद (अनेक दृष्टिकोणों का सिद्धांत) और स्याद्वाद (सापेक्षता का सिद्धांत) की श्रेष्ठता सिद्ध की है।

ज्ञान और मोक्ष का मार्ग– यह ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्र के सात तत्त्वों (जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष) और मोक्ष के मार्ग (सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चरित्र) को विस्तार से समझाता है। यह बताता है कि ज्ञान की प्राप्ति कैसे होती है, आत्मा की प्रकृति क्या है और कर्मों से मुक्ति कैसे संभव है।

न्याय और तर्क – इस ग्रन्थ में जैन न्याय (Logic) और ज्ञानमीमांसा (Epistemology) पर विस्तृत चर्चा की गई है। इसमें प्रत्यक्ष (सीधा ज्ञान) और परोक्ष (अप्रत्यक्ष ज्ञान, जैसे अनुमान) जैसे ज्ञान के स्रोतों (प्रमाणों) का गहरा विश्लेषण किया गया है।तत्त्वार्थवार्तिक जैन दर्शन को केवल सिद्धान्तों के रूप में नहीं, बल्कि एक तर्कसंगत, वैज्ञानिक और अकाट्य दार्शनिक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करता है। यह ग्रन्थ जैन दर्शन के अध्ययन के लिए एक अनिवार्य स्रोत है।

सिद्धिविनिश्चय–

8. **सिद्धिविनिश्चय टीका**– यह आचार्य अकलंक कृत सिद्धिविनिश्चय तथा उसकी स्ववृत्ति पर आचार्य अनन्तवीर्य द्वारा लिखित टीका का नाम है सिद्धिविनिश्चय टीका जो जैन न्याय या तर्कशास्त्र का उच्चकोटि का ग्रन्थ है।[39]

सिद्धिविनिश्चय टीका, जिसे सिद्धिविनिश्चय विवरण भी कहते हैं, जैन न्यायशास्त्र का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और गहन ग्रन्थ है। इसकी रचना प्रसिद्ध जैन दार्शनिक और नैयायिक आचार्य विद्यानन्द ने की थी। यह ग्रन्थ आचार्य अकलंकदेव के सिद्धिविनिश्चय नामक ग्रन्थ पर लिखी गई एक विस्तृत टीका (व्याख्या) है।

सिद्धिविनिश्चय ग्रन्थ में आचार्य अकलंकदेव ने अनेकांतवाद (अनेक दृष्टिकोणों का सिद्धांत) और स्याद्वाद (सापेक्षता का सिद्धान्त) जैसे जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों को तार्किक आधार पर सिद्ध किया है। यह ग्रन्थ जैन न्याय और ज्ञानमीमांसा को समझने का एक आधारभूत ग्रन्थ है।

चूँकि सिद्धिविनिश्चय सूत्र रूप में बहुत संक्षिप्त और गहन है, इसलिए आचार्य विद्यानन्द ने अपनी टीका में

इन सूत्रों को विस्तृत रूप से समझाया है। उन्होंने न केवल सूत्रों की व्याख्या की है, बल्कि विभिन्न दार्शनिक मतों, जैसे– बौद्ध, सांख्य, और न्याय–वैशेषिक के तर्कों का खंडन भी किया है, ताकि जैन सिद्धान्तों की श्रेष्ठता स्थापित हो सके।

यह ग्रन्थ केवल ज्ञान के स्रोतों (प्रमाण) तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें आत्मा के स्वरूप, कर्म के बंधन और मोक्ष की प्रक्रिया पर भी विस्तृत चर्चा की गई है। यह बताता है कि कैसे सही ज्ञान और आचरण के माध्यम से कर्मों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

सिद्धिविनिश्चयटीका की भाषा और विषयवस्तु अत्यन्त दार्शनिक और तार्किक है। यह ग्रन्थ जैन दर्शन के शोधार्थियों और विद्वानों के लिए एक अमूल्य संसाधन माना जाता है। इसे पढ़कर जैन दर्शन की सूक्ष्मता और तार्किक शक्ति को समझा जा सकता है।

सिद्धिविनिश्चय टीका जैन न्याय की एक उत्कृष्ट रचना है, जो आचार्य अकलंकदेव के सूत्रों को एक व्यापक और तार्किक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती है। यह जैन दर्शन के सबसे गहरे और जटिल सिद्धांतों को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

षड्दर्शनसमुच्चय–

9. षड्दर्शनसमुच्चय – यह श्वेताम्बराचार्य हरिभद्र प्रणीत ग्रन्थ है। षड्दर्शनसमुच्चय, जिसका अर्थ है "छह दर्शनों का संग्रह,"[40] एक महत्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ है। इसकी रचना प्रसिद्ध जैन आचार्य हरिभद्र सूरि ने की थी। यह ग्रन्थ जैन दृष्टिकोण से भारतीय दर्शन की छह प्रमुख प्रणालियों का निष्पक्ष और व्यवस्थित परिचय प्रस्तुत करता है।यह ग्रन्थ भारतीय दर्शन की छह प्रणालियों को एक ही स्थान पर संक्षेप में प्रस्तुत करता है। ये छह दर्शन हैं– 1 बौद्ध दर्शन, 2 न्याय दर्शन, 3 सांख्य दर्शन, 4 पूर्वमीमांसा दर्शन, 5 जैन दर्शन, 6 वैशेषिक दर्शन।

आचार्य हरिभद्र सूरि ने इन दर्शनों के मूल सिद्धान्तों, ज्ञानमीमांसा (ज्ञान के स्रोत), और Metaphysical (तत्त्वमीमांसीय) मान्यताओं को संक्षेप में समझाया है। उन्होंने इन दर्शनों की समानताओं और असमानताओं को भी उजागर किया है।

आचार्य हरिभद्र सूरि एक जैन विद्वान थे, फिर भी उन्होंने अन्य दर्शनों की व्याख्या करते समय एक निष्पक्ष और अकाट्य दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने हर दर्शन के सिद्धान्तों को उसके अपने परिप्रेक्ष्य से समझने का प्रयास किया, जिससे यह ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गया।इस ग्रन्थ का अंतिम उद्देश्य जैन दर्शन की श्रेष्ठता को सिद्ध करना है, लेकिन यह अन्य दर्शनों की आलोचना या निंदा करके नहीं, बल्कि उनके सिद्धान्तों को सामने रखकर और फिर यह दर्शाकर करता है कि कैसे जैन दर्शन (विशेष रूप से अनेकांतवाद और स्याद्वाद) उन सभी दृष्टिकोणों को समाहित कर सकता है, जबकि अन्य दर्शन ऐसा नहीं कर पाते।

यह ग्रन्थ बहुत ही संक्षिप्त रूप में, केवल कुछ श्लोकों में, हर दर्शन का सार प्रस्तुत करता है। इस वजह से यह भारतीय दर्शन का परिचय प्राप्त करने वाले छात्रों और शोधकर्ताओं के लिए एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

षड्दर्शनसमुच्चय एक अनूठा ग्रन्थ है जो एक ही मंच पर भारतीय दर्शन की विविधता को प्रस्तुत करता है। यह हमें सिखाता है कि कैसे विभिन्न दार्शनिक प्रणालियों का सम्मान करते हुए भी अपने दृष्टिकोण की विशिष्टता को स्थापित किया जा सकता है।

प्रमाणवार्तिक–

10. प्रमाणवार्तिक– यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि प्रमाणवार्तिक जैन दर्शन का नहीं, बल्कि बौद्ध दर्शन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके रचयिता महान बौद्ध दार्शनिक आचार्य धर्मकीर्ति (7वीं शताब्दी) हैं। प्रमाणवार्तिक बौद्ध दर्शन के न्याय (तर्कशास्त्र) और ज्ञानमीमांसा का एक आधारभूत ग्रंथ है। यह ग्रंथ धर्मकीर्ति की अपनी ही कृति 'प्रमाणसमुच्चय'[41] पर एक विस्तृत टीका है, जो उन्होंने अपने विरोधियों के तर्कों का खण्डन करने के लिए लिखी थी।

ग्रंथ में धर्मकीर्ति ने ज्ञान के स्वरूप की विवेचनाः बौद्ध दृष्टिकोण से ज्ञान के दो प्रमुख साधनों (प्रमाण) – प्रत्यक्ष और अनुमान की विस्तृत व्याख्या की है।उन्होंने जैन, न्याय, मीमांसा और अन्य दर्शनों द्वारा माने गए ज्ञान के अतिरिक्त साधनों (जैसे शब्द या उपमान) का तार्किक खंडन किया है।

यह ग्रंथ अपने सूक्ष्म तर्कों और बौद्धिक गहराई के लिए प्रसिद्ध है। इसने भारतीय दर्शन के इतिहास में बौद्ध, जैन और हिंदू विद्वानों के बीच सदियों तक चलने वाले दार्शनिक वाद–विवादों की शुरुआत की। 'प्रमाणवार्तिक' को भारतीय तर्कशास्त्र के इतिहास में एक मील का पत्थर माना जाता है। जैन विद्वान जैसे आचार्य अकलंकदेव और आचार्य विद्यानन्द ने अपनी रचनाओं में प्रत्यक्ष रूप से धर्मकीर्ति के विचारों का खण्डन किया है, जो उस समय के दार्शनिक वाद–विवाद के उच्च स्तर को दर्शाता है।

जयधवला–

11. जयधवला– आपकी रुचि जयधवला

ग्रंथ में है। यह दिगम्बर जैन परम्परा का एक अत्यन्त विशाल और महत्त्वपूर्ण आगम ग्रंथ है।यह मुख्य रूप से कर्म सिद्धान्त और सप्त तत्वों के सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन पर केन्द्रित है।[42] यह बताता है कि कर्म कैसे बनते हैं, आत्मा से कैसे जुड़ते हैं, और मोक्ष प्राप्त करने के लिए उन्हें कैसे नष्ट किया जा सकता है।

यह षट्खण्डागम नामक मूल आगम ग्रंथ पर आचार्य वीरसेन और उनके शिष्य जिनसेन द्वारा रचित एक महाटीका है। षट्खण्डागम को स्वयं भगवान महावीर के बाद उनके शिष्यों द्वारा सुनाए गए उपदेशों का संकलन माना जाता है। इसकी रचना मुख्य रूप से 8वीं–9वीं शताब्दी ईस्वी में हुई।

जयधवला अपनी विशालता के लिए जाना जाता है। इसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का प्रयोग हुआ है और यह जैन दर्शन की गहराई को समझने के लिए एक अपरिहार्य स्रोत है। दिगम्बर जैन परम्परा में इसे सबसे आधिकारिक और विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों में से एक माना जाता है, जो कर्म के जटिल सिद्धांतों, जीव और अजीव के संबंध, और मुक्ति के मार्ग को स्पष्ट करता है।यह ग्रंथ जैन धर्म के दार्शनिक और आध्यात्मिक पहलुओं को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण कुंजी है।

जैनतर्क भाषा–

12. **जैनतर्क भाषा**– आपकी रुचि जैन तर्क भाषा में है। यह जैन दर्शन के तर्कशास्त्र और न्याय पर एक अत्यंत महत्वपूर्ण और मौलिक ग्रंथ है।[43] इसकी रचना प्रसिद्ध दिगम्बर जैन आचार्य हेमचन्द्राचार्य ने की थी। वे 12वीं शताब्दी के एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी विद्वान थे, जिन्होंने व्याकरण, काव्य, कोश और दर्शन पर अनेक ग्रंथ रचे।यह ग्रंथ मुख्य रूप से जैन ज्ञानमीमांसा के सिद्धान्तों को सरल और सुबोध शैली में प्रस्तुत करता है। इसमें निम्नलिखित अवधारणाओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

ज्ञान के वैध साधन– जैन दर्शन में मुख्य रूप से प्रत्यक्ष और परोक्ष को प्रमाण माना जाता है।किसी वस्तु या सिद्धान्त के आंशिक दृष्टिकोण। जैन दर्शन मानता है कि किसी भी वस्तु को पूर्ण रूप से समझने के लिए उसके विभिन्न पहलुओं या नयों को समझना आवश्यक है।सापेक्षता का सिद्धान्त, जो बताता है कि कोई भी कथन केवल एक विशेष दृष्टिकोण (नय) से ही सत्य होता है। स्याद्वाद का व्यावहारिक अनुप्रयोग, जो किसी भी वस्तु के सात सापेक्ष कथनों को प्रस्तुत करता है (जैसे स्यात् अस्ति – शायद है, स्यात् नास्ति – शायद नहीं है)। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसकी भाषा सरल और तार्किक है, जिसे तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों को समझने के इच्छुक छात्रों और विद्वानों के लिए लिखा गया है। यह जटिल दार्शनिक अवधारणाओं को स्पष्ट और संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करता है।

जैनतर्क भाषा जैन न्याय परम्परा में एक प्रवेशिका ग्रंथ के रूप में अत्यन्त मूल्यवान है। यह जैन दर्शन की तर्कसंगतता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझने में मदद करता है। जैनतर्क भाषा जैन दर्शन के ज्ञानमीमांसीय आधारों को समझने के लिए एक आवश्यक पाठ है, जो हमें यह सिखाता है कि कैसे वैध ज्ञान प्राप्त किया जाए और वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं को कैसे समझा जाए।

सत्यशासनपरीक्षा–

13. **सत्यशासनपरीक्षा**– जैन दर्शन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और तर्कपूर्ण ग्रंथ है, जिसके रचयिता महान जैन दार्शनिक आचार्य विद्यानन्द हैं। इनका काल आठवीं शताब्दी का माना जाता है।

'सत्यशासन परीक्षा' का शाब्दिक अर्थ है–[44] 'सच्चे शासन (धर्म) की परीक्षा'। यह ग्रंथ एक वाद–विवाद शैली में लिखा गया है, जिसका मुख्य उद्देश्य जैन धर्म को एकमात्र सत्य और तार्किक शासन सिद्ध करना है।आचार्य विद्यानंदि ने जैन सिद्धान्तों को स्थापित करने के लिए बौद्ध दर्शन (विशेषकर माध्यमिक और योगाचार), सांख्य, और अद्वैत वेदान्त जैसे प्रमुख भारतीय दर्शनों की ज्ञानमीमांसा और तत्वमीमांसा का गहन तार्किक खण्डन किया है।

यह ग्रंथ आचार्य विद्यानन्द के तार्किक कौशल और जैन न्याय पर उनके अधिकार का उत्कृष्ट उदाहरण है। वे अपने तर्कों से यह सिद्ध करते हैं कि अनेकांतवाद और स्याद्वाद ही वास्तविकता को पूर्ण रूप से समझने का एकमात्र मार्ग है। 'सत्यशासनपरीक्षा' जैन तर्कशास्त्र की गहराई को दर्शाता है और यह भारतीय दार्शनिक वाद–विवाद के इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

विश्वतत्त्वप्रकाश–

14. **विश्वतत्त्वप्रकाश**– जैन दर्शन का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसके रचयिता आचार्य पद्मनांदि हैं। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है,[45] यह ग्रंथ 'विश्व' (संसार) के 'तत्त्वों' (मूल सिद्धान्तों) पर 'प्रकाश' (विवेचन) डालता है।

यह ग्रंथ मुख्य रूप से जैन तत्त्वमीमांसा और ब्रह्माण्ड विज्ञान पर केन्द्रित है। इसमें जैन दर्शन द्वारा मान्य छह द्रव्यों और सात तत्त्वों का विस्तृत वर्णन किया गया है। ग्रंथ में जीव (चेतन), पुद्गल (पदार्थ), धर्म (गति का माध्यम), अधर्म (स्थिरता का माध्यम), आकाश (अंतरिक्ष)

और काल (समय)–इन छह द्रव्यों के स्वरूप और गुणों की विस्तृत व्याख्या की गई है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष – इन सात तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्ध और उनके महत्व को स्पष्ट किया गया है, जो मोक्ष मार्ग को समझने के लिए आवश्यक हैं।जैन धर्म की वैज्ञानिक और दार्शनिक समझ को दर्शाता है, जिसमें ब्रह्माण्ड और जीवन को तार्किक सिद्धान्तों के आधार पर समझाया गया है। विश्वतत्त्वप्रकाश जैन दर्शन की समग्रता को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ है।

प्रमाण प्रमेय कलिका–

15. **प्रमाण प्रमेय कलिका**जैन दर्शन के न्याय (तर्कशास्त्र) और ज्ञानमीमांसा का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।[46] इस ग्रंथ के रचयिता पंडित जयचन्द छाबड़ा हैं, जो 18वीं शताब्दी के एक प्रमुख विद्वान थे।यह ग्रंथ अपने नाम के अनुरूप ही, 'प्रमाण' (ज्ञान के साधन) और 'प्रमेय' (ज्ञान के विषय) पर केन्द्रित है। पंडित जयचन्द छाबड़ा ने इस ग्रंथ में जैन न्याय के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल और व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत किया है।

यह ग्रंथ जैन तर्कशास्त्र को समझने के लिए एक प्रारम्भिक ग्रंथ के रूप में अत्यन्त उपयोगी है। इसमें प्रमाण, नय, अनेकांतवाद और स्याद्वाद जैसे सिद्धान्तों की सरल और स्पष्ट व्याख्या की गई है। पंडित जयचन्द छाबड़ा ने पूर्ववर्ती जैन न्याय के आचार्यों(जैसे अकलंकदेव और विद्यानन्द) के विचारों को संकलित करके उन्हें एक संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। यह ग्रंथ उन सभी प्रमुख अवधारणाओं का सार प्रस्तुत करता है जो जैन न्याय को समझने के लिए आवश्यक है।

प्रमाण प्रमेय कलिका उन छात्रों और विद्वानों के लिए एक अच्छा संदर्भ ग्रंथ है जो जैन तर्कशास्त्र का प्रारम्भिक अध्ययन करना चाहते हैं। यह ग्रंथ जैन ज्ञानमीमांसा के सिद्धान्तों को एक सुलभ और तार्किक रूप में प्रस्तुत करता है।

युक्तानुशासन–

16. **युक्तानुशासन** (युक्ता + अनुशासन) जैन दर्शन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और मौलिक ग्रंथ है। इसके रचयिता महान दिगम्बर आचार्य समन्तभद्र हैं, जो दूसरी शताब्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान थे।

'युक्तानुशासन' का अर्थ है 'युक्तियुक्त अनुशासन'[47] या 'तर्कसंगत उपदेश'। यह ग्रंथ 64 श्लोकों का एक स्तोत्र है, जिसमें आचार्य समन्तभद्र ने तीर्थंकरों, विशेषकर भगवान महावीर, के उपदेशों और उनके गुणों की प्रशंसा की है। इस स्तोत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह प्रशंसा केवल भक्ति पर आधारित नहीं है, बल्कि तर्क और युक्ति पर आधारित है। आचार्य समन्तभद्र ने यह सिद्ध किया है कि तीर्थंकरों का शासन (धर्म) इसलिए स्वीकार करने योग्य है क्योंकि वह तर्क की कसौटी पर खरा उतरता है। उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि कोई भी व्यक्ति केवल श्रद्धा से नहीं, बल्कि युक्ति और प्रमाण के आधार पर सत्य को स्वीकार करे। इस ग्रंथ में आचार्य समंतभद्र ने संक्षेप में अनेकांतवाद, स्याद्वाद, और मोक्ष के मार्ग जैसे जैन सिद्धांतों का विवेचन किया है। उन्होंने अन्य दार्शनिक मतों के दोषों को भी तार्किक रूप से उजागर किया है।

युक्तानुशासन जैन साहित्य में भक्ति और तर्क के अद्भुत संगम का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह दर्शाता है कि जैन दार्शनिकों ने धर्म के पालन के लिए आस्था के साथ–साथ बौद्धिक समझ को भी उतना ही महत्वपूर्ण माना।

आत्मानुशासन–

17. **आत्मानुशासन**[48]– जैन दर्शन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और आध्यात्मिक ग्रंथ है, जिसके रचयिता महान दिगम्बर आचार्य गुणभद्र हैं। वे नौवीं शताब्दी के प्रसिद्ध आचार्य जिनसेन के शिष्य थे और उन्होंने अपने गुरु के महापुराण को भी पूरा किया था।

'आत्मानुशासन' का शाब्दिक अर्थ है 'आत्मा को अनुशासन या उपदेश'। यह ग्रंथ आत्मा को संबोधित करते हुए स्वयं के स्वरूप को समझने और मोक्ष के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। इसे जैन साहित्य में नीति, वैराग्य और आत्म–कल्याण पर एक उत्कृष्ट ग्रंथ माना जाता है।

इस ग्रंथ में आचार्य गुणभद्र ने आत्मा को शुद्ध करने और कर्म के बंधनों से मुक्त होने के लिए आवश्यक अनुशासन, जैसे इंद्रियों पर नियंत्रण, कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) का त्याग और ध्यान का महत्व समझाया है। यह ग्रंथ काव्यमय शैली में लिखा गया है, जिसमें सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग किया गया है। इसकी भावपूर्ण और प्रेरणादायक शैली इसे जैन साधकों के बीच बहुत लोकप्रिय बनाती है।

आत्मानुशासन' दार्शनिक ज्ञान को जीवन के व्यावहारिक आचरण से जोड़ता है। यह बताता है कि केवल सिद्धांतों को जानना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उन्हें जीवन में उतारना ही मोक्ष का सच्चा मार्ग है। आत्मानुशासन जैन दर्शन के नैतिक और आध्यात्मिक पहलू का एक सशक्त उदाहरण है, जो आत्म–शुद्धि और वैराग्य के महत्व पर जोर देता है।

विविध तीर्थ कल्प–

18. विविध तीर्थ कल्प– जैन साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक और भौगोलिक ग्रंथ है। इसके रचयिता आचार्य जिनप्रभ सूरि हैं, जो चौदहवीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैन आचार्य थे। 'विविध तीर्थ कल्प' का शाब्दिक अर्थ है 'विभिन्न तीर्थों का विवरण'।[49] यह ग्रंथ भारत भर में स्थित विभिन्न जैन तीर्थस्थलों (तीर्थों) के विस्तृत विवरण का संग्रह है। यह सिर्फ एक भौगोलिक सूची नहीं है, बल्कि यह एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दस्तावेज भी है।

यह ग्रंथ जैन तीर्थों के इतिहास, वहाँ की प्रतिमाओं की स्थापना, वास्तुकला और उनसे जुड़ी किंवदंतियों का वर्णन करता है। यह उस समय के जैन समाज की धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को समझने के लिए एक अमूल्य स्रोत है।आचार्य जिनप्रभ सूरि ने इस ग्रंथ को काव्यमय शैली में रचा है, जिससे यह साहित्यिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यह ग्रंथ तीर्थयात्रा के महत्व को भी स्थापित करता है, जो जैन धर्म का एक अभिन्न अंग है। ग्रंथ में गिरनार, शत्रुंजय, सम्मेद शिखर और अबू जैसे प्रसिद्ध तीर्थों के अलावा कई अन्य तीर्थों का भी वर्णन है, जो उस समय के जैन धर्म के प्रसार को दर्शाता है।विविध तीर्थ कल्प यह दर्शाता है कि जैन विद्वान केवल दार्शनिक विषयों तक ही सीमित नहीं थे, बल्कि उन्होंने इतिहास, भूगोल और संस्कृति जैसे विषयों पर भी महत्वपूर्ण कार्य किया।

प्रभावक चरित्र–

19. प्रभावक चरित्र– आपकी रुचि प्रभावक चरित्र नामक ग्रंथ में है। यह जैन धर्म के इतिहास और परम्परा को समझने के लिए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अद्वितीय ऐतिहासिक संग्रह है।[50] इसकी रचना आचार्य प्रभाचन्द्र ने की थी, जिनका समय 13वीं शताब्दी ईस्वी के आसपास माना जाता है। यह ग्रंथ विभिन्न प्रभावशाली जैन आचार्यों, मुनियों, विद्वानों और श्रावकों के जीवन चरित्रों का एक संग्रह है। इन चरित्रों में उनके जीवन की घटनाओं, उनके द्वारा किए गए धार्मिक कार्यों, उनके चमत्कारों और जैन धर्म के प्रचार–प्रसार में उनके योगदान का वर्णन मिलता है।

यह जैन परम्परा के उन महानुभावों की जानकारी देता है जिन्होंने अपने समय में धर्म और समाज पर गहरा प्रभाव डाला।यह केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत भी है। इसमें वर्णित घटनाएं और व्यक्तित्व उस काल के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संदर्भों को समझने में मदद करते हैं।यह विभिन्न संप्रदायों, मठों और समुदायों के विकास की जानकारी भी प्रदान करता है। इन चरित्रों को पढ़ने से जैन अनुयायियों को धार्मिक जीवन जीने, नैतिकता का पालन करने और धर्म के सिद्धांतों को समझने की प्रेरणा मिलती है।

यह ग्रंथ जीवनीपरक शैली में लिखा गया है, जिसमें घटनाओं को कथा रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों के साथ–साथ लोककथाएं और धार्मिक उपाख्यान भी शामिल हैं। प्रभावक चरित्र जैन धर्म के इतिहास के उन सुनहरे पन्नों को उजागर करता है जहाँ महान व्यक्तित्वों ने अपने ज्ञान, तपस्या और प्रभाव से जैन धर्म की पताका को ऊंचा उठाया। यह ग्रंथ न केवल सूचनात्मक है, बल्कि अत्यधिक प्रेरणादायक भी है।

जैनदर्शन–

20. जैनदर्शन– 'जैनदर्शन' नामक ग्रन्थ में दर्शन शब्द को परिभाषित करते हुए लिखते है कि 'दर्शन का मोटा और स्पष्ट अर्थ है साक्षात्कार करना।[51] अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान से किसी वस्तु का तर्क के द्वारा निर्णय करना। प्रत्यक्ष ज्ञान में वस्तु का स्वरूप का दर्पण की भांति अवलोकित होती है।

जैनदर्शन कृति आपकी कलम से लिखी गई एक '"स्वतन्त्र कृति' के रूप में विख्यात है। इस ग्रन्थ में 12 प्रकरण हैं।[52] इनमें संक्षेप रूप से उन ऐतिहासिक और तुलनात्मक विकास–बीजों को बताने की चेष्टा की गई है; जिनसे यह सहज समझ में आ सके कि तीर्थंकर की वाणी के बीज किन–किन परिस्थितियों में कैसे–कैसे अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और सफल हुए, राष्ट्रकवि बाबू रामधारीसिंह 'दिनकर' ने अपने "संस्कृति के चार अध्याय' नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत कृति के चुने सन्दर्भ को उद्धृत करते हुए इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है। यह जैन तथा जैनेत्तर दार्शनिकों के लिए समान रूप से सहायक ग्रन्थ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–1।
2. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–1।
3. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–13।
4. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–26।
5. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–26।
6. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–26।

7. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–27।
8. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–9।
9. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–8।
10. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय खण्ड 2, पेज–8, मूल सन्दर्भ सरस्वती पत्रिका 1959 से।
11. न्यायकुमुदचन्द्र आचार्य प्रभाचन्द्र माणिकचन्द्र, दि. जैन ग्रन्थमाला, प्रस्तावना, पेज–1–5।
12. अकलंक ग्रन्थत्रयी आचार्य अकलंकदेव सिंघी, जैन ग्रन्थमाला, प्रस्तावना, पेज–1, 2।
13. प्रमाणमीमांसा हेमचन्द्राचार्य सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमदाबाद, प्रस्तावना, पेज–1–3।
14. प्रमेयकमलमार्तण्ड आचार्य प्रभाचन्द्र सत्यभामाबाई पांडुरंग, मुंबई–1941, प्रस्तावना, पेज–1–24।
15. न्यायविनिश्चय आचार्य अकलंकदेव, भारतीय ज्ञान पीठ, काशी, प्रस्तावना, पेज–1।
16. सिद्धिविनिश्चय आचार्य अकलंकदेव भारतीय ज्ञानपीठ से ई 1958, प्रस्तावना, पेज–1–5।
17. जैन तर्क भाषा हेमचन्द्राचार्य, सरस्वती पुस्तक भंडार अहमदाबाद, पेज–1–3।
18. सत्यशास परीक्षा – आचार्य विद्यानन्द भारतीय, ज्ञान पीठ पेज–4।
19. प्रमाण प्रमेय कलिका – आचार्य नरेन्द्रसेन भारतीय, ज्ञान पीठ, प्रस्तावना, पेज–21।
20. युक्त्यनुशासन – आचार्य समन्तभद्र, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली पेज–10।
21. तत्त्वार्थवृत्ति श्रुतसागर – सूरि/प्रभाचन्द्र, भारतीय ज्ञान पीठ पेज–1–3।
22. तत्वार्थ वार्तिक – आचार्य अकलंक देव, भारतीय ज्ञान पीठ, पेज–1–4।
23. जयधवला – आचार्य वीरसेन एवं जिनसेन, भारतीय जैन संघ, मथुरा, प्रस्तावना, पेज–1।
24. विश्वतत्व – जैन संस्कृति संरक्षण संघ, सोलापूर, पेज– 1–4।
25. षड्दर्शन समुच्चय – आचार्य हरिभद्र सूरि, भारतीय ज्ञान पीठ, पेज–2।
26. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य, स्मृति ग्रन्थ – जीवन परिचय, खण्ड 2, पेज–8, मूल सन्दर्भ सरस्वती पत्रिका 1959 से।
27. आत्मानुशासन – आचार्य गुणभद्र, श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी पेज 1।
28. विविध तीर्थकल्प – आचार्य जिनप्रभ सूरि, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, पेज–2।
29. प्रभावक चरित्र – आचार्य प्रभाचंद्र सिंधी, जैन ग्रन्थमाला, पेज–1।
30. जैनदर्शन – पं महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य, श्री गणेश वर्णी दिगंबर जैन संस्थान, वाराणसी, पेज 1।
31. न्यायकुमुदचन्द्र –। आचार्य प्रभाचन्द्र।
32. अकलंकदेव द्वारा प्रणीत – सिद्धिविनिश्य – ज्ञानपीठ मूर्ति ग्रन्थमाला, पेज 1, प्राक्कथन।
33. अकलंक ग्रन्थत्रयी – आचार्य अकलंक देव।
34. प्रमाणमीमांसा – हेमचन्द्राचार्य, पेज 11।
35. प्रमेयकमलमार्तण्ड – आचार्य प्रभाचन्द्र, पेज 3।
36. न्यायविनिश्चय – आचार्य अकलंक देव, पेज 9।
37. तत्त्वार्थवृत्ति – श्रुतसागर सूरि/प्रभाचन्द्र, पेज 12 ।
38. तत्वार्थ वार्तिक – आचार्य अकलंक देव, पेज 2।
39. सिद्धिविनिश्चय – आचार्य अकलंक देव, पेज 5।
40. षड्दर्शन समुच्चय – आचार्य हरिभद्र सूरि, पेज 1–3।
41. प्रमाणवार्तिक – आचार्य धर्मकीर्ति, पेज 10।
42. जयधवला – आचार्य वीरसेन एवं जिनसेन, पेज 8।
43. जैनतर्क भाषा – हेमचन्द्राचार्य, पेज 5।
44. सत्यशासपरीक्षा – आचार्य विद्यानन्द, पेज 3।
45. विश्वतत्व प्रकाश – (परम्परागत आचार्य) पेज 5।
46. प्रमाणप्रमेयकलिका – आचार्य नरेन्द्र सेन, पेज 1।
47. युक्त्यनुशासन – आचार्य समंतभद्र, पेज 3।
48. आत्मानुशासन – आचार्य गुणभद्र, पेज 5।
49. विविध तीर्थकल्प – आचार्य जिनप्रभ सूरि, पेज 10।
50. प्रभावक चरित्र – आचार्य प्रभाचन्द्र, पेज 2।
51. जैनदर्शन – डॉ महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य – श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी। पेज 10।
52. जैनदर्शन – डॉ. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य – श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी। पेज 1।

ISSN : 2394-4366

Received: 10 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

पूर्व मध्यकालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था का स्वरूप

– श्याम नारायण
शोध छात्र –
प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर–273009 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
shyamn19@gmail.com

सारांश

कुछ विवादों से परे हटकर अगर हम अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करे तो हमें ज्ञात होता है कि 7वीं सदी तथा 9वीं सदी के बीच तुलनात्मक रूप से वाणिज्य व्यापार तथा नगरीकरण की प्रक्रिया शिथिल रही, किन्तु फिर 9वीं सदी तथा 13वीं सदी के बीच वाणिज्य व्यापार एवं नगरीकरण की प्रक्रिया को बल मिला। इस काल में पश्चिम एशिया में अरब साम्राज्य ने भारतीय वस्तुओं की मांग बढा दी। उसी प्रकार कृषि अर्थव्यवस्था के प्रसार ने एक समृद्ध वर्ग को उत्पन्न किया। इस वर्ग को विलासिता सम्बन्धी सामग्रियों की जरूरत महसूस हुई। इस कारक ने भी व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार आगे चलकर तृतीय नगरीकरण का आरम्भ हुआ।

पूर्व मध्यकाल भारतीय इतिहास में संक्रमण काल के रूप में जाना जाता है। यह अनेक परिवर्तनों का कालखण्ड प्रतीत होता है। पूर्व मध्यकाल में सामाजिक संरचना पर दृष्टिपात करें तो हमें अनेक विशेषतायें दिखायी देती हैं। इस काल में जातियों की बहुलता सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अभिलक्षणा थी। कई विदेशी यात्रियों ने भी जातियों की बहुलता को उल्लेखित किया है। इब्नखुर्दादब ने भी कई जातियों का जिक्र किया है। अल्बरूनी ने चार वर्ण व आठ अन्त्यज जातियों का विवरण दिया है। कल्हण ने भी अनेक जातियों का उल्लेख किया है। इन जातियों की बहुलता का सबसे प्रमुख कारण कृषि अर्थव्यवस्था का सुदूरवर्ती क्षेत्रों में प्रसार के कारण जनजातियों का जाति के रूप में ढल जाना है। इसके अतिरिक्त कुछ पेशेवर समूह भी जाति के रूप में ढल गये।

राजपूतों की उत्पत्ति मिश्रित तत्वों का परिणाम थी, अतः अपने सामाजिक दर्जा को ऊँचा उठाने के लिये उन्हे ब्राह्मणों अथवा पुरोहित वर्ग के सहयोग की जरूरत थी। यही वजह है कि इस काल में वैश्यों की सामाजिक दशा में गिरावट आयी। उनकी स्थिति लगभग शूद्रों के समकक्ष हो गई। इस काल में महिलाओं की दशा में भी गिरावट देखी जा सकती है। चूंकि बाल विवाह और सती प्रथा जैसी कुरीतियाँ पहले से ही प्रचलित थीं, अब जौहर प्रथा जैसी कुप्रथा का प्रारम्भ हो गया था। इसके अलावा इस काल में पर्दा प्रथा को विशेष प्रोत्साहन मिला।

पूर्व मध्यकाल कृषि अर्थव्यवस्था के विकास की दृष्टि से अभूतपूर्व काल माना जाता है। इस काल में अनेक शासकों द्वारा भूमि अनुदान दिये गये। भूमि अनुदान के माध्यम से दूरवर्ती क्षेत्रों में कृषि अर्थव्यवस्था का प्रसार हुआ। जंगलों को काटकर खेती के उपयुक्त भूमि बनायी जा रही थी। सीमावर्ती क्षेत्रों में कबाइली जनसंख्या द्वारा कृषि के पेशे को अपनाया जा रहा

था। इस प्रकार कबाइली जनसंख्या कृषक समुदाय में परिवर्तित हो रही थी। इस काल में न केवल कृषि अर्थव्यवस्था का प्रसार हो रहा था बल्कि सिंचाई तकनीक में भी अनेक बेहतर उपकरण व विकास दिखाई देता है। सिंचाई की पद्धति के रूप में अरघट का प्रयोग एक लम्बे समय काल से चला आ रहा था।

इस काल में सिंचाई हेतु फारसी चक्र का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। सिंचाई के अनुप्रयोग से नवीन क्षेत्रों को उपजाऊ भूमि में परिवर्तित किया जाने लगा था। इससे फसल उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि देखी गई। इस काल में अनेक विदेशी यात्रियों के माध्यम से भी विभिन्न प्रकार के फसलों का विवरण दिया गया है। इस काल में विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न फसलों के साथ–साथ गन्ना एवं कपास का भी उत्पादन होता था। कृषि के उत्थान से ग्रामीण व व्यापारिक क्षेत्रों दोनों का विकास हुआ। कृषि अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप नये–नये क्षेत्रों में राज्य निर्माण को प्रोत्साहन मिला। इस वजह से भी इस काल में राज्यों की संख्या में वृद्धि हुई है। पूर्व मध्यकाल में वाणिज्य व्यापार, मुद्रा अर्थव्यवस्था मुद्दे के रूप में उभरा है। भारतीय सामन्तवाद के मॉडल पर काम करने वाले विद्वान वाणिज्य व्यापार, मुद्रा अर्थव्यवस्था तथा नगरीकरण के सन्दर्भ में अलग–अलग प्रकार की अवधारणा रखते हैं। उनके विचार में छठी सदी तथा उसके पश्चात् कुछ क्षेत्रों में मुद्रा अर्थव्यवस्था तथा नगरीकरण का पतन हुआ। इस काल में पुरातात्विक साक्ष्यों से नगरों के पतन की सूचना मिलती है। इतिहासकारों के अनुसार इस काल में न केवल मुद्राओं की कमी हुई बल्कि मुद्रा बनाने वाले सांचे भी अनुपस्थित दिखते हैं। किन्तु दूसरी तरफ संशोधनवादी विद्वानों जैसे वी. डी. चट्टोपाध्याय तथा रणवीर चक्रवर्ती आदि ने वाणिज्य व्यापार तथा नगरीकरण के पतन की अवधारणा को चुनौती दी है। उनके विचार में नौवीं सदी में भी उत्तर भारत में नगर विद्यमान थे।

उपर्युक्त विवाद से परे हटकर अगर हम अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करे तो हमें ज्ञात होता है कि 7वीं सदी तथा 9वीं सदी के बीच तुलनात्मक रूप से वाणिज्य व्यापार तथा नगरीकरण की प्रक्रिया शिथिल रही, किन्तु फिर 9वीं सदी तथा 13वीं सदी के बीच वाणिज्य व्यापार एवं नगरीकरण की प्रक्रिया को बल मिला। इस काल में पश्चिम एशिया में अरब साम्राज्य ने भारतीय वस्तुओं की मांग बढा दी। उसी प्रकार कृषि अर्थव्यवस्था के प्रसार ने एक समृद्ध वर्ग को उत्पन्न किया। इस वर्ग को विलासिता सम्बन्धी सामग्रियों की जरूरत महसूस हुई। इस कारक ने भी व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार आगे चलकर तृतीय नगरीकरण का आरम्भ हुआ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्रबरदाई : पृथ्वीराजरासो, संपादक– श्यामसुन्दर दास वाराणसी, 1904।
2. जयदेव : गीतगोविन्द।
3. विल्हण : विक्रमांकदेवचरित, बम्बई– 1875।
4. राजशेखर : कर्पूरमंजरी, कलकत्ता– 1948।
5. विज्ञानेश्वर : मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, बम्बई, 1905।
6. पाण्डेय विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास।
7. मिश्र, जयशंकर: प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास।
8. चौबे और श्रीवास्तव : मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति लखनऊ, 1979।

ISSN : 2394-4366

Received: 20 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व

– डॉ. रवेन्द्र राजपूत
एसोसिऐट प्रोफेसर –
शिक्षक–शिक्षा विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय,
अलीगढ़–202001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
ravendraarajput@hotmail.com

सारांश

आज हमारे देश में जनसंख्या की तीव्रतम वृद्धि एक विकराल समस्या बन गयी है। देश में प्रति वर्ष लगभग 2 करोड़ बच्चे पैदा होते हैं और 70 लाख व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि हमारे देश की जनसंख्या प्रति वर्ष 1.3 करोड़ बढ़ जाती है। यह जनसंख्या आस्ट्रेलिया देश के बराबर है। इसका अर्थ यह है कि प्रति वर्ष हम एक आस्ट्रेलिया को जन्म दे देते हैं। पिछले 28 वर्षों में 2.3 करोड़ वृद्धि हुई है जो कि रूस की जनसंख्या के बराबर है किन्तु रूस का क्षेत्रफल हमारे देश के भू भाग से 6 गुना अधिक है। आज अपने देश की जनसंख्या 1.45 अरब है, जब कि सम्पूर्ण विश्व की 7.8 अरब। यानि कि दुनिया में रहने वाला हर छझा व्यक्ति भारतीय है।

जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। इन कार्यक्रमों द्वारा विद्यार्थी को जनसंख्या विकास तथा जीवन स्तर के मध्य अन्तः सम्बन्ध का ज्ञान दिया जाता है। जनसंख्या शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को जनसंख्या वृद्धि की स्थिति के प्रति विवेकपूर्ण उत्तरदायित्व पूर्व, दृष्टिकोण, अभिवृत्तियों एवं व्यवहार का विकास करना है। जनसंख्या शिक्षा के द्वारा जनसंख्या वृद्धि के प्रति लोगों को जाग्रत करने तथा स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करने में बल मिलता है।

बीज शब्द – तीव्रतम विकराल, सम्पूर्ण, शैक्षिक कार्यक्रम, अन्तर्गत, उत्तरदायित्वपूर्ण, अभिवृत्ति, जाग्रत, उद्देश्य, दृष्टिकोण।

सुरसा के मुँह की तरह निरन्तर प्रवाहमान जनसंख्या वृद्धि ने भारतीय अर्थव्यवस्था की कमर ही तोड़कर रख दी है, इसी कारण तो पिछड़ रहे हैं हम अन्य देशों के मुकाबले। इससे देश के सामने भयंकर समस्यायें उत्पन्न हो रही है क्योंकि इसका सीधा प्रभाव व्यक्ति के सुख, स्वास्थ्य, सम्पत्ति, राष्ट्र की प्रगति एवं समृद्धि, अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शान्ति पर पड़ता है। इस समस्या की भीषणता को देखकर कुछ विचारवान व्यक्तियों ने यह मत प्रकट किया है कि जनसंख्या विस्फोट ने हमारे विश्व को मुसीबत में फँसा दिया है। इसी की त्रासदी को 'काका हाथरसी'' ने अपनी इन चन्द लाइनों के द्वारा व्यक्त किया है–

''यदि यही रहा क्रम बच्चों के उत्पादन का,
तो सवाल आगे आयेगें बड़े–बड़े।
सोने को किचिंत जगह धरा पर मिले नहीं,
मजबूरन हम तुम सब सोयेंगे खड़े–खड़े।।''

भारत में जनसंख्या विस्फोट–भारत में जनसंख्या विस्फोट के

विकराल व भयंकर रूप को इन आँकड़ों से अच्छी तरह समझ सकते हैं–

1. भारत में प्रत्येक डेढ़ सेकेण्ड के बाद एक बच्चे का जन्म होता है।

2. भारत में प्रति वर्ष 31 करोड़ बच्चों का जन्म होता है जिनमें से 13 करोड़ जीवित रहते हैं इस प्रकार जन्म दर बहुत ऊँची है।

3. भारत की जनसंख्या का लगभग 42 प्रतिशत भाग 14 वर्ष से कम आयु का है।

4. भारत की जनसंख्या की वृद्धि प्रतिवर्ष 2.4 प्रतिशत है जो विश्व में उच्चतम है।

5. विश्व का प्रत्येक छठा व्यक्ति भारतीय है।

6. विश्व की 2.4 प्रतिशत भूमि भारत में है किन्तु इस भूमि पर विश्व की जनसंख्या का लगभग 16 प्रतिशत भाग निवास करता है।

7. भारत में कुल 64 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं।

8. भारत के लोगों के रहन सहन का स्तर बहुत निम्न है।

जनसंख्या वृद्धि के कारण – निम्न अशिक्षा जनित विचारधारायें, परम्परायें ही बेतहाशा जनसंख्या वृद्धि के मुख्य कारण हैं। इन्हें हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं–

1. वे ग्रामीण जो कृषि से अपना निर्वाह करते हैं बालकों को आर्थिक उपलब्धि का साधन समझते हैं।

2. बाल मृत्यु दर अधिक होने से लोग अधिक बच्चों को जन्म देना पसन्द करते हैं।

3. बुढ़ापे की सुरक्षा बच्चों से ही सम्भव है।

4. बच्चों से गाँव में परिवार की शक्ति बढ़ती है।

5. बच्चे ईश्वर की देन है तथा मोक्ष की प्राप्ति के साधन हैं।

6. बच्चे तो ऊपर वाले की देन हैं।

7. आधुनिक परिवार नियोजन के साधनों के प्रति अनिभिज्ञता।

8. संक्रामक रोगों की रोकथाम के कारण मृत्यु दर में कमी होना।

9.परिवार नियोजन कार्यक्रम में आने वाली अड़चने।

परिभाषायें – ''जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है जिससे परिवार समाज, राष्ट्र एवं विश्व की जनसंख्या की स्थिति का अध्ययन किया जाता है जिसका उद्देश्य छात्रों में इस स्थिति के प्रति विवेक पूर्ण, उत्तरदायित्व पूर्ण दृष्टिकोणों एवं व्यवहार का विकास करना है।''

1. ''जनसंख्या शिक्षा, जनसंख्या पर नियन्त्रण की जाने वाली समस्या के रूप में नहीं वरन् उसकी व्यवस्था की जाने वाली सामाजिक एवं जैविकीय घटना के रूप पर विचार करती है।''

2. **चॉर्ल्स के शब्दों में**– ''जनसंख्या शिक्षा में छात्रों की संस्कृति उनके समाज की जनसंख्या स्थिति, प्रचलित स्थिति के विषय में उनके स्वयं के विचार, जनसंख्या तथा उसके प्रभावों के विषय में उनके तार्किक विवेकयुक्त तथा संगठित विचार निहित होने चाहिए।''

4. **यूनेस्को के अनुसार** – ''जनसंख्या शिक्षा को संख्यात्मक, पहलू के रूप में या अधिक महत्वपूर्ण संस्थाओं निबन्ध के रूप में ही वहीं जानना चाहिए, इसे जनसंख्या के गुणात्मक पक्ष तथा मानव स्रोत विकास के सम्बन्ध में जानना चाहिए।''

जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य – राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण NCERT (जुलाई 1970) के अनुसार जनशिक्षा शिक्षा में उद्देश्य निम्नवत हैं–

1. छात्रों को आधुनिक संसार की सबसे महत्वपूर्ण घटना के रूप में जनसंख्या वृद्धि की गति एवं कारणों का ज्ञान प्रदान करना।

2. छात्रों को व्यक्ति समुदाय, परिवार, देश व विश्व के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन पर जनसंख्या वृद्धि के पड़ने वाले कुप्रभावों से अवगत कराना।

3. छात्रों को परिवार के आकार एवं रहन सहन के स्तर के सम्बन्ध में तथा कम आय वाले बड़े परिवार की कठिनाइयाँ बताकर उनमें छोटे परिवार की वांछनीयता को सुदृढ़ करना।

4. छात्रों को जनसंख्या की वृद्धि से उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं की जानकारी प्रदान करके उसमें जनसंख्या पर नियन्त्रण रखने के दृष्टिकोण का विकास करना।

भारत सरकार (1971) द्वारा निर्धारित जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य –

1. जनसंख्या की गतिशीलता की प्रमुख जानकारी।

2. जनसंख्या विशेषताओं के महत्व की प्रशंसा।

3. परिवार आकार को आसानी से नियोजित क्रिया जा सकता है। इससे अवगत कराना।

4. छोटे परिवार के प्रति प्रशंसा।

5. सरकार के परिवार नियोजित कार्यक्रम से अवगत कराना।

6. व्यावहारिक परिवर्तन का ज्ञान कराना।

7. पर्याप्त जानकारी देना।

8. सकारात्मक अभिवृत्ति को उत्पन्न करना।

जनसंख्या शिक्षा की विषय सामग्री–

NCERT कार्यशाला नई दिल्ली (1970) के अनुसार–

1. जनसंख्या वृद्धि।

2. आर्थिक विकास और जनसंख्या।

3. सामाजिक विकास और जनसंख्या।

4. स्वास्थ्य पोषण तथा जनसंख्या।

सी.टी. फैनिक के अनुसार–

1. जन्मदर, मृत्युदर तथा जनसंख्या।

2. स्वास्थ्य तथा जनसंख्या।

3. खाद्य पदार्थों का उत्पादन तथा जनसंख्या।

4. परिवार का आकार तथा जनसंख्या।

5. रहन सहन का स्तर तथा जनसंख्या।

डी. गोपाल राव के अनुसार –

1. जनसंख्या वृद्धि का इतिहास – कारण प्रवृत्तियाँ।

2. जनांकिकी का अध्ययन।

3. जनसंख्या की तीव्र वृद्धि का राष्ट्रीय विकास आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पक्ष पर प्रभाव।

4. व्यक्ति, पारिवारिक जीवन तथा रहन सहन के स्तर पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव।

5. भौतिक वातावरण, प्राकृतिक साधनों, भोजन तथा जीवन के तुलनात्मक पक्षपर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव।

6. विश्व की जनसंख्या नीति तथा कार्यक्रम का सामान्य ज्ञान।

7. प्रजनन सम्बन्धी सामान्य ज्ञान।

जनसंख्या शिक्षा क्यों?

जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्ता को हम इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं–

1. जनसंख्या विस्फोट।

2. राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम पर जनसमूह और जनसंचार प्रयासों का प्रभाव।

3. विकसित देशों की जनसंख्या आयु तथ्य।

4. वर्तमान परिवार नियोजन कार्यक्रम को तेज करने की आवश्यकता।

5. आगे आने वाली पीढ़ी के लिए जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम के प्रावधान की आवश्यकता।

6. नागरिकता तथा प्रभाव पूर्ण वर्तमान जीवन शैली की तैयारी हेतु शिक्षा।

जनसंख्या शिक्षा के लिए शिक्षक की तैयारी–

जनसंख्या शिक्षा के लिए शिक्षकों की तैयारी कराने में मुख्य रूप से इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम का विकास हो।

2. शिक्षण तरीकों और निर्देशानुसार सामग्री का विकास किया जाय।

3. ये शिक्षा पूर्व कालीन तथा सेवा कालीन दोनों शिक्षकों को दी जाय।

4. शिक्षकों के लिए पुस्तकों तथा अन्य सहायक सामग्री की व्यवस्था की जाय।

5. शिक्षकों को इस शिक्षा को देने के लिए अलग से कुछ प्रोत्साहन दिया जाय।

6. शिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा की प्रमुख बातों – उद्देश्य, लक्ष्य, महत्व, जनसंख्या विकास के प्रभाव, संख्या आंकड़ों तथा सरकारी नीतियों के सन्दर्भ में ज्ञान कराया जाना चाहिए।

शिक्षकों को इस शिक्षा का प्रशिक्षण, गोष्ठियों, वर्कशॉप, व्याख्यान अलग तथा अधिवेशनों के माध्यम से कराया जाना चाहिए।

जनसंख्या शिक्षा देने के व्यावहारिक सुझाव–

1. स्कूलों में इसके लिए सकारात्मक वातावरण बनाया जाय।

2. माता पिता तथा बच्चों को जनसंख्या शिक्षा लेने हेतु प्रेरित किया जाय।

3. शिक्षकों को कार्यक्रम चलाने हेतु प्रेरित किया जाय।

4. स्कूल के प्रधानाध्यापकों की अभिवृत्ति को परिवर्तित किया जाय।

5. स्कूल शिक्षकों के लिए जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित अभिनवन कार्यक्रमों का आयोजन किया जाये।

6. पुस्तकालयों में इससे सम्बन्धित पुस्तकों तथा

स्कूलों में विभिन्न चरित्र लगाये जाये।

7. स्कूलों की प्रबन्ध समिति, निरीक्षण विभाग तथा शैक्षिक अधिकारियों को इस कार्यक्रम में शामिल किया जाय।

8. नये प्रयोग तथा शोध कार्यों को प्रोत्साहन दिया जाय।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) रिपोर्ट –

विद्यार्थियों तथा समुदाय के अन्दर जनसंख्या की समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने निम्न बातों को शामिल किया है–

1. विश्वविद्यालय व कॉलेजों में 15 भाषणों के एक सैट को जिसमें जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न तथ्य शामिल हों, बाँटा जाये।

2. पूर्व स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम पुर्नसंगठन में जनसंख्या शिक्षा को शामिल किया जाये।

3. उत्तर स्नातक स्तर पर जनसंख्या शिक्षा को मजबूत किया जाये तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विकसित कार्यक्रमों में इसे महत्व दिया जाय।

4. जनसंख्या समस्या पर शोध तथा योजनाओं के लिए विश्वविद्यालय व कॉलेजों को अनुदान दिया जाय।

5. प्रौढ़ व सतत् शिक्षा के साथ इसे सह सम्बन्धित किया जाय।

6. जनसंख्या शिक्षा क्लब विद्यार्थियों व समुदायों के लिए संगठित किये जायें।

ऐसे क्लब 18 मण्डलों में चल रहे हैं। इस प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस कार्यक्रम को अपनी देख रेख में चलाने का निर्णय लिया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय शिक्षा की सामयिक समस्याएँ – कपूर, उर्मिला।
2. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त – लाल, रमन बिहारी।
3. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक – टण्डन, उमा एवं गुप्ता, अरूणा।
4. भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें – गुप्ता, एस. पी.।
5. आधुनिक भारतीय शिक्षा : समस्याएँ और समाधान – अग्निहोत्री, रवीन्द्र।
6. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ – पाठक, पी. डी.।
7. भारतीय शिक्षा इतिहास, विकास एवं समस्याएँ – लाल एवं शर्मा।

The Gunjan

Multi Displinary Quarterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal

ISSN : 2349-9273

`The Gunjan'

(in Multi Language : Hindi + English + Sanskrit)

Multi Displinary Quareterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal

Sector-K-444, `Shiv Ram Kripa' World Bank Barra-Kanpur-208027

Contact- 08896244776, 09335597658,

E-mail: mohittrip@gmail.com

Visit us: www:thegunjan.com, abhinavgaveshna.com

ISSN : 2394-4366

Received: 22 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

आगरा जनपद में सतत् विकास कार्यक्रम के तहत पेयजल की उपलब्धता एवं आपूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक

– डॉ. राजीव कुमार
पूर्व शोध छात्र–भूगोल विभाग,
नेशनल पी.जी. कालेज, भोगांव,
मैनपुरी–205262 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
rajeev170785@gmail.com

सम्बद्ध– डॉ. बी. आर. अम्बेदकर विश्वविद्यालय, आगरा – 282004 (उत्तर प्रदेश)

सारांश

प्रधानमंत्री द्वारा 'मन की बात' कार्यक्रम के माध्यम से भारत के नागरिकों से आग्रह किया गया है कि पानी की कमी के बारे में जागरुकता उत्पन्न करें, ज्ञान साझा करें। जल भण्डारण के पारम्परिक तरीकों और जल संरक्षण पर काम करने वाले व्यक्तियों और गैर–सरकारी संगठनों के बारे में जानकारी साझा करें। समयबद्ध तरीके से पेयजल हेतु सफल क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक जिले के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारें वरिष्ठ अधिकारियों को केंद्रीय प्रभारी नियुक्त कर रही है। यह सही दिशा में सराहनीय कदम है। 'नल से जल' सरकार की एक नई पहल है जो 2030 ई. तक सभी नगरों और ग्रामीण क्षेत्रों से वर्तमान जल संकट को दूर करने और प्रत्येक घर में 'नल से जल' उपलब्ध कराने का प्रयास कर रही है।

वर्तमान जल संसाधन मंत्रालय को पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय को साथ भी लेकर नदी संरक्षण सहित एक नए मंत्रालय में स्थानांतरित करके सुदृढ़ किया गया है। आगरा जनपद में बढ़ते जल संकट को ध्यान में रखते हुए केन्द्र एवं राज्य सरकार ने जल संरक्षण और वर्षा जल संचयन, पारंपरिक जल निकायों और टैंकों का नवीनीकरण, बोरवेल रिचार्ज संरचनाओं का पुनः उपयोग, वाटर शेड विकास और गहन वनीकरण पर जोर देते हुए जलशक्ति अभियान प्रारम्भ किया है। यह अभियान आगरा जनपद के समस्त विकासखण्डों में संचालित किया गया है। जिनमें से अधिकांश पेयजल की समस्या से ग्रस्त है। उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में शासन ने जल संकट को दूर करने के लिए सामूहिक प्रयास करने को प्रोत्साहित किया है।

यदि उक्त योजना सफलतापूर्वक क्रियान्वित की जा सकी तो यह एक गेम चेंजर (Game Changer) सिद्ध होगी। सभी के लिए पाइप जलापूर्ति का प्रावधान करने के लिए नए कौशल, उच्च निवेश उत्तरदायी संस्थान और जल संवर्धन और उच्च उपयोग दक्षता की आवश्यकता होगी। इसके लिए हमें निम्नलिखित कदम उठाने चाहिए –

(1) क्षेत्र में सुरक्षित पेयजल योजनाएं आवश्यकता पर आधारित हों इसलिए सभी पारम्परिक और आधुनिक भूजल पुनर्भरण योजनाओं को अपनाकर स्थानीय भूजल संसाधनों के संवर्धन के प्रयास किए जाने चाहिए। जनपद के प्रत्येक विकासखण्ड और क्षेत्र के पास अपने पेयजल की जांच की गई प्रौद्योगिकी और प्रथाएं हैं, जो स्थानीय स्तर पर सुरक्षा प्रदान करती हैं।

(2) तालाबों में पुनर्भरण विधि की स्थापना करके स्थानीय जलापूर्ति को बढ़ाने के लिए इनका प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है।

(3) इस तरह के प्रयास से गाँव को अत्यधिक व्याधियों से भी बचाया जा सकेगा।

(4) कैस्केडिंग, चेक–डैम, सूखे गड्ढों का उपयोग इन क्षेत्रों में घास–रोपण के माध्यमों से स्थानीय समुदाय के ठोस प्रयासों से सूखी नदियों को पुनर्जीवित करने में सहायता मिलती है।

(5) वेटलैंड्स, जीरोजल निकायों जो नगर के लिए स्पंज के रूप में कार्य करते हैं उन्हें कभी भी उद्योगों और नगरीकरण के लिए अतिक्रमित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वह बाढ़ को अवशोषित करने और भूजल को रिचार्ज करने में संतुलन रखते हैं।

(6) डेवलपर्स का लालच जल संकट का एक मुख्य कारण है।

(7) बढ़ती जनसंख्या और वर्षा में हो रही कमी इसके कई कारणों में से एक है किन्तु मूल कारण आधुनिक पानी प्रबन्धन का पूरी तरह से अधिकतम दोहन पर केंद्रित हो जाना है।

(8) जल संचयन और जल निकासी के मध्य असंतुलन का परिणाम है आगरा जनपद का वर्तमान जल संकट।

(9) यदि हम चाहते हैं कि यह संतुलन सधे तो जितना और जैसा भूगर्भ से लिया जाये उतना और वैसा ही जल भूगर्भ धरती को वापस करने के सिद्धान्त को सख्ती से लागू करना ही होगा।

(10) साथ ही यह भी समझना होगा कि नहर, बांध और हर घर को नल से जल के बूते यह संभव नहीं हो सकेगा।

(11) परम्परागत जल–प्रबन्धन तकनीक और जल उपयोग में अनुशासन लाने से ही यह संभव होगा। हमारे के पारम्परिक जल प्रबन्धन की सबसे बड़ी विशेषता है कि स्थानीय समय, सामग्री और कौशल द्वारा ही संचालित होता रहा है।

(12) पेयजल हेतु धन की व्यवस्था करना धर्मार्थ का काम माना जाता था ऐसा करने वाले धनवान को समाज महाजन की उपाधि देता था।

(13) इस प्रक्रिया में पानी समस्या नहीं स्वावलम्बन था। पानी पर एकाधिकार की संभावना नहीं थी।

(14) सुखद है कि परम्परागत जल प्रणालियों तथा प्रबन्धन की बात प्रधानमंत्री जी के मन में आई है।

(15) पानी नीचे सरकता जा रहा है भूगर्भ में नलकूपों के स्तर सूखने लगे हैं। पानी के आने–जाने के मार्ग को स्वच्छ करें, छतों के पानी की व्यवस्था करें।

16. बड़े–बड़े कार्यस्थल बड़े–बड़े भवन स्कूल, तत्काल जन संरक्षण प्रारम्भ करें। वर्षा जल संचयन को अनिवार्य घोषित कर क्षेत्रों में जो भवन वर्षा में जन संभरण न करें, उसके नल काट दिए जाएं, बोरवेल सील कर दिए जाएं। सरकारों को भी चाहिए कि सभी बाधाओं को हटाएं जो समुदाय प्रबन्धन स्वयं करने में समर्थ हो, उत्साहित होकर पानी प्रबन्धन से जुडना ही होगा।

विश्व आर्थिक फोरम[4] में देश ने भविष्य में देशों के मध्य टकराव के जिन दस सबसे अधिक गम्भीर कारणों को चिन्हित किया है। उसमें वैश्विक स्तर पर जल सम्बन्धी समस्याओं को तीसरे स्थान पर रखा गया है सैनिटेशन से तात्पर्य घरों से निकले हुए मलजल को पर शोधन संयंत्रों तक ले जाकर शोधित करके उन्हें सुरक्षित ढंग से पर्यावरण में छोड़ा जाए, जिससे कि शौचालय से निकले गन्दे पानी को घर से बाहर निकलने वाली नाली तक पहुँचाने को ही पूरा सेनीटेशन मान लिया जाए। सम्पूर्ण आगरा जनपद में पेयजल की आपूर्ति 1069156 किलोलीटर प्रतिदिन है। जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में 733081 किलोलीटर एवं नगरीय क्षेत्रों में 336075 किलोलीटर पेयजल की आपूर्ति होती है। आगरा जनपद के 27 नगरों में जलापूर्ति की मात्रा 336075 किलोलीटर का उपयोग 20202495 व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

पेयजल की उपयोगिता –

25 से 29 जनवरी, 2021 को दावोस में वार्षिक वैश्विक जोखिम सर्वे के परिणाम जारी करते हुए वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम ने भविष्य में विभिन्न देशों में टकराव के दस सबसे गम्भीर खतरों को चिन्हित किया है। इस वर्ष के दस सबसे गम्भीर वैश्विक खतरों में जल सम्बन्धी चिंताएं तीसरे स्थान पर हैं। बाढ़ व सूखा के अलावा पानी का गिरता स्तर और घटिया जल प्रबन्धन विश्व की चिंता के कारण बने हुए हैं। इस सूची में पाँचवें नम्बर पर जलवायु परिवर्तन है। छठे नम्बर पर मौसम का बिगड़ता मिजाज है। इस समस्या का समाज को भारी खामियाजा भुगतना पड़ता है तथा खाद्य व ऊर्जा उत्पादन में कमी आती है। आठवें नम्बर पर खाद्य संकट है। विश्व में करीब 70 फीसदी जल का इस्तेमाल खाद्य उत्पादन में होता है। भारत और मिस्र जैसे देशों में यह आँकड़ा 90 प्रतिशत तक है। अगर जल संकट से नहीं निपटा जाएगा

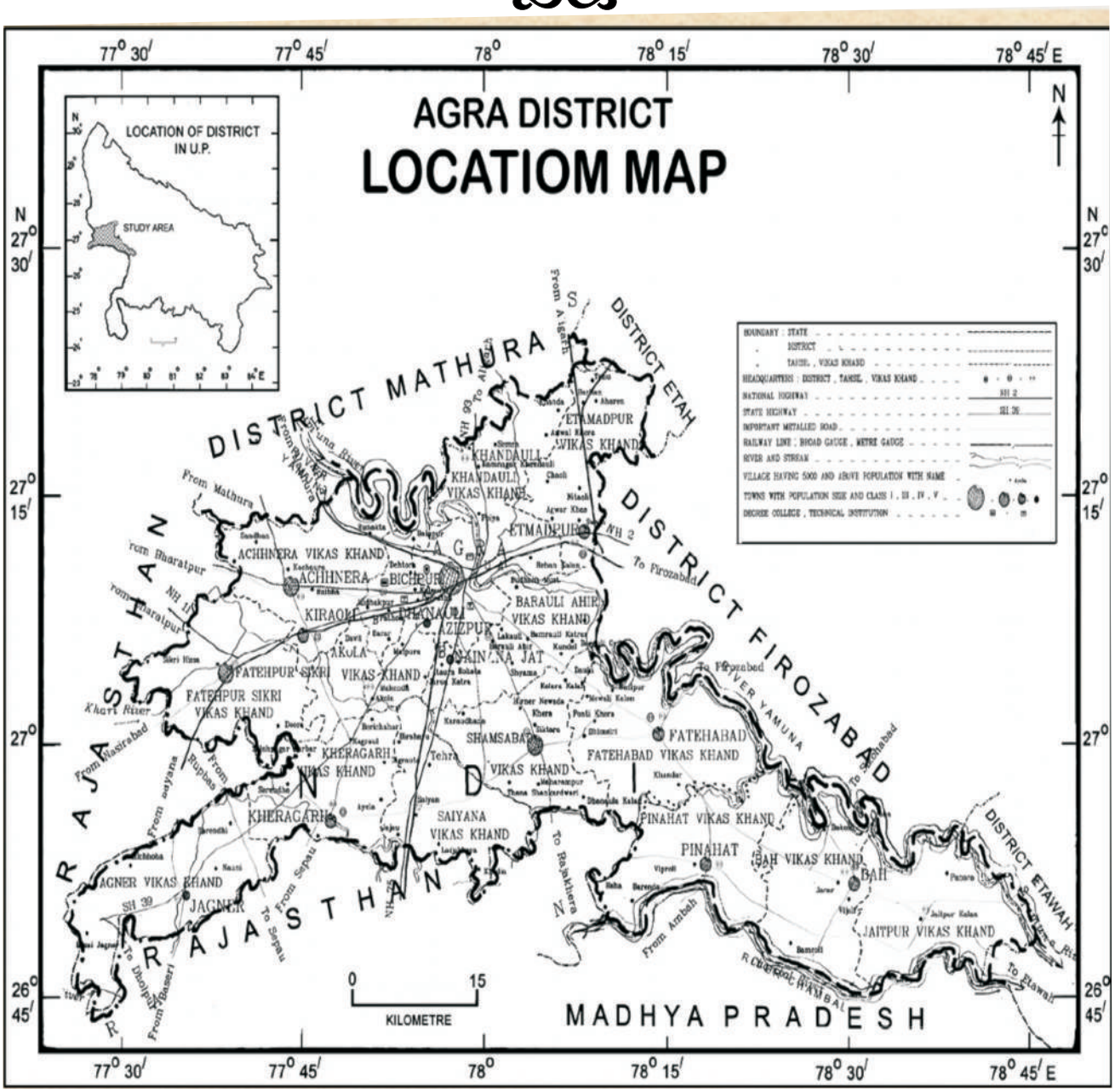

तो आने वाले वर्षों में विश्व के सामने खाद्य उत्पादन की गंभीर समस्या पैदा हो जाएगी।

ये समसत मुद्दे महत्वपूर्ण हैं, किन्तु फिलहाल हम केवल पानी के मुद्दे पर ही विचार करेंगे। मार्च, 2012 में संयुक्त राष्ट्र ने घोषणा की थी कि विश्व में 78.3 करोड लोगों के लिए स्वच्छ व सुरक्षित पेयजल उपलब्ध नहीं है। अब जरा तथ्यों पर गौर करें। 'थर्ड वर्ल्ड सेंटर फॉर वाटर मैनेजमेंट' के अनुसार– एक अरब पैंसठ करोड़ जनसंख्या वाले समग्र दक्षिण एशिया में सम्भवतः ही ऐसा कोई गांव मिले जहाँ लोगों को पीने के लिए स्वच्छ व सुरक्षित पानी उपलब्ध हो। सेंटर के अनुसार– कम से कम तीन अरब लोगों को स्वच्छ पानी उपलब्ध नहीं है। इस दारुण अवस्था की पुष्टि कुछ सरकारी और गैर सरकारी संस्थानों के आंकड़े भी करते हैं। 2011 में भारत की आधी नदियाँ और झीलें इतनी प्रदूषित थीं कि उनका उपयोग मानव उपभोग के लिए उपयुक्त नहीं था। 2011 में भारत के पर्यावरण मंत्रालय ने स्वीकार किया कि हालिया वर्षों में विषैले और सेहत के लिए हानिकारक रसायनिक गंदगी को पानी में उड़ेलने की प्रवृत्ति से पर्यावरण को गंभीर खतरा उत्पन्न हो गया है।

आगरा जनपद के लोगों के समक्ष पेयजल संकट खड़ा होने के साथ–साथ कैंसर जैसी घातक

बीमारियाँ तेजी से बढ़ रही हैं। 2019 में इसी मंत्रालय ने कहा था कि भारत में पानी की गुणवत्ता अतिशय निराशाजनक है। 2019 में भारत के केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने कहा कि भारत की 445 नदियों में से आधी इस सीमा तक प्रदूषित हैं कि इनका पानी मानव उपभोग के लिए उपयुक्त नहीं है। यह तो केवल जैव रासायनिक ऑक्सीजन और कोलीफॉर्म बैक्टीरिया के मानदण्डों के आधार पर निकला निष्कर्ष है। अगर नाइट्रेट फ्लोराइड, कीटनाशक और अन्य भारी धातुओं के आधार पर निष्कर्ष निकाले तो यह प्रतिशत कहीं अधिक होगा। गत वर्ष संसद में पेश रिपोर्ट में बताया गया कि पानी में नमूनों में से 72 प्रतिशत मानव उपभोग के लिये अनुपयुक्त पाए गए। नगरों में 77 प्रतिशत और गाँव में 86 प्रतिशत भू जल प्रदूषित है। वर्ष 2013 में जल आपूर्ति विभाग ने बताया कि परम्परागत जल आपूर्ति व्यवस्था का 80 प्रतिशत बैक्टीरिया, आयरन, मैग्नीज, और अमोनिया से प्रदूषित हो चुका है। सरकार के 25 हजार जल निकाय दिवालिया होने की कगार पर पहुंच चुके हैं। विकासशील देशों में भी जल की गुणवत्ता कमोबेश समान ही है।

पेयजल की उपलब्धता–

गुणात्मक पेयजल की उपलब्धता के आधार पर मृदा, जल, वनस्पति, मनुष्य व पशुओं जीव सम्वर्धन, मृदा विकास, मृदा अपरदन, गाद की मात्रा, बाढ़ व सूखा, भूमिगत जल में सुधार, घास–चारा, ईधन व फसलों के उत्पादन में नियमित आधार पर वृद्धि, पर्यावरण व पारिस्थितिकीय आदि का भरपूर योगदान रहता है। पेयजल की सहज उपलब्धता हेतु अद्योलिखित उपाय आवश्यक हैं–

- जलागम क्षेत्र में त्वरित गति से भू–क्षरण की रोकथाम।
- विश्वसनीय एवं स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति हेतु जल स्रोतों का रखरखाव।
- बाढ़ व सूखे के नियन्त्रण हेतु उपाय सुनिश्चित करना।
- फसल, चारा, ईधन, फल आदि की लगातार आपूर्ति बनाये रखना।
- विशेष समस्याओं जैसे भूस्खलन, खनिज क्षेत्र, नदी, अपरदन आदि की रोकथाम रखना।।

आगरा जनपद में पेय–जलापूर्ति के आधार पर सम्पूर्ण जनपद में ग्रामों की संख्या 929 है। जहाँ कुल लाभान्वित जनसंख्या 4418797 व्यक्ति है और हैण्डपम्प इण्डिया मार्का के अनुसार लगभग सभी ग्रामों में भी 750 इण्डिया मार्ग हैण्डपम्प है जोकि सभी ग्रामों की संख्या के अनुसार पर्याप्त है। विकासखण्डवार देखने पूर्णतः आच्छादित ग्रामों की संख्या जनपद में सबसे अधिक विकासखण्ड फतेहाबाद में 96 ग्राम है एवं सबसे कम विकासखण्ड बिचपुरी में मात्र 33 ग्राम है। इससे जनपद में लाभान्वित जनसंख्या बरौली अहीर विकासखण्ड में सबसे अधिक 239654 व्यक्ति है और सबसे कम बिचपुरी विकासखण्ड में 107843 व्यक्ति है।

विकासखण्डों के अनुसार देखा जाये तो पेयजल की सर्वाधिक आपूर्ति बाह विकासखण्ड में 78365 किलोमीटर प्रतिदिन है। जबकि न्यूनतम जलापूर्ति जगनेर विकासखण्ड में 17494 किलोलीटर प्रतिदिन है। सभी 15 विकासखण्डों को जलापूर्ति की मात्रा के आधार पर 5 श्रेणियां में विभक्त करके अध्ययन किया गया है। अतिउच्च जलापूर्ति (60,000 किलोमीटर से अधिक) पाने वाले विकासखण्डों की संख्या 3 है जो क्रमशः बाह, खैरागढ़ व फतेहपुर सीकरी है। उच्च जलापूर्ति वाले विकासखण्डों की संख्या 4 है जो 50000 से 60000 किलोलीटर पेयजल प्रतिदिन प्राप्त करते है। इन विकासखण्डों के नाम एत्मादपुर, अछनेरा, शमसाबाद एवं जैतपुर है। मध्यम जलापूर्ति क्षेत्र के अधीन 4 विकाखण्ड क्रमशः खन्दौली, बिचपुरी, सैंया एवं पिनहट है। जो प्रतिदिन 40000 से 50000 किलोलीटर पेयजल प्राप्त करते है। न्यून पेयजलापूर्ति आपूर्ति प्राप्त करने वाले विकासखण्डों की संख्या मात्र 2 है, जो बरौली–अहीर एवं फतेहाबाद है। **(सारणी क्रमांक–1 देखिये)**

घरेलू जल का उपयोग –

सम्पूर्ण आगरा जनपद में घरेलू जल उपयोग में 1069156 किलोलीटर जल का उपयोग किया जा रहा है। विकासखण्डवार देखा जाए तो सर्वाधिक जल उपयोग स्नान करने में एवं सबसे कम पेयजल में उपयोग हो रहा है। जनपद में घरेलू जल का उपयोग विकासखण्डवार देखा जाए तो सर्वाधिक विकासखण्ड बाह में 78365 कि0लीटर एवं सबसे कम विकासखण्ड जगनेर में 17494 किलोलीटर जल का उपयोग किया जा रहा है। सम्पूर्ण आगरा जनपद में पेयजल के रूप में कुल जल का दैनिक उपयोग 3194 किलोलीटर है। जिसमें सर्वाधिक

सारणी क्रमांक–1
आगरा जनपद : पेयजल आपूर्ति

क्रम संख्या	विकासखण्ड का नाम	पूर्णतः आच्छादित ग्राम	कुल ग्रामीण जनसंख्या	हैण्डपम्प व अन्य स्रोत	जलापूर्ति किली0 / प्रतिदिन
1.	एत्मादपुर	62	160900	56	59158
2.	खन्दौली	48	176019	42	49473
3.	बिचपुरी	33	107843	27	42957
4.	बरौली अहीर	69	239659	62	30736
5.	अकोला	40	133509	39	26171
6.	अछनेरा	64	179687	55	51831
7.	फतेहपुर सीकरी	79	163448	69	77361
8.	जगनेर	52	112360	44	17494
9.	खैरागढ़	48	157936	45	71595
10.	सैंया	54	163468	42	49875
11.	शमसाबाद	70	204121	57	51883
12.	फतेहाबाद	96	200049	61	35836
13.	पिनहट	53	126168	26	43779
14.	बाह	82	147452	74	78365
15.	जैतपुर कलां	79	121983	51	56567
	योग ग्रामीण	**929**	**2394602**	**750**	**743081**
	योग नगरीय	—	**2024195**	.	**336075**
	आगरा जनपद	**929**	**4418797**	**750**	**1069156**

स्रोत : डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैण्डबुक, आगरा पार्ट बी, सीरीज 10, 2011

विकासखण्ड बाह में 78365 किलोलीटर और सबसे कम विकासखण्ड जगनेर में 17494 किलोलीटर जल का उपयोग किया जाता है। सम्पूर्ण आगरा जनपद में खाना बनाने में कुल जल का उपयोग 62 प्रतिशत है जिसमें सर्वाधिक विकासखण्ड विचपुरी में 1225 किलोलीटर और सबसे कम विकासखण्ड जगनेर में 857 किलोलीटर जल का प्रयोग किया जाता है। बर्तन साफ करने में कुल जल का उपयोग 21 प्रतिशत के लगभग है जिसमें सर्वाधिक विकासखण्ड बरौली में 3702 किलोलीटर एवं सबसे कम विकासखण्ड अछनेरा 775 किलोलीटर जल का उपयोग किया जाता है।

पेयजल की उपलब्धता पर वनस्पति का प्रभाव–

पेयजल ही नहीं अपितु जल की उपलब्धता पर वनस्पतियों का सर्वाधिक एवं सीधा प्रभाव पड़ता है। सघन वानस्पतिक क्षेत्रों में जलस्रोतों की बहुलता एवं जलापूर्ति की सदैव अविरलता विद्यमान रहती है। इस तथ्य की पुष्टि समस्त विश्व के वानस्पतिक आवरण की सघनता वाले क्षेत्रों से होती है। वनस्पतियॉ जल का संरक्षण व सम्बर्द्धन करती रहती है। अध्ययन क्षेत्र आगरा जनपद में प्राकृतिक वनस्पति का आवरण 46786 हैक्टेयर भूमि पर है जो कि सम्पूर्ण जनपदीय क्षेत्रफल का मात्र 11.74 प्रतिशत ही है। आदर्शन वनस्पति आवरण का प्रतिशत लगभग 33 प्रतिशत होना चाहिए। यही कारण है कि आगरा जनपद पेयजल की समस्या से सर्वाधिक ग्रस्त जनपदों की श्रेणी में है।

पानी अमृत कहा जाता है परन्तु इस अमृत को प्लास्टिक विषैला बना रहा है। प्रति लीटर पानी में औसतन 325 प्लास्टिक के सूक्ष्म कण पाए गये हैं। प्लास्टिक के इन

सूक्ष्मकणों को पॉलीप्रो – पायलिन कहा जाता है। इसी से बोतलों के ढक्कन बनते हैं जो बोतलबन्द पानी में मिलते रहते हैं। एक अध्ययन के आधार पर 20000 बोतलबन्द पानी की बोतलें प्रति सेकण्ड बिकती हैं। इनमें से 50 प्रतिशत रीसायकल करने के लिए पुनः एकत्र कर ली जाती हैं। इनके 7 प्रतिशत से पुनः नई बोतलें बनाई जाती हैं। वर्ष 2017 में 485 अरब पानी की बोतलों की कुल बिक्री हुई थी। पेयपदार्थों की बोतलों की संख्या 116 अरब के लगभग थी। विगत 5 वर्षों में हमारे देश में प्रदूषित नदियों की संख्या दोगुने से अधिक हो गई है। हमारे देश में सकल नदी क्षेत्र 1730 हजारवर्ग किलोमीटर है जिसमें से 12363 किलोमीटर क्षेत्र प्रदूषित है। अध्ययन क्षेत्र आगरा जनपद में नदियों की कुल लम्बाई 591.45 किलोमीटर है जिसमें किलोमीटर नदी क्षेत्र प्रदूषित है। जनपद की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नदी यमुना सबसे अधिक प्रदूषित है। नदियों में स्वतः शोधन क्षमता विद्यमान रहती है। नदियाँ स्वाभाविक रुप में अविरल व निर्मल रूप में प्रवाहित होती हैं।

वर्ष 1990 से 2020 के मध्य में फॉरेस्ट रिसोर्सेज आंकलन के अध्ययन के अनुसार, विश्व में वन 31.6 प्रतिशत से घटकर 30 प्रतिशत पर पहुँच गये हैं। हां, इसके बाद वनों में बढ़ोतरी हुई है पर यह समान रूप से नहीं रही है। निश्चित रूप से कुछ क्षेत्रों जैसे उत्तरी अमेरिका और यूरोप में वनों का घनत्व 3 प्रतिशत से बढ़कर 31.5 प्रतिशत पहुंचा। इसी तरह दक्षिण–पूर्व एशिया में बढ़ोतरी 28.5 से 29.6 प्रतिशत है। खासतौर से चीन में बेहतर परिणाम मिले हैं। वहीं दूसरी ओर, सब सहारा अफ्रीका में वनों में बड़ी कटौती हुई। यहाँ वन 30.6 प्रतिशत से घटकर 27 प्रतिशत पर पहुँच गए। इसी तरह लेटिन अमेरिका में यह 51.3 प्रतिशत से घटकर 48.4 प्रतिशत पहुँच गए। उत्तर–पश्चिमी अफ्रीका में जंगलों की दुनिया 40 प्रतिशत से घटकर 38 प्रतिशत और न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया में यह 17.4 से घटकर 17 प्रतिशत रह गई।

एक और अध्ययन में सामने आया कि विश्व में तीन चौथाई भू–भाग में बेहतर पानी का कारण वहाँ के बेहतर वन रहे हैं। दुनिया में 230 बड़े जलागमों में 40 प्रतिशत जलागमों में 50 प्रतिशत तक वनों की क्षति हुई है और यदि ऐसा ही होता रहा तो आने वाले समय में जल संकट का घातक सामना करना पड़ेगा। आज दुनिया का सबसे बड़ा वन्य क्षेत्र ब्राजील के अमेजन के वनों को माना जाता है। यह वन आग के कारण बड़े संकट में पहुँच चुके हैं। अनुमान लगाया जा रहा है कि गत समय में वनाग्नि से इस बड़े और एकमात्र वन्य क्षेत्र को भारी नुकसान झेलना पड़ सकता है। यह विदित है कि यह वन्य क्षेत्र 'विश्व के फेफड़े' कहे जाते हैं और विश्व की वायु का 20 प्रतिशत भाग इन्हीं से आता है। यह बन इतनी ही मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड भी सोखते हैं। इसके बावजूद एक कटु सत्य भी है कि इस महत्वपूर्ण वन का प्रतिदिन एक फुटबॉल मैदान के बराबर का क्षेत्र विकास के नाम पर बलि चढ़ा दिया जाता है। वैश्विक स्तर पर हम प्रतिवर्ष 1 लाख 50 हजार वर्ग किलोमीटर वनों को समाप्त कर देते हैं। अगर स्थितियाँ ऐसी ही रहीं तो वापसी के रास्ते बन्द हो जाएंगे। हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि ये वन ही हैं जो बढ़ते जलवायु परिवर्तन को हमारे हित में साध सकते हैं।

पेयजलापूर्ति पर जीवजन्तुओं का प्रभाव –

जल हर पल पृथ्वी के निवासियों जीवों, जंतुओं, जड़ चेतन तथा प्राणियों के लिये अनिवार्य है। जल एवं जीवजंतुओं का आपसी सहचर्य मानव विकास के लिये परमावश्यक है। आगरा जनपद में सात नदियों का प्रवाहक्षेत्र, हजारों तालाब व वेटलैण्ड्स पाये जाते है। पर्यावरणयीय दुष्प्रभावों के कारण केवल यमुना व चम्बल नदियों में ही वर्ष पर्यनत जल प्रवाहित रहता है। जनपद की कीठम झील, यमुना व चम्बल के खादर जनपद की समृद्ध जैवविविधता के प्रमाण है। आगरा जनपद में जीवजंतुओं की लगभग 500 प्रजातियॉ पायी जाती है। जोधपुर झील व कीठम झील आगरा जनपद की जैवविविधता के बड़े केन्द्र है। बहुत बड़ी संख्या में प्रतिवर्ष प्रवासी पक्षी इनमें आश्रय लेते है। आगरा महानगर के पालीवाल पार्क में जो कि नगर के मध्य में स्थित है में प्राकृतिक वनस्पति तथा विविधि प्रकार के जीवजंतु निवास करते है। इस पार्क में नेवलों का प्रजनन केन्द्र है। महानगर के मध्यवर्ती भूभाग में अवस्थित इस पार्क को वायोडावर्सिटी पार्क के रूप मे विकसित किया जा रहा है। उक्त विशेषताओं के कारण ही इसे 'महानगर की एअर फिल्टर' कहा जाता है।

जलीय जीवों के लिए जीवनदायिनी बनी चंबल का सेंक्चुअरी क्षेत्र में इन दिनों गुलजार है। कई वर्ष बाद इस बार यहाँ दुर्लभ प्रजाति के कछुओं के अलावा घड़ियाल और मगरमच्छ की रिकॉर्ड है हैचिंग (अण्डों से निकलने की प्रक्रिया) हुई है। अकेले चम्बल सेंक्चुरी के इटावा रेंज में 4141 और बाह रेंज में 1202 शिशु घड़ियाल

नदी में उतरने को तैयार हैं। फॉरेस्ट गार्ड इनकी सुरक्षा कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त जेम कैमरों से निगरानी की जा रही है, ताकि जंगली सूअर, आवारा कुत्ते, बाज, चील इन्हें हानि न पहुँचा सकें। दुनिया भर में विलुप्त प्रायः घड़ियालों का चंबल नदी में संरक्षण हो रहा है। पहले घड़ियालों के अण्डों को हैचिंग के लिए कुकरैल प्रजनन केंद्र लखनऊ ले जाया जाता था। अब चम्बल नदी में प्राकृतिक हैचिंग होती है। इटावा रेंज के खेड़ा अजब सिंह, कसौआ और बाह रेंज के मऊ, कैंजरा, कछियारा, नंदगवां, महुआ शाला में नदी के टापुओं पर इस बार रिकॉर्ड नेस्टिंग हुई है। डीएफओ के मुताबिक हैचिंग के दौरान निगरानी के लिए स्पेशल टीम बनाई गई थी।

घड़ियाल के बच्चे 50 से 60 दिनों तक अण्डे में रहते हैं। जून के प्रथम सप्ताह में ये बाहर निकलना शुरू कर देते हैं और हैचिंग पीरियड लगभग एक माह तक चलता है। निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि जल का जीव जन्तुओं से अन्योन्याश्रित सहसम्बन्ध है। जल की अनुपस्थिति या सीमित मात्रा तथा प्रदूषित जलापूर्ति या उपलब्धता की प्राणिवर्ग पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। परिणाम यह होता है कि मानव की नही अपितु सभी वन्य प्राणियों का स्वास्थ खराब हो जाता है। अन्ततोगत्वा वे मृत्यु को प्राप्त होने लगते है।

पेयजल की उपलब्धता पर मानवीय प्रभाव –

भोजन मानव की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है तथा मानव भोजन का अधिकांश भाग विभिन्न अन्नों से प्राप्त करता है, जो कृषि द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। भारत वर्ष में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण सन्तुलित भूमि उपयोग नियोजन का अत्यधिक महत्व है। अतः कृषि मानव जीवन का अभिन्न एवं अद्वितीय अंग है, इसी कारण संसार में कृषि कार्य प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। प्राचीन काल में भारत वर्ष में अपनायी जाने वाली कृषि एक सफल एवं सन्तुलित क्रिया थी। वेदों में मिट्टी के विभिन्न प्रकारों, कृषि विधियों, तथा कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न कृषि यन्त्रों का विवरण उपलब्ध है। ईसा से 3000 वर्ष पूर्व भारत के उत्तरी–पश्चिमी भाग में गेहूँ और जौ की खेती का उल्लेख मिलता है। इस सफल कृषि के आधार पर ही भारत में हड़प्पा संस्कृति का विकास हुआ। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि भारत वर्ष कृषि कार्य में प्राचीन काल से ही अग्रणी रहा है।

किसी देश के अर्थतन्त्र को सुदृढ़ बनाने में भूमि एक महत्वपूर्ण संसाधन है। भूमि की कोई एक इकाई एक दूसरे से पूर्णतः मेल नहीं खाती किन्तु भूमि के भौतिक गुण एवं आर्थिक सामाजिक संरचना अभिन्न होती है। भूमि में निहित ये गुण भूमि पर अपनी स्पष्ट छाप छोड़ते हैं। मानव की भैतिक आवश्यकतायें भूमि से प्राप्त होती हैं। अतः भूमि के गुणों पर आधारित वर्गीकरण का अध्ययन आवश्यक है। भूमि संसाधनों ने मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कृषि भूमि संसाधनों पर विश्व की अधिकतम जनसंख्या आश्रित है। भूमि पर अनवरत जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण मृदा प्रदूषित होती है, साथ ही वायु व जल प्रदूषित होकर समस्त पर्यावरण प्रदूषण से भर जाता है।

आगरा जनपद में निवास करने वाली समस्त जनसंख्या का दायित्व है कि उनमें सुधार करें। सभी जीवो के प्रति करुणा, सहानुभूति और दया का भाव होना चाहिए। विगत 50 वर्षों में हमारे देश में प्रदूषित नदियों की संख्या दोगुनी से अधिक हो गई है। अध्ययन क्षेत्र आगरा जनपद में नदियों की कुल लम्बाई 591.45 किलोमीटर है जिसमें किलोमीटर नदी क्षेत्र प्रदूषित है। जनपद की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नदी यमुना सबसे अधिक प्रदूषित है। नदियों में स्वतः शोधन क्षमता विद्यमान रहती है। नदियां स्वाभाविक रूप में अविरल व निर्मल रूप में प्रवाहित होती हैं। मार्कंडेय पुराण में यमुना नदी का प्रवाह कलिन्द देश में बताया गया है। अतः यमुना नदी का एक नाम कालिंदी भी है।

यमुना नदी सतित वाहिनी है जो प्रदेश के अधिकांश भाग को पीने का पानी उपलब्ध कराती है। लोग प्रदूषित पानी पीने को विवश है जो पानी पीने को मिल भी रहा है उसमें आरसैनिक की मात्रा निर्धारित मानकों से कहीं अधिक है। इससे गंभीर जानलेवा बीमारियों का खतरा बढ़ता जा रहा है। अध्ययन क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या स्थानीय निकायों द्वारा पीने के साफ पानी की समुचित मात्रा में आपूर्ति नहीं किए जाने के कारण भूजल पर ही आश्रित हैं वह जैसे तैसे हैंडपंप व सबमर्सिबल पंपों के पानी से अपनी आवश्यकताएं पूरी कर रही है। परंतु पानी में आर्सेनिक की मात्रा होने के कारण त्वचा और मूत्राशय कैंसर के रोग सम्बन्धी बीमारियों की चपेट में आकर लोग मौत के मुंह में जा रहे है।

केन्द्रीय जल संसाधन मंत्रालय की रिपोर्ट के

अनुसार क्षेत्र के प्रदूषित पानी पीने को विवश है। अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या का 19 प्रतिशत भाग खतरनाक स्तर तक आर्सेनिक की उपस्थित वाला पानी पी रहा है। घटते भूगर्भीय जल के चलते खेती में उपयोग आ रहा रसायन और कारखानों से निकला रसायन युक्त अवशेष आर्सेनिक का प्रमुख कारण है। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान कहता हैं कि प्रदूषकों की छोटी सी मात्रा कई गुना बढ़ जाती है। अध्ययन क्षेत्र में पानी की मात्रा का दावा करने वाले वैज्ञानिक जल को मानव जाति के लिए प्रदान किये गये अनमोल उपहारों में से एक है। ऊर्जा का स्रोत जल है। हमारे दैनिक जीवन के लगभग सभी कामों में उपयोग की सभी चीजों में पानी समाया रहता है। फिर भी हम उसे उतना महत्व नहीं देते जितना वह अच्छा एवं महत्वपूर्ण है। जल जीवनदायी है परन्तु उसकी उपलब्धता घटती जा रही है। विशेषकर पीने योग्य मीठे जल की मात्रा बहुत कम हो गई है। पृथ्वी पर जल की जितनी भी मात्रा है उसका 1 प्रतिशत ही हमारे उपयोग लायक है फिर भी लोग जल का दुरुपयोग कर रहे हैं। इस धरती पर सभी जीव जंतुओं एवं पेड़ पौधों को जीवित रहने के लिए जल की आवश्यकता होती है पीने के अतिरिक्त जल का उपयोग हमारे शरीर के सभी अंगों के लिए अति आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Devniyogi H. S. (2000) The Physiography of the lower Chambal Valley : A applied Geomorphology, Concept Publication Co. New Delhi, Page- 241-44.
2. रामदास और मलिक, पी. (2013) उत्तर प्रदेश के भूगर्भिक जल का भौगोलिक अध्ययन, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 28–57।
3. सिंह, ऊषा (1986) लखनऊ जनपद का भूगर्भ जल : एक अध्ययन, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर, Vol,. I, Pt. 2, पृष्ठ – 118–129।
4. दाभड़कर, के. (1994) विलासपुर जिले में जल संभाव्यता एवं विकास प्रदेश, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर Vol. 30, No. 2 Dec. पृष्ठ 109–116।
5. Narain, P., (1985) National Seminar on Soil Conservation and Watershed Management, Indian Assoc. of Soil and Water Conservationists. Dehradun. Page-180.
6. ऋग्वेद, नई दिल्ली, दशम मण्डल, सूक्त 43, श्लोक – 3।
7. अथर्ववेद, नई दिल्ली, 19वाँ काण्ड, प्रथम अनुवाक, सूक्त 2, श्लोक 1।
8. श्री विष्णु पुराण, गोरखपुर, 1986, द्वितीय अंश, अध्याय–1, श्लोक – 2।
9. तदैव, श्लोक – 21।
10. तदैव, श्लोक – 56।
11. मार्कण्डेयपुराणम्, मेरठ, 1983, अध्याय–75, श्लोक – 30।
12. Ray, P. Singh, S.B. & Sehga, K.L (1965) A Study of Some aspects on Ecology of the River Ganga and Yamuna at Allahabad (U.P.) in 1959-60, Proc. Nat. Acad, Sci India, 36 b (3) 23-272.
13. Kulsherestha, K.P. (2016) Hot Winds of Northern India, NGJI, Vol. XI, December 2016, Page- 269-271.
14. Joshi, Y.G. (1972) Varsha ki Parivartansheelata, Narmada Basin Ka Bhoogol, Page- 39-48.
15. Blandford, H.F. (1888) Rainfall of India, Mem. IMD, Volume - III, Page- 130.
16. Joshi, Y.G. (1972) Varsha ki Parivartansheelata, Narmada Basin Ka Bhoogol, Page- 39-48.
17. Blandford, H.F. (1888) Rainfall of India, Mem. IMD, Volume - III, Page- 130.
18. Singh, R.B. (1976) Ground water Hydrology of the Jaunpur district (U.P.) unpublished thesis, B.H.U. Varanasi, Page- 167.

ISSN : 2394-4366

Received: 24 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

गुरू गोरखनाथ और महर्षि पतंजलि के अनुसार योग का स्वरूप : एक तुलनात्मक अध्ययन

– मृत्युंजय यादव
यू. जी. सी. नेट
एम. एस–सी. योगा साइंस,
पतंजलि विश्वविद्यालय,
हरिद्वार – 249405 (उत्तराखण्ड)

ई–मेलः
mjyadav97@gmail.com

सारांश

योग भारतीय संस्कृति का अत्यन्त गहन और बहुआयामी अंग है। यह केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि मन, शरीर और आत्मा के सम्पूर्ण सामंजस्य का विज्ञान है। योग का उद्देश्य न केवल स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन है, बल्कि यह व्यक्ति को आत्मिक चेतना, नैतिक अनुशासन और जीवन के उच्चतर मूल्य की ओर भी अग्रसर करता है। महर्षि पतंजलि और गुरु गोरखनाथ के योगदान ने योग परंपरा को विशेष महत्व दिया है। पतंजलि ने योग को राजयोग और मानसिक अनुशासन के माध्यम से आन्तरिक शुद्धि और समाधि का मार्ग बताया, जब कि गोरखनाथ ने योग को हठयोग और प्राण साधना के माध्यम से शरीर, प्राण और मन के संतुलन की व्यावहारिक साधना के रूप में प्रस्तुत किया। यह शोध–पत्र उनके योगदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन करता है। इसमें यह समझने का प्रयास किया गया है कि आधुनिक मानव जीवन में योग का वास्तविक स्वरूप क्या होना चाहिए और दोनों महायोगियों के दृष्टिकोण किस प्रकार पूरक हैं।

मुख्य शब्द – योग, पतंजलि, गोरखनाथ, आष्टांग योग, हठयोग, प्राणायाम, ध्यान, मानसिक संतुलन, आत्म–साक्षात्कार, आध्यात्मिकता, शरीर–प्राण संतुलन।

प्रस्तावना –

भारतीय संस्कृति में योग का इतिहास अत्यन्त समृद्ध, गहन और बहुआयामी रहा है। योग केवल एक साधना पद्धति नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक समग्र दार्शनिक दृष्टि है। वैदिक परम्परा से लेकर उपनिषदों, गीता, पुराणों और तांत्रिक ग्रंथों तक योग की अवधारणा निरन्तर विकसित होती रही है। वेदों और उपनिषदों में योग को आत्म–ज्ञान, मानसिक अनुशासन तथा आंतरिक संतुलन प्राप्त करने का श्रेष्ठ मार्ग बताया गया है। 'युज' धातु से उत्पन्न 'योग' शब्द का अर्थ है जोड़ना या मिलाना, अर्थात् व्यक्तिगत आत्मा का सार्वभौमिक चेतना से मिलन। इस मिलन की प्रक्रिया ही मानव जीवन को पूर्णता और परम संतोष की दिशा में अग्रसर करती है।प्राचीन भारत में योग का उद्देश्य केवल शारीरिक स्वास्थ्य, व्यायाम या रोगमुक्ति तक सीमित नहीं था। इसका लक्ष्य आत्म–साक्षात्कार, नैतिक आचरण, मानसिक शांति, और आध्यात्मिक ऊर्ध्वगमन था। योग के माध्यम से व्यक्ति न केवल शरीर और मन को अनुशासित करता है, बल्कि अपने भीतर स्थित दिव्यता की पहचान भी करता है। इसी कारण योग भारतीय दर्शन, संस्कृति, धर्म और साहित्य में एक

केन्द्रीय स्थान रखता है।

उपनिषदों में योग को ध्यान और समाधि के रूप में वर्णित किया गया है, जहाँ आत्मा और ब्रह्म का अभेद भाव प्रकट होता है। महर्षि पतंजलि और गुरु गोरखनाथ जैसे महान योगाचार्यों ने योग के स्वरूप को व्यवस्थित और प्रयोगात्मक रूप दिया। महर्षि पतंजलि ने अपने 'योगसूत्र' के माध्यम से योग को एक वैज्ञानिक और दार्शनिक पद्धति के रूप में स्थापित किया। उन्होंने योग को अष्टांग मार्ग में विभाजित किया। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यह सम्पूर्ण मार्ग व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा को शुद्ध कर परमशांति की ओर ले जाता है। पतंजलि का योग मानसिक अनुशासन और चित्तवृत्ति निरोध पर केन्द्रित है, जहाँ मन की एकाग्रता और शुद्धता के माध्यम से आत्मज्ञान प्राप्त किया जाता है।

दूसरी ओर, गुरु गोरखनाथ का योगदर्शन हठयोग और साधना की व्यावहारिक विधियों पर आधारित है। गोरखनाथ ने योग को केवल ध्यान या मानसिक अभ्यास तक सीमित नहीं रखा, बल्कि शरीर और प्राण की साधना को समान महत्व दिया। उन्होंने प्राणायाम, मुद्रा, बंध, नेति, धौति, नाड़ीशोधन आदि प्रक्रियाओं के माध्यम से शरीर और मन के परिशोधन का मार्ग बताया। उनके अनुसार जब शरीर और प्राण संतुलित होते हैं, तभी साधक ध्यान और समाधि की उच्च अवस्था में प्रवेश कर सकता है। गोरखनाथ का योग धरातल पर उतरने वाला योग है, जो साधना को जीवन के व्यवहार से जोड़ता है।इन दोनों महान परंपराओं पतंजलि के दार्शनिक योग और गोरखनाथ के व्यावहारिक हठयोग का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि योग का वास्तविक स्वरूप केवल शारीरिक व्यायाम या ध्यानाभ्यास नहीं है। योग मन, प्राण और आत्मा के सामंजस्य की वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपने भीतर के विकारों, अशांति और अहंकार को त्यागकर शांति, संतुलन और आत्मबोध प्राप्त करता है।

आज के युग में जब मानव जीवन तनाव, प्रतिस्पर्धा, भौतिकता और मानसिक अशांति से ग्रस्त है, तब पतंजलि और गोरखनाथ दोनों के योगदर्शन और भी अधिक प्रासंगिक हो उठे हैं। ये हमें न केवल शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रखने की दिशा में प्रेरित करते हैं, बल्कि मन की स्थिरता, विचारों की शुद्धता और जीवन के उच्चतम उद्देश्य की प्राप्ति का मार्ग भी दिखाते हैं। योग की यही समग्र दृष्टि भारतीय संस्कृति की आत्मा है, जो आज भी विश्व को संतुलन, शांति और मानवता का संदेश देती है।

महर्षि पतंजलि को योग का सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप में सूत्रबद्ध करने वाला महान दार्शनिक माना जाता है। उन्होंने योग को केवल साधना या तपस्या के रूप में नहीं, बल्कि मानव जीवन के समग्र उत्थान का वैज्ञानिक मार्ग बताया। पतंजलि का योगसूत्र योग के शास्त्रीय स्वरूप का आधारग्रंथ है, जिसमें योग के सिद्धान्त, साधना और लक्ष्य को अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु गूढ़ सूत्रों में व्यक्त किया गया है। उनके द्वारा दिया गया प्रसिद्ध सूत्र "योगश्चित्तवृत्ति–निरोधः" (योगसूत्र 1/2) योग की परिभाषा का सार है। इसका अर्थ है कि योग वह अवस्था है जिसमें चित्त की वृत्तियाँ पूर्णतः शान्त हो जाती हैं। जब मन के विकार, विचार और चंचलता समाप्त हो जाती है, तब साधक आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव करता है।

महर्षि पतंजलि ने योग को अष्टांग योग के माध्यम से विस्तारपूर्वक प्रतिपादित किया, जो मानव जीवन के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास का क्रमिक मार्ग है। अष्टांग योग के आठ अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के पूर्ण स्वरूप को निर्मित करते हैं। इनमें यम और नियम व्यक्ति के नैतिक, सामाजिक और आचारिक जीवन के आधार हैं, जो साधक को आत्मसंयम, सत्यनिष्ठा, अहिंसा और संतुलन की ओर ले जाते हैं। आसन और प्राणायाम शरीर और प्राण को नियंत्रित करने की प्रक्रियाएँ हैं, जिनके माध्यम से साधक शारीरिक सुदृढ़ता, स्वास्थ्य और ऊर्जा का संतुलन बनाए रखता है। इसके बाद प्रत्याहार, धारणा और ध्यान जैसे अंग मन के अनुशासन, एकाग्रता और आंतरिक शांति की दिशा में अग्रसर करते हैं। समाधि इन सभी का चरम बिंदु है, जहाँ साधक आत्मा और परमात्मा के अभिन्न स्वरूप का अनुभव करता है।

पतंजलि का योग दर्शन केवल शरीर या मन के अभ्यास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो जीवन के गहन सत्य की खोज में सहायक है। उनके अनुसार– मानव जीवन की पीड़ा और अशांति का मूल कारण चित्त की अस्थिरता और अज्ञान है। जब चित्त स्थिर और निर्विकार हो जाता है, तभी व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप पुरुष का साक्षात्कार कर सकता है। यह पुरुष शुद्ध, नित्य और चेतन तत्व है, जबकि

प्रकृति परिवर्तनशील और अस्थायी है। योग साधना के माध्यम से साधक प्रकृति के बंधनों से मुक्त होकर पुरुष की चेतना में स्थित हो जाता है।

पतंजलि का योग दर्शन इस दृष्टि से अद्वितीय है कि यह आध्यात्मिकता को व्यवहारिक जीवन से जोड़ता है। यह केवल सन्यासियों या तपस्वियों के लिए नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए है जो मानसिक संतुलन, आत्मसंयम और आंतरिक शांति की खोज में है। योग की यह पद्धति व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासन, स्थिरता और सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करती है।आधुनिक जीवन की दृष्टि से पतंजलि का योग अत्यंत प्रासंगिक है। आज का मनुष्य तनाव, चिंता, अवसाद और भौतिक दौड़ में उलझा हुआ है। ऐसे समय में पतंजलि का योग मन को शांत, एकाग्र और संतुलित करने का व्यावहारिक मार्ग प्रदान करता है। ध्यान और प्राणायाम जैसी साधनाएँ न केवल मानसिक तनाव को कम करती हैं, बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य को भी सुदृढ़ बनाती हैं। पतंजलि का योग इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि जब व्यक्ति अपने मन और प्राण पर नियंत्रण प्राप्त करता है, तब वह जीवन के हर क्षेत्र में सफलता, शांति और संतोष का अनुभव करता है। इस प्रकार, पतंजलि का योग दर्शन आज भी मानवता के लिए उतना ही आवश्यक और उपयोगी है, जितना वह प्राचीन काल में था।

गुरू गोरखनाथ भारतीय योग परंपरा के महान योगी और नाथ–सिद्ध सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने योग को केवल आध्यात्मिक साधना का मार्ग न मानकर, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी एक व्यावहारिक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया। गोरखनाथ का योग दर्शन भारतीय हठयोग परम्परा का मूलाधार है, जिसमें शरीर, प्राण और मन के संतुलन के माध्यम से आत्म–साक्षात्कार का मार्ग बताया गया है। उनके योग का उद्देश्य केवल ध्यान या समाधि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह साधक के संपूर्ण जीवन को शुद्ध, संतुलित और ऊर्जावान बनाने का माध्यम है।

गोरखनाथ के अनुसार– मनुष्य के बंधन और मुक्ति का मूल कारण मन ही है। जैसा कि वे कहते हैं "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः", अर्थात मन ही मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण है। जब मन विषयों, वासनाओं और अहंकार में फँस जाता है, तब वह बंधन का कारण बनता है; परन्तु जब वही मन साधना, अनुशासन और ज्ञान के माध्यम से नियंत्रित हो जाता है, तब वही मुक्ति का साधन बनता है। इसलिए गोरखनाथ योग में मन के नियंत्रण और प्राण के सन्तुलन को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।गोरखनाथ का योग दर्शन हठयोग की परम्परा पर आधारित है। उन्होंने यह माना कि जब तक शरीर और प्राण नियंत्रित नहीं होंगे, तब तक मन को स्थिर करना असंभव है। उनके अनुसार शरीर योग का पहला उपकरण है, जिसे साधना द्वारा शुद्ध और समर्थ बनाया जाना आवश्यक है। हठयोग में आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, नेति, धौति आदि क्रियाओं के माध्यम से शरीर और प्राण का परिशोधन किया जाता है। इन क्रियाओं से न केवल शरीर रोगमुक्त और ऊर्जावान बनता है, बल्कि नाड़ियों का शुद्धिकरण और प्राण प्रवाह का संतुलन भी स्थापित होता है। जब शरीर और प्राण में संतुलन आता है, तब मन स्वतः ही स्थिर हो जाता है और ध्यान की अवस्था सहज रूप से प्राप्त होती है।

गुरु गोरखनाथ का योग केवल शारीरिक साधना नहीं है, बल्कि यह एक सम्पूर्ण जीवन–दर्शन है। उन्होंने योग को व्यवहार और आचरण से जोड़ा, जिससे यह सामान्य जीवन में भी सहज रूप से अपनाया जा सके। उनका योग दर्शन यह सिखाता है कि योगी केवल गुफा या एकान्त में रहकर ही नहीं, बल्कि समाज में रहकर भी आत्मिक साधना कर सकता है। गोरखनाथ ने योग को 'सहज साधना' का रूप दिया, जिसमें शरीर, प्राण और मन का संतुलन बनाते हुए साधक धीरे–धीरे समाधि की अवस्था में पहुँचता है। इस 'सहज समाधि' में योगी अपने अहंकार से मुक्त होकर परम चेतना में विलीन हो जाता है।

गोरखनाथ का योगदर्शन अत्यन्त व्यावहारिक और जीवनोपयोगी है। यह व्यक्ति को न केवल मानसिक शांति प्रदान करता है, बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य और प्राणिक ऊर्जा का संतुलन भी स्थापित करता है। उनके योग में अनुशासन, परिश्रम, संयम और जागरुकता का विशेष महत्व है। उन्होंने यह सिखाया कि सच्चा योगी वही है जो अपने भीतर की चेतना को जाग्रत कर संसार में रहते हुए भी अलिप्त, शान्त और समभाव में स्थित रहे।

आधुनिक जीवन में गोरखनाथ का योग दर्शन अत्यंत प्रासंगिक है। आज के युग में जहाँ मनुष्य भौतिकता, तनाव और अस्थिरता में उलझा हुआ है, वहाँ गोरखनाथ

का हठयोग शरीर, प्राण और मन तीनों स्तरों पर संतुलन स्थापित करने का मार्ग दिखाता है। प्राणायाम और ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने भीतर की शांति और शक्ति को पहचानता है। गोरखनाथ का योग इस बात का साक्षी है कि योग केवल साधना नहीं, बल्कि एक जीवन–शैली है, जो साधक को स्थिरता, आत्मविश्वास और आध्यात्मिक जागृति प्रदान करती है।

महर्षि पतंजलि और गुरु गोरखनाथ दोनों भारतीय योग परंपरा के महान आचार्य हैं, जिन्होंने योग के स्वरूप और उद्देश्य को अपने–अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया। यद्यपि दोनों का लक्ष्य आत्म–साक्षात्कार, मन की स्थिरता और जीवन की पूर्णता प्राप्त करना है, फिर भी उनके मार्ग और साधना–पद्धतियों में उल्लेखनीय भिन्नताएँ पाई जाती हैं। पतंजलि का योग दर्शन जहाँ मानसिक अनुशासन और ध्यान–साधना पर केन्द्रित है, वहीं गोरखनाथ का योग शारीरिक नियंत्रण, प्राण साधना और हठयोग पर आधारित है। इन दोनों दृष्टिकोणों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि योग का वास्तविक स्वरूप मन, शरीर और प्राण तीनों के संतुलन में निहित है।

महर्षि पतंजलि ने योग को राजयोग के रूप में प्रतिपादित किया। उनके अनुसार योग का मूल उद्देश्य चित्तवृत्तियों का निरोध है, जिससे साधक आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव कर सके। पतंजलि का योग एक अंतर्मुखी साधना है, जिसमें मन का अनुशासन, विचारों की एकाग्रता और ध्यान की गहराई के माध्यम से समाधि की प्राप्ति होती है। उनके अष्टांग योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के क्रमिक अभ्यास द्वारा साधक आत्म–नियंत्रण और मानसिक स्थिरता प्राप्त करता है। पतंजलि के अनुसार मन की चंचलता ही दुख और बंधन का कारण है, इसलिए योग का मूल उद्देश्य मन को स्थिर करना और आत्मा से उसका एकत्व स्थापित करना है।

दूसरी ओर, गुरु गोरखनाथ का योगदर्शन जीवन के व्यावहारिक और शारीरिक पक्ष पर अधिक केन्द्रित है। उन्होंने योग को हठयोग के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें शरीर, प्राण और मन का क्रमिक संतुलन आत्मसाक्षात्कार की दिशा में अग्रसर करता है। गोरखनाथ का मानना था कि जब तक शरीर और प्राण शुद्ध एवं नियंत्रित नहीं होंगे, तब तक मन को स्थिर करना असंभव है। इसलिए उन्होंने आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, नेति, धौति आदि साधनाओं के माध्यम से शरीर और प्राण की शुद्धि पर बल दिया। उनका योग दर्शन अत्यन्त व्यावहारिक, प्रयोगात्मक और जीवनोपयोगी है, जो व्यक्ति को केवल ध्यानमग्न नहीं, बल्कि कर्मशील और जागरूक बनाता है।पतंजलि का योग जहाँ मानसिक अनुशासन पर आधारित है, वहीं गोरखनाथ का योग शारीरिक और प्राणिक अनुशासन पर केन्द्रित है। एक ओर पतंजलि आत्मा के साथ मन के एकत्व की बात करते हैं, तो दूसरी ओर गोरखनाथ शरीर और प्राण के नियंत्रण द्वारा मन की स्थिरता का मार्ग बताते हैं। पतंजलि का योग ज्ञान और ध्यान की दिशा में अग्रसर करता है, जब कि गोरखनाथ का योग साधना और अनुभव पर बल देता है। दोनों ही दृष्टिकोण एक–दूसरे के पूरक हैं कृ पतंजलि का योग आन्तरिक शांति प्रदान करता है, और गोरखनाथ का योग बाह्य संतुलन और जीवन ऊर्जा का संचार करता है।आधुनिक संदर्भ में देखा जाए तो ये दोनों योगदर्शन आज के व्यस्त, तनावग्रस्त और असंतुलित जीवन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। पतंजलि का योग व्यक्ति को मानसिक शांति, आत्मनियंत्रण और एकाग्रता प्रदान करता है, जब कि गोरखनाथ का योग शरीर और प्राण की शक्ति को जागृत कर जीवन में स्थायित्व, स्वास्थ्य और संतुलन बनाए रखता है। दोनों ही दृष्टिकोणों का समन्वय व्यक्ति को सम्पूर्ण योग की दिशा में अग्रसर करता है, जहाँ मन, शरीर और प्राण तीनों का सामंजस्य स्थापित होता है।

इस प्रकार, पतंजलि और गोरखनाथ के योगदर्शन में दृष्टिकोण का अन्तर होते हुए भी लक्ष्य समान है आत्म–साक्षात्कार, शांति और जीवन की पूर्णता। एक बिना दूसरे के अपूर्ण है। केवल मानसिक ध्यान से योग पूर्ण नहीं हो सकता और केवल शारीरिक साधना से भी योग का चरम उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। योग की वास्तविकता तब सिद्ध होती है जब साधक मन, शरीर और प्राण के त्रिविध संतुलन को प्राप्त करता है। यही संतुलन योग की सम्पूर्णता और भारतीय योग परंपरा की मूल आत्मा है।

आधुनिक युग में जब जीवन की गति अत्यधिक तेज़ और प्रतिस्पर्धात्मक हो गई है, तब मानसिक तनाव, अवसाद, चिन्ता और शारीरिक अस्वस्थता सामान्य समस्याओं के रूप में उभर आई हैं। ऐसे समय में महर्षि पतंजलि और गुरु गोरखनाथ के योगदर्शन अत्यंत

प्रासंगिक और उपयोगी सिद्ध होते हैं। योग अब केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह मानसिक, शारीरिक और सामाजिक स्वास्थ्य का प्रभावी साधन बन चुका है।

पतंजलि का ध्यान और समाधि आधारित योग मानसिक स्थिरता, एकाग्रता और आंतरिक शांति प्राप्त करने का सर्वोत्तम माध्यम है। उनके योगसूत्रों में बताया गया है कि जब मन की चंचलता और विकार शांत हो जाते हैं, तब साधक आत्मिक आनंद का अनुभव करता है। यह प्रक्रिया आज के तनावपूर्ण वातावरण में मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। ध्यान और प्राणायाम जैसी विधियाँ व्यक्ति को चिंता, अवसाद और अनिद्रा जैसी समस्याओं से मुक्त करने में सहायक हैं।

वहीं, गुरु गोरखनाथ का हठयोग और प्राण साधना शारीरिक स्वास्थ्य और प्राणिक संतुलन स्थापित करने का मार्ग प्रदान करती है। उनके योग में शरीर और प्राण की शुद्धि को आधार बनाया गया है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध के अभ्यास से शरीर सशक्त, लचीला और ऊर्जावान बनता है। इन साधनाओं से न केवल रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, बल्कि शरीर और मन के बीच सामंजस्य भी स्थापित होता है।

आज के समय में योग का प्रयोग शिक्षा, चिकित्सा, उद्योग, और सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भी किया जा रहा है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में योग को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जा रहा है ताकि विद्यार्थियों में एकाग्रता और आत्मविश्वास का विकास हो। चिकित्सा विज्ञान में योग को एक सहायक उपचार पद्धति के रूप में स्वीकार किया गया है, जो अनेक मानसिक और शारीरिक रोगों के निवारण में सहायक है।

महर्षि पतंजलि और गुरु गोरखनाथ दोनों का योगदर्शन यह सिखाता है कि योग केवल शरीर या मन का अभ्यास नहीं, बल्कि जीवन की सम्पूर्ण गुणवत्ता को सुधारने और आत्मिक उत्कर्ष प्राप्त करने का मार्ग है। आधुनिक मनुष्य के लिए योग वह सेतु है, जो उसे भौतिक जीवन की व्यस्तता से निकालकर आंतरिक शांति, संतुलन और आत्मबोध की ओर ले जाता है। इस प्रकार, योग की प्रासंगिकता आज पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है क्योंकि यह न केवल स्वास्थ्य का साधन है, बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए संतुलन और सामंजस्य का संदेश भी है।

निष्कर्ष –

गुरू गोरखनाथ और महर्षि पतंजलि के योगदर्शन हमें यह स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि योग केवल शारीरिक अभ्यास या मानसिक ध्यान की प्रक्रिया नहीं है। यह मन, शरीर और आत्मा के संतुलन, चेतना की उच्चतम स्थिति और जीवन की गहन समझ का विज्ञान है।महर्षि पतंजलि ने योग को चित्तवृत्तियों के नियंत्रण और समाधि की प्राप्ति के रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार– योग का उद्देश्य केवल शारीरिक स्वास्थ्य या मानसिक संतुलन नहीं है, बल्कि आत्मा के वास्तविक स्वरूप का अनुभव है। पतंजलि का आष्टांग योग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि व्यक्ति के जीवन के हर पहलू में अनुशासन, नैतिकता और मानसिक स्थिरता स्थापित करता है।

वहीं, गुरु गोरखनाथ ने योग को हठयोग और प्राणिक साधना के माध्यम से व्यावहारिक रूप दिया। उनके अनुसार, शरीर और प्राण का संतुलन स्थापित किए बिना मन स्थिर नहीं हो सकता। गोरखनाथ का योग अधिक जीवनोपयोगी और व्यवहारिक है, जिसमें योगी को सहजे समाधि और मानसिक, शारीरिक और प्राणिक शक्ति की प्राप्ति होती है।

दोनों दृष्टिकोण मिलकर योग की पूर्णता और बहुआयामी स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। पतंजलि का योग आन्तरिक अनुशासन, मानसिक स्थिरता और आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाता है, जब कि गोरखनाथ का योग शारीरिक स्वास्थ्य, प्राणिक संतुलन और जीवनोपयोगी शक्ति प्रदान करता है। आधुनिक जीवन में मानसिक तनाव, अवसाद, अस्थिरता और जीवनशैली सम्बन्धी रोगों से निपटने के लिए इन दोनों दृष्टिकोणों का संयोजन अत्यंत आवश्यक है।

आधुनिक विज्ञान और चिकित्सा के अध्ययन यह प्रमाणित कर रहे हैं कि योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य और न्यूरो–साइकोलॉजिकल संतुलन के लिए अत्यंत प्रभावकारी साधन है। पतंजलि और गोरखनाथ के योगदर्शन आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण से भी पुष्टि करते हैं कि ध्यान, प्राणायाम और मानसिक अनुशासन से तनाव, उच्च रक्तचाप, अवसाद और चिंता जैसी समस्याओं में उल्लेखनीय सुधार होता है।इसके अतिरिक्त, योग के माध्यम से व्यक्ति सामाजिक और नैतिक

मूल्यों को भी आत्मसात करता है। पतंजलि का यम और नियम सामाजिक और नैतिक अनुशासन की शिक्षा देते हैं, जबकि गोरखनाथ के हठयोग और साधनात्मक दृष्टिकोण से व्यक्ति में सहनशीलता, संयम और जीवनोपयोगी ऊर्जा का विकास होता है।

इस प्रकार, योग का वास्तविक स्वरूप संतुलित, बहुआयामी और जीवनोपयोगी है। केवल मानसिक ध्यान या केवल शारीरिक साधना पर्याप्त नहीं है। योग तभी पूर्ण और सार्थक होगा जब मन, शरीर और प्राण के सभी आयाम संतुलित और एकीकृत हों।

अन्त में कहा जा सकता है कि "योग केवल शारीरिक अभ्यास नहीं है, न केवल मानसिक ध्यान है; यह आत्मा की यात्रा, चेतना का उत्कर्ष और जीवन की पूर्ण समझ है। पतंजलि ने इसे मानसिक अनुशासन और समाधि के माध्यम से सूत्रबद्ध किया, और गोरखनाथ ने इसे हठयोग, प्राण साधना और व्यावहारिक साधना के रूप में जीवित किया। आधुनिक जीवन में योग तभी सार्थक है जब ये दोनों दृष्टिकोण एकीकृत होकर व्यक्ति के जीवन में संतुलन, मानसिक शांति, शारीरिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करें।"योग की यह गहनता, बहुआयामी दृष्टि और जीवनोपयोगिता आज भी मानव जीवन के लिए अमूल्य मार्गदर्शक हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पतंजलि योगसूत्र।
2. गुरु गोरखनाथ सिद्ध सिद्धान्त पद्धति।
3. स्वामी विवेकानन्द राजयोग, रामकृष्ण मिशन, 1896।
5. देवनाथ, बालकृष्ण नाथ – परम्परा और योग साधना, योग प्रकाशन, 2016।
6. डॉ. भगवदाचार्य भारतीय दर्शन में योग परम्परा, वाराणसी विश्वविद्यालय, 2008।
7. राघवेन्द्र शर्मा – पतंजलि और गोरखनाथ का योगदर्शन : एक तुलनात्मक अध्ययन, 2019।
8. श्रीराम शर्मा आचार्य योग का विज्ञान और आधुनिक उपयोग, योग विमर्श, 2015।
10. राजेन्द्र प्रसाद – आधुनिक समय में योग की प्रासंगिकता, भारतीय योग जर्नल, 2020।
11. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती आसन, प्राणायाम और ध्यान, बिहार योग संस्थान, 1985।
12. कुमारी शशिकला योग और मानसिक स्वास्थ्य, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2018।
13. पंडित भीमराव शर्मा – नाभिकीय और प्राणिक ऊर्जा का योग में योगदान, भारतीय जर्नल ऑफ योग, 2021।
14. डॉ. लक्ष्मीनारायण – योग एवं तंत्र परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 2019।
15. डॉ. सविता मिश्रा – आधुनिक चिकित्सा और योग का समन्वय, आयुर्वेद और योग पत्रिका, 2022।

विशेष

प्रकाशन शोधकर्त्ताओं के लिए शोध प्रक्रिया का अन्तिम और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण होता है। शोध समाज की एक मूल्यवान उपलब्धि है, जिसके लिए इसे समाज के बीच आना ही चाहिए ताकि समस्त मानवता इसका लाभ उठा सके। वर्तमान में बेलगाम होती महंगाई, कम्प्यटूर टाइपिंग, कागज, मुद्रण सामग्री एवं प्रिंटिंग की दरों में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी शोधार्थियों केद्वारा प्रकाशित होने वाले शोध-पत्रों केअवसरों को सीमित एवं संकुचित करते हैं।

संगोष्ठियों में शोध प्रपत्र का वाचन शोधार्थियों एवं शोधविदों के लिए एक महत्त्वपूर्ण अवसर होता है। अपने गुणवत्तापरक शोध कार्य को इन संगोष्ठियों के माध्यम से जनमत के बीच लाने का माध्यम बनता है। ऐसे अवसरों का लाभ उठाना ही हम सभी के लिए हितकर है, हम सभी आयें और समाज में आगे बढ़कर अधिक से अधिक सहयोग देकर इसे सफल बनाने के कार्य में हाथ बंटायें।

- प्रबन्धक सम्पादक

ISSN : 2394-4366

Received: 26 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

आचार्य प्रभाचन्द्र विरचित न्यायकुमुदचन्द्र के सन्दर्भ में वेदाभिमत विधि–भावना और नियोगवाद का निराकरण

– राहुल जैन
शोधार्थी – जैन अध्ययन केन्द्र,
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय,
मुरादाबाद–244001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
rahul19jain93@gmail.com

शोध निर्देशक
– प्रो. दीनानाथ शर्मा
प्रोफेसर – जैन अध्ययन केन्द्र,
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय,
मुरादाबाद–244001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
dnsharma_60@gmail.com

सारांश

परस्पर में विरोध होने के कारण विधि, नियोग और भावना में से कोई भी वेदवाक्य का निर्दोष अर्थ नहीं माना जा सकता। वेद वाक्य परस्पर में विरुद्ध अर्थ का प्रतिपादन करते हैं अतः वेद को प्रमाणभूत भी नहीं माना जा सकता। विधि, भावना और नियोग में किसी भी दृष्टि से शब्द वाच्यत्व सिद्ध नहीं होता है अतः सामान्य विशेषात्मक अर्थ ही शब्द का वाच्य हो सकता है अन्य नहीं। जो मनुष्य मरणोपरान्त स्वर्ग को प्राप्त करना चाहता है उसे अग्निष्टोम यज्ञ करने की भावना रखनी चाहिए। जिस काल में यज्ञ करने का इच्छुक मनुष्य 'यजेत' इस क्रियापद को सुनता है उस काल में उसमें लिङ् लकार जन्य शाब्दीभावना का विकास होता है तत्पश्चात् उस पुरुष का यज्ञ करने के लिए जो व्यापार विशेष उत्पन्न होता है उसी को आर्थीभावना कहा जाता है। नियोगवादी नियोगवादी मीमांसक (प्रभाकर मिश्र के अनुयायी) "अग्निष्टोमेन यजेत" इस वाक्य का अर्थ नियोगपरक करते हैं।

भारतीय दर्शन का मुख्य तर्कात्मक और वैचारिक विस्तार का प्रमुख केन्द्र वेद हैं। जिनके माध्यम से ही सम्पूर्ण दार्शनिक मनीषा परिवर्धित और पुष्पित हुई है। वेद ही भारत के प्राचीनतम ग्रंथ हैं, जिन्हें सनातन संस्कृति (वैदिक संस्कृति) अपौरुषेय स्वीकार करती है। भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता वेदों से प्रारम्भ होकर संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक और उपनिषदों के माध्यम से न्याय, वैशेषिक, सांख्य–योग, मीमांसा तथा वेदांत दर्शन का मूलाधार बनती है।

वेद केवल धार्मिक ग्रंथ ही नहीं हैं अपितु ये सम्पूर्ण मानव जीवन के नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पक्षों का समग्र मार्गदर्शन करते हैं।

तथापि अनेक मौलिक व तथ्यात्मक कारणों से श्रमण संस्कृति में वेदों को प्रमाणरूप स्वीकार नहीं किया गया जिसका विशेष वर्णन जैन न्याय ग्रंथों में मिलता है। वेदवाक्यों के सम्बन्ध में मीमांसकों द्वारा मान्य विधि–भावना और नियोगवाद अपना विशेष महत्त्व रखता है जिसका निराकरण आ. प्रभाचन्द्र ने न्यायकुमुदचन्द्र ग्रंथ में किया है। जो इस प्रकार है

पूर्वपक्ष–

"वेदाभिमत मीमांसक" वेदों में मुख्यतः विधि और निषेधरूप दो प्रकार के कार्यों का विवेचन किया गया है। वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय विधि और निषेध साधन करना मात्र है।

जैसे– "अग्निष्टोमेन यजेत स्वर्गकामः" अर्थात् जिसको स्वर्ग प्राप्त

करने की इच्छा है वह मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ को सम्पादित करे। यह विधि वाक्य है। इसी प्रकार

"सुरां न पिबेत"

मदिरा को मत पिओ यह निषेध वाक्य का उदाहरण हुआ।

प्रथम वाक्य में जो "यजेत" क्रिया है इस विषय में मीमांसकों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। जिसको तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. विधिवादी।
2. भावनावादी एवं
3. नियोगवादी।

(1) विधिवादी –

विधिवादी वेदान्तियों के अनुसार "यजेत" इस क्रियापद का अर्थ विधि है। विधि का कार्य अप्रवृत्त अर्थ में प्रवर्तन कराने का है। अनुष्ठेय अर्थ में विधि ही पुरुषों की प्रवर्तक होती है। मीमांसा श्लोक वार्तिक में विधि का लक्षण वर्णित करते हुए कहा गया है कि

"विधेर्लक्षणमेतावत्प्रवृत्त प्रवर्तनम"

अर्थात् विधिवादी कहते हैं कि प्रवर्तक होने से शब्द ही विधि है तथा अन्वयव्यतिरेक से शब्द में प्रवर्तकत्व का ज्ञान होता है। यद्यपि यह सत्य ही है कि सामान्यतः शब्दों में प्रवर्तकत्व माना ही गया है तथापि लिङ्, लोट् और तव्यत् प्रत्ययान्त शब्दों में प्रवर्तकत्व मानना न्याय संगत है जैसा कि कहा गया है

"द्रष्टव्योऽयमात्मा श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"

अर्थात् इस आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यास करना चाहिए, इत्यादि अनेक वेदवाक्यों के माध्यम से विधिरूप ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है। इस कारण ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य यज्ञ आदि का विधान वेदविहित नहीं है इस प्रकार विधिवादियों का मत है।

भावनावादी भावनावादी भट्ट (पूर्वमीमांसा) कुमारिल भट्ट के शिष्य "अग्निष्टोमेन यजेत" इस वाक्य का अर्थ भावनापरक करते हैं। जैसा कि कहा गया है –

"भवितुर्भवनानुकूलो भावकव्यापार विशेषः भावना"

वाक्य का यह अर्थ है कि जो कार्य भविष्य में होने वाला है उसकी उत्पत्ति के अनुकूल भावना करने वाले में रहने वाला जो व्यापार है उसी का नाम भावना है। भावना के भी दो रूप होते हैं –

(1) शाब्दीभावना एवं
(2) आर्थीभावना

उपर्युक्त "यजेत" पद में जो लिङ् कारक का प्रयोग हुआ है उससे होने वाली भावना शाब्दीभावना है तथा शाब्दीभावना पूर्वक मनुष्य आदि में उत्पन्न भावना को आर्थीभावना कहा जाता है ऐसा इनका मन्तव्य है। इसी विषय में भट्टों का कहना यह है कि "यजेत" इस क्रियापद का अर्थ यज्ञ करना न होकर मात्र यज्ञ की भावना करना ही है। उदाहरणार्थ "मुझे अग्निष्टोम यज्ञ करना चाहिए" इस प्रकार का जो विचार है उसी का नाम भावना है।

सारांश यह हुआ कि जो मनुष्य मरणोपरान्त स्वर्ग को प्राप्त करना चाहता है उसे अग्निष्टोम यज्ञ करने की भावना रखनी चाहिए। जिस काल में यज्ञ करने का इच्छुक मनुष्य 'यजेत' इस क्रियापद को सुनता है उस काल में उसमें लिङ् लकार जन्य शाब्दीभावना का विकास होता है तत्पश्चात् उस पुरुष का यज्ञ करने के लिए जो व्यापार विशेष उत्पन्न होता है उसी को आर्थीभावना कहा जाता है। नियोगवादी नियोगवादी मीमांसक (प्रभाकर मिश्र के अनुयायी) "अग्निष्टोमेन यजेत" इस वाक्य का अर्थ नियोगपरक करते हैं। जैसा कि कहा गया है –

"नियुक्तोऽहमस्नेनाग्निष्टोमादिवाक्येनेति निखशेषो हि नियोगः"

अर्थात् मरणोपरान्त स्वर्ग को चाहने वाला व्यक्ति अग्निष्टोम यज्ञ को करे इस वाक्य के श्रवण करने के कारण मैं इस कार्य में संलग्न हुआ हूँ। इस प्रकार कार्य करने में पूर्ण तत्परता का नाम नियोग है।

सारांश भावनावादी मीमांसक अग्निष्टोम यज्ञ करने की भावना करता है किन्तु यज्ञ को नहीं करता। दूसरे पक्ष में नियोगवादी मीमांसक अग्निष्टोम यज्ञ करने हेतु तत्पर होता है तथा यज्ञ सम्पादित करता है। इस प्रकार "यजेत" क्रिया पद का अर्थ किसी ने विधि को, तो किसी ने भावना को तो किसी ने नियोग को माना है।

उत्तर पक्ष–

आ. प्रभाचन्द्र ने न्यायकुमुदचन्द्र में मीमांसकों द्वारा मान्य विधि–भावना तथा नियोगवाद का विस्तार से खण्डन किया है। आ. प्रभाचन्द्र के अनुसार ये सभी मत परस्पर बाधित होने से युक्तिसंगत नहीं हैं। वेदवाक्यों का वास्तविक अर्थ क्या होना चाहिए इस विषय में अनेक विवाद हैं कहा भी गया है–

"भावना यदि वाक्यार्थो नियोगो नेति का प्रमा
तावुभौयदि वाक्यार्थो हतौ भट्टप्रभाकरौ
कार्येऽर्थे चोदनाज्ञानं स्वरूपे किं तत्प्रभा

द्वयोश्छेदं हन्त तौ नष्टौ भट्टवेदान्तवादिनौ"

अभिप्राय यह है कि यदि वाक्य का अर्थ भावना को माना जाए तो नियोग को वाक्य का अर्थ नहीं मानने में कौन सी युक्ति है? और यदि यह दोनों ही वाक्य के अर्थ हैं तो भट्टों एवं प्रभाकरों में मतभेद क्यों है? यहाँ यह प्रश्न होता है कि यदि वेद वाक्य का अर्थ "किया जाने वाला" अर्थात् भावना में है तो विधि में क्यों नहीं है? यदि भावना और विधि ये दोनों ही वेद वाक्य के अर्थ हैं तो भट्ट और वेदान्तवादियों में किसी प्रकार का मतभेद ही नहीं होना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि मीमांसकों की मान्यताओं में मतैक्य नहीं है तथा एक मत दूसरे मत का खण्डन कर रहा है। भावनावादी कहते हैं कि वाक्य का अर्थ नियोग नहीं हो सकता। वाक्य का अर्थ नियोग करने पर अनेकों दोष उत्पन्न होते हैं। नियोग प्रमाण रूप है अथवा प्रमेय रूप है अथवा उभयरूप है या अनुभय रूप है? इसी प्रकार 'नियोग' शब्द का व्यापार है अथवा पुरुष का व्यापार है? या दोनों का व्यापार है, अथवा दोनों के व्यापार से रहित है? यदि नियोग प्रमाण रूप है तो प्रमाण के चौतन्य रूप होने से विधि ही वाक्य का अर्थ हुआ। इसी प्रकार यदि शब्द व्यापार अथवा पुरुष व्यापार को नियोग कहा जाए तो शाब्दी भावना अथवा आर्थी भावना ही नियोग का अर्थ होने से भट्टों के मंतव्य ही सत्य सिद्ध होते हैं।

इस संदर्भ में एक बात अवश्य विचारणीय है कि जब नियोग का स्वभाव यदि प्रवृत्ति कराने का है तो जैसे वह प्रभाकरों को यज्ञ में प्रवृत्ति कराता है वैसे ही बौद्ध आदि अन्य दार्शनिकों को भी प्रवृत्ति कराना चाहिए। अब यदि नियोग का कार्य प्रवृत्ति कराने का नहीं है तो वह वाक्य का अर्थ कैसे हो सकता है?

दूसरा प्रश्न यह है कि 'नियोग' फल रहित है अथवा फल सहित? यदि नियोग फल रहित है तो बुद्धिमान जन नियोग के माध्यम से कार्य में प्रवृत्ति कैसे करेंगे? तथा नियोग को यदि फल सहित माना जाये तो फल ही प्रवृत्ति का कारण हुआ, नियोग नहीं।

इस प्रकार नियोग को वाक्य का अर्थ स्वीकार करने पर अनेक दोषों का सद्भाव होता है।

इसी प्रकार जो–जो दोष नियोग को वाक्य का अर्थ मानने पर उत्पन्न होते हैं वे दोष विधि को वाक्य का अर्थ मानने में भी उत्पन्न होते हैं। विधि को प्रमाण रूप माना जाये या प्रमेय रूप? इसी प्रकार वह विधि शब्द व्यापार रूप है या अर्थ व्यापार रूप? इत्यादि अनेक प्रश्न भी उत्पन्न होते हैं।

विधि को प्रमाण रूप मानने पर प्रमेय को उससे भिन्न मानना ही पड़ेगा। किन्तु यहां विचारणीय यह है कि वेदान्त मत में ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की सत्ता ही मानी नहीं गई। तथा विधि को प्रमेय रूप मानने में भी ये ही दोष आते हैं।

यह भी विचारणीय है कि विधि को शब्द व्यापार रूप मानने में शाब्दीभावनारूप और पुरुष व्यापार रूप मानने में आर्थी भावना रूप अर्थ का प्रतिपादन होने से भट्ट मंतव्य ही परिपुष्ट होता है। विधि का स्वभाव प्रवृत्ति कराने का है या नहीं।

विधि के स्वभाव को प्रवृत्ति रूप माना जाये तो उस स्वभाव को वेदान्तियों की भांति सभी का प्रवर्तक होना चाहिए। तथा विधि का स्वभाव प्रवृत्ति कराने का यदि नहीं है तो तो विधि को वाक्यार्थ भी नहीं कहा जा सकता।

ठीक इसी प्रकार फल रहित विधि में प्रवृत्ति नहीं हो सकती, प्रयोजन हीन कार्य में मूर्ख व्यक्ति भी प्रवृत्ति नहीं करता। यदि ऐसा माना जाए कि विधि फल सहित ही है, फल रहित नहीं, तो ऐसा मानने पर फल द्वारा ही कार्य में प्रवृत्ति होने लगेगी तथा उस समय विधि प्रयोजन हीन ही सिद्ध होगी।

भावना को वेद वाक्यों का अर्थ स्वीकार करने पर अनेक दोषों का समागम होगा।

भावना के दो रूप हैं –

(1) शाब्दीभावना एवं

(2) अर्थभावना।

शब्द व्यापार को शाब्दीभावना से अभिहित किया जाता है। यहाँ यह प्रश्न है कि शब्दों द्वारा जो व्यापार होता है वह शब्द से पृथक् है या अपृथक् है? शब्दों के व्यापार को शब्दों से यदि अपृथक् मानें तो उन दोनों में प्रतिपाद्य और प्रतिपादक भाव नहीं बन सकता।

ऐसी दशा में शब्द और उसका व्यापार एक ही सिद्ध होगा तब उनमें वाच्यवाचक भाव कैसे बनेगा? दूसरी दशा में यदि शब्दों के व्यापार को यदि शब्दों से पृथक् माना जाए तो एक व्यापार के प्रतिपादन हेतु किसी अन्य व्यापार की आवश्यकता होगी तथा इस अन्य व्यापार के लिये किसी तीसरे व्यापार की आवश्यकता होगी।

अतः अनवस्था दोष का समागम होगा। इस कारण शब्द भावना दोष पूर्ण होने से पुरुष व्यापार रूप अर्थ भावना को वेद वाक्य का अर्थ स्वीकार करना युक्तिसंगत

नहीं है। अब यदि पुरुष के व्यापार को ही अर्थ भावना माना जाए तो नियोग का भी यही अर्थ होगा तब ऐसी स्थिति में भट्टों द्वारा नियोग का खण्डन करना उचित नहीं होगा।

किसी कार्य में संलग्न होना ही नियोग का अर्थ है तथा अर्थ भावना का भी अर्थ किसी कार्य में संलग्न होना है तब ऐसी स्थिति में भट्ट और प्रभाकर इन दोनों में मतभेद नहीं होना चाहिए।

निष्कर्ष–

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि परस्पर में विरोध होने के कारण विधि, नियोग और भावना में से कोई भी वेदवाक्य का निर्दोष अर्थ नहीं माना जा सकता।

वेद वाक्य परस्पर में विरुद्ध अर्थ का प्रतिपादन करते हैं अतः वेद को प्रमाणभूत भी नहीं माना जा सकता। विधि, भावना और नियोग में किसी भी दृष्टि से शब्द वाच्यत्व सिद्ध नहीं होता है अतः सामान्य विशेषात्मक अर्थ ही शब्द का वाच्य हो सकता है अन्य नहीं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ''चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः'', जैमिनी मीमांसा सूत्र–1.1.2
   ''निषेधोऽपि विधिरेव'', जैमिनी मीमांसा सूत्र – 1.1.2।
2. तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3.1.1 (अग्निष्टोम प्रकरण)।
3. तैत्तिरीय ब्राह्मण – 1.1.4।
4. विधिवद शबर भाष्य (जैमिनि) 1.1.5 ।
   भावनावाद तन्त्रवार्तिक (कुमारिल भट्ट) 1.1.9 ।
   नियोगवाद प्रभाकर मिश्र की बृहती एवं लघ्वी 1/15।
5. मीमांसा श्लोकवार्तिक – 1.1.3।
6. बृहदारण्यक उपनिषद – 2.4.5 ।
7. श्लोकवार्तिक (भावना प्रकरण अ. प्रथम, सूत्र प्रथम)।
8. कुमारिल भट्ट, मीमांसा श्लोकवार्तिक, नियोग प्रकरण–1.1.6।
9. आ. प्रभाचन्द्र, न्याय कुमुदचन्द्र, चतुर्थ परिच्छेद।

सुपर प्रकाशन

(विश्वविद्यालय स्तरीय लाइब्रेरी पुस्तकों के प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता)

हम पुस्तकों को स्पष्ट शब्द सज्जा, डिजाइन एवं उत्तम कोटि की छपाई व अत्याधुनिक बाइंडिंग के साथ प्रकाशित करते हैं। विभागाध्यक्ष, एसोसिएट प्रोफेसर, प्रवक्ता, कवि, लेखक, रचनाकार - कहानीकार अपने संस्मरण, गीत, ग़ज़ल एवं कृतियाँ या अन्य किसी भी विधा पर उत्कृष्ट ग्रन्थ अथवा रिसर्च स्कालर (शोध कर्ता) थीसिस प्रकाशन हेतु तैयार हो तो मूल प्रति (Script) भेजकर एक माह में ही अपनी प्रति को पुस्तक के आकार में प्राप्त करें।

सुपर प्रकाशन देश-विदेश के समस्त शिक्षा जगत् से जुड़े डिग्री कालेजों (Higher Education) में यू जी सी के द्वारा उपलब्ध निर्धारित मानकों के अनुसार नेशनल एवं इन्टरनेशनल पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल में अपने शोध लेख (Research Paper) को **'दि गुँजन'** एवं **'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल)** के द्वारा प्रकाशित कराने का अवसर उपलब्ध कराता है।

सुपर प्रकाशन द्वारा हिन्दी साहित्य - कला संकाय, कामर्स संकाय एवं विज्ञान संकाय तीनों फैकल्टी की पुस्तकों एवं इनसाइक्लोपीडिया का प्रकाशन एवं विक्रय विश्वविद्यालय लाइब्रेरी स्तर पर किया जाता है। हमें एक बार सेवा का अवसर अवश्य प्रदान करें।

- सर्वेश तिवारी 'राजन'

(प्रबन्ध संपादक - 'दि गुँजन' एवं 'अभिनव गवेषणा'

(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल)

के-444 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश)

मो0- 09335597658, 08896244776 E-mail:super.prakashan@gmail.com

ISSN : 2394-4366

Received: 28 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

योग की अवधारणा एवं मानवीय जीवन में इसका महत्व

– डॉ. श्याम
असिस्टेंट प्रोफेसर–
बी. एड्. विभाग,
मदन मोहन मालवीय पी. जी. कॉलेज, भाटपार रानी, देवरिया – 274702 (उत्तर प्रदेश)
ई–मेल–
cs919151@gmail.com

– डॉ. अवध बिहारी लाल
असिस्टेंट प्रोफेसर–
बी. एड्. विभाग,
मदन मोहन मालवीय पी. जी. कॉलेज, भाटपार रानी, देवरिया – 274702 (उत्तर प्रदेश)
ई–मेल–
avadhbihari85@gmail.com

सारांश

योग स्वस्थ जीवन जीने का एक तरीका है, जिसका उद्भव भारत में हुआ। धीरे–धीरे अब इसे विश्वभर में विज्ञान की एक शैली के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। योग की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसे अपनाने में किसी देश, धर्म, संस्कृति आदि की सीमाएं बन्धन नहीं बनती है। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए योग की क्रियाओं को अपने जीवन में शामिल कर सकता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में हमारे ऋषियों, मुनियों, संतों एवं आचार्यों ने योग को जीवन के एक आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया था और उसी रूप में आने वाली पीढ़ियों को शिक्षित किया गया था। बीच में भौतिकता के प्रभाव की वजह से लोग इससे दूर होते गए लेकिन धीरे–धीरे फिर से लोगों को इसकी महत्ता का एहसास होने लगा है। पाश्चात्य संस्कृति भी इसे वैज्ञानिक व्यायाम की एक स्वस्थ शैली के रूप में स्वीकार कर रही है। भारत के प्रयासों से संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुमोदन के बाद वैश्विक दृष्टिकोण से योग की स्वीकार्यता बढ़ी है। योग न केवल शारीरिक रूप से स्वस्थ रखता है बल्कि मानसिक रूप से चुस्त तथा भावनात्मक रूप से स्थिर रखते हुए अन्ततः व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के लिए आधार तैयार करता है। जीवन भौतिक और आध्यात्मिक दोनों शक्तियों का संयोग है। इसलिए वह विद्या ही प्रभावी सिद्ध हो सकती है, जो दोनों शक्तियों में सन्तुलन की कला सिखाती है। योग दोनों के मध्य सन्तुलन बनाते हुए बीच का रास्ता दिखाता है। त्याग और भोग के बीच का मार्ग योग है, और आज लोग जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय से ऊपर उठकर योग को तबज्जो दे रहे हैं। योग, व्यक्ति की शारीरिक क्षमता, उसके मन व भावनाएं तथा ऊर्जा के स्तर के अनुरूप कार्य करता है। इसे व्यापक रूप से चार वर्गों में विभाजित किया गया है–कर्मयोग, ज्ञान योग, भक्ति योग एवं क्रियायोग। कर्म योग में हम शरीर का प्रयोग करते हैं, ज्ञान योग में हम मन एवं बुद्धि का प्रयोग करते हैं, भक्ति योग में हम भावना अथवा हृदय का प्रयोग करते हैं और क्रिया योग में हम ऊर्जा का प्रयोग करते हैं। योग की जिस भी प्रणाली का हम अभ्यास करते हैं, वह एक–दूसरे से आपस में कई स्तरों पर मिली–जुली हुई होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति इन चारों योग कारकों का एक अद्वितीय संयोग है। भारत तथा विश्व स्तर पर योग को जन–जन तक पहुँचाने में भारत के कई योगाचार्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जैसे–महर्षि पतंजलि, आदि शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द घोष, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, तिरुमलाई कृष्णा आचार्य, परमहंस योगानन्द, महर्षि महेश योगी, बी.के.एस. आयंगर, धीरेन्द्र ब्रह्मचारी, श्री रविशंकर, सद्गुरु जग्गी वासुदेव एवं रामदेव आदि।

मुख्य शब्द– योग साधना, आध्यात्मिक उन्नति, योग का महत्व, भारतीय संस्कृति, योगिक क्रियाएं।

प्रस्तावना–

योग शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक अभ्यासों का एक समूह है, जिसकी उत्पत्ति प्राचीन भारत में हुई थी। यह सिर्फ एक आसन और ध्यान नहीं है बल्कि इससे कहीं ज्यादा व्यापक दृष्टिकोण रखने वाला साधन है। हिन्दू अथवा वैदिक शड् दर्शनों में भी एक दर्शन योग के नाम से है। जिसे हम योग दर्शन कहते हैं। योग व्यक्तिगत चेतना के साथ सार्वभौमिक चेतना के मिलन का भी प्रतीक है, जो मन और शरीर, मानव और प्रकृति के बीच पूर्ण सामंजस्य को दर्शाता है। इस लौकिक जगत में मनुष्य निरन्तर संघर्षरत् रहता है और परमशक्ति को जानने का प्रयास करता है। योग के अभ्यास से मनुष्य शारीरिक सम्पूर्णता को प्राप्त करते हुए आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर होता है। आज विश्व के तमाम धर्मों और मतों के अनुयायी योग के महत्व को स्वीकार कर रहे हैं। आज के तकनीकी और डिजिटल युग में भी योग का महत्त्व कम नहीं हुआ है। योग से जुड़ी संस्थाओं, प्रशिक्षकों और आध्यात्मिक व्यक्तियों के द्वारा भौगोलिक और सामाजिक सीमाओं से आगे बढ़कर आम जिज्ञासु तक पहुँचने के लिए इण्टरनेट का रचनात्मक प्रयोग किया गया है। आज अगर पश्चिमी देशों से लेकर भारत के छोटे–छोटे शहरों तक में लोग योग को लेकर जिज्ञासु एवं आकर्षित हैं तो उसमें तकनीकी माध्यमों का बड़ा योगदान है। विभिन्न शोधों से यह स्पष्ट हो चुका है कि योग का चिकित्सा के विकल्प के रूप में प्रभावी उपयोग किया जा सकता है। यह रोगों के प्रबन्धन में प्रभावी भूमिका निभाता है। योगाभ्यास जीवन की छोटी–मोटी असुविधाओं के प्रबन्धन में श्रेष्ठ है और कई प्रकार के शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रोगों तथा विकारों को पूरी तरह से ठीक किया जा सकता है। योग का एक ही महत्वपूर्ण उद्देश्य है, मानव व्यक्तित्व की क्षमता को जगाना और बढ़ाना।

योग की अवधारणा –

योग प्राचीन भारतीय ऋषि मुनियों, तत्त्ववेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित अनमोल ज्ञान–विज्ञान से युक्त एक विशिष्ट पद्धति है। इसमें मनुष्य मात्र का समग्र उत्थान, विकास एवं उत्कर्ष के लिए अनेकानेक विधियाँ, उपाय एवं प्रयोग सन्नियोजित हैं। जीवन की प्रसुप्त, अविज्ञात व अजाग्रत शक्तियों का जागरण कर व्यक्तित्व को परम शिखर तक पहुँचाने की अपूर्व क्षमता योग के विभिन्न साधन–सामग्रियों में विद्यमान है। इसे आत्मानुभूति, मोक्ष एवं मुक्ति का साधन भी कहते हैं। वस्तुतः योग एक जीवन पद्धति है, जीवन दर्शन है, तथा जीवन जीने की सर्वश्रेष्ठ कला है। योग एक विज्ञान है कोई शास्त्र नहीं। योग का किसी धर्म विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं है। चाहे जीसस, चाहे मोहम्मद, चाहे पतंजलि, चाहे बुद्ध, चाहे महावीर, चाहे अरविन्द, कोई भी व्यक्ति जो सत्य को उपलब्ध हुआ है, बिना योग से गुजरे हुए उपलब्ध नहीं होता। सभी महान आत्माओं ने किसी न किसी रूप में योग का सहारा लेकर ही स्वयं को साधारण से असाधारण बनाया। योग के अतिरिक्त जीवन के परम् सत्य तक पहुँचने का कोई उपाय नहीं है। जिन्हें हम धर्म कहते हैं वे विश्वासों के साथी हैं। योग विश्वासों का नहीं जीवन सत्य की दिशा में किए गये वैज्ञानिक प्रयोगों की सूत्रवत् प्रणाली है, अर्थात् योग एक विज्ञान है, विश्वास नहीं। योग को अपनाने के लिए किसी तरह की श्रद्धा आवश्यक नहीं है। योग के प्रयोग के लिए किसी तरह के यज्ञ, अनुष्ठान उपासना एवं पूजा–पाठ की कोई जरूरत नहीं होती है, नास्तिक भी योग के प्रयोग में उसी तरह प्रवेश पा सकता है जैसे आस्तिक। योग आस्तिक नास्तिक में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं करता है।

'योग : कर्मसु कौशलम्', अर्थात् कार्य में कुशलता को योग कहते हैं।

'योगाश्चित्तवृत्ति निरोधः' अर्थात् चित्त की वृत्तियों को वश में रखना ही योग है। वृत्ति का अर्थ है– सत्ता, स्वभाव, व्यवहार, शुचि, विचार। हमारे ऋषि–मुनियों ने चित्त की चार वृत्तियों का उल्लेख किया है। संशय, निश्चय, गर्व (अहंकार) स्वभाव–विचार। हमारे चित्त की सभी वृत्तियों का शोधन हो अर्थात् ठीक प्रकार से कार्य करें, इसी के लिए योग का सहारा लिया जाता है। योग हमारे जीवन में सन्तुलन, स्थायित्व तथा सकारात्मकता लाता है योग का अर्थ समाज से कटकर रहना या साधु–संन्यासी हो जाना नहीं है बल्कि ये स्वयं को परिमार्जित एवं रूपान्तरित करने का विज्ञान है। योग का अर्थ जोड़ना और मिलाना है। यह हमें अपने आपसे मिलाता है। योग हमें उमंगित और तरंगित करके जीवन में नवीन उत्साह और जोश भरता है। योग किसी धर्म विशेष से सम्बन्धित नहीं है बल्कि यह जीवन जीने की अद्भुत कला है। योग करने से हम सहज, सरल, निष्छल और सच्चे इंसान बनते हैं। योग करने से ही मनुष्य की आत्मा पवित्र हो जाती है। आत्मा और चित्त पर चिपका सारा मैल और भेदभाव मिट जाता है। हम तन और

मन से पूर्णतः स्वस्थ हो जाते हैं। योग को आधुनिक पीढ़ी योगा कहकर पुकारती है, लेकिन सही शब्द योग ही है। योग से सम्बन्धित मुख्य रूप से चार यौगिक क्रियाओं का जिक्र किया जाता है– योगासन, प्राणायाम, मुद्रा एवं बन्ध, ध्यान।

योगासन–

सर्वप्रथम योग से जुड़ने वाला व्यक्ति कुशल एवं प्रशिक्षित योगाचार्य से सम्पर्क करके कुछ जरूरी योगासनों को सीखता है, जिससे व्यक्ति में एकाग्रता स्थापित होती है। योगासन एक प्रकार का शारीरिक व्यायाम है। योगासन के विभिन्न प्रकार हमारे शरीर की माँसपेशियों को लचीला, सुदृढ़ एवं कार्यशील बनाते हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों, आन्तरिक अवयवों तथा ज्ञान तन्तुओं की सक्रियता को बढ़ाते हैं। शलभासन, हलासन, सूर्य नमस्कार, सिद्धासन, शीर्षासन आदि कुछ प्रमुख योगासन है। हमारे ऋषि मुनियों ने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए विविध प्रकार के योगासनों का उल्लेख किया है। उम्र के अनुसार आसनों को सीखकर उनका अभ्यास करके स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

प्राणायाम–

योगासनों के ठीक प्रकार से अभ्यास हो जाने के बाद हमें प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। बहुत बार हम बिना किसी कुशल योगाचार्य के अभ्यास करने लगते हैं। गलत तरीके से किये गये योगाभ्यास शारीरिक और मानसिक रूप से नुकसानदायक हो सकते हैं। गलत अभ्यास करने से अच्छा है कि हम अभ्यास न करें। प्राणायाम से तात्पर्य है कि अपनी श्वास (प्राण) का लयबद्ध तरीके से लेने का अभ्यास करना। प्राण सभी भौतिक शक्तियों का संचालक है। हमारा शरीर भी प्राण ऊर्जा शक्ति से क्रियाशील होता है। प्राण ही शरीर के सभी अंगों को ऊर्जावान बनाता है। यदि प्राण (श्वास) अभ्यास को व्यवस्थित कर लिया जाए तो हम अपनी आयु एवं बल में वृद्धि कर सकते हैं। प्राण के अभ्यास को कैसे व्यवस्थित किया जाए, उन विधियों को ही प्राणायाम कहा जाता है। जिस प्रकार अग्नि पर गर्म करने से सोना आदि धातुओं के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों और मन के सभी दोष एवं विकार दूर हो जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो प्राणायाम लम्बी और गहरी श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया का व्यायाम है। सामान्य रूप से व्यक्ति श्वास के द्वारा जो वायु ग्रहण करता है उसमें ऑक्सीजन की मात्रा 20.96 प्रतिशत, नाइट्रोजन 79 प्रतिशत तथा कार्बनडाई ऑक्साइड 0.4 प्रतिशत होती है। श्वास के द्वारा जो नाइट्रोजन आता है वह निःश्वास के द्वारा तुरन्त बाहर चला जाता है तथा ऑक्सीजन का 5 प्रतिशत भाग ही शरीर में रह पाता है, लेकिन लम्बी–गहरी श्वास लेने पर 13 से 14 प्रतिशत तक ऑक्सीजन अवशोषित हो जाती है। प्राणायाम की क्रिया तथा शरीर में अधिक ऑक्सीजन पहुँचने से हम दीर्घ जीवी और निरोगी बनते हैं। शरीर के प्रत्येक अंग में प्राण वायु नवीन ऊर्जा का संचार करती रहती है तथा नवीन कोशिकाओं का निर्माण भी होता रहता है। तन, मन और आत्मा का परिष्करण तथा आनन्द की प्राप्ति होती है। प्राणायाम के अनेक प्रकार हैं, जैसे–कपाल भाति, भ्रामरी तथा अनुलोम–विलोम आदि।

मुद्रा और बन्ध –

यौगिकी क्रियाओं से सम्बन्धित तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष है मुद्रा तथा बंध। मुद्राओं तथा बंधों का नियमित अभ्यास करने से हमारे शारीरिक एवं मानसिक रोगों का निदान होता है तथा आत्मिक उत्कर्ष की प्राप्ति होती है। प्राचीन काल में हमारे ऋषियों, मुनियों एवं संतों आदि में इनका निरन्तर अभ्यास करके लम्बे समय तक तप किया तथा निरोगी जीवन प्राप्त किया। मुद्रा एवं बंध शरीर में स्थित चक्रों एवं कुण्डलनी की शक्तियों को जाग्रत करने की गुप्त विधि है। इसीलिए इनका योगासनों और प्राणायाम से भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अभ्यास के द्वारा हम अचेतन इच्छा शक्ति की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

ध्यान–

यौगिक क्रियाओं में ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान है। ध्यान की क्रिया को यदि हम अपनी जीवनशैली में शामिल करते हैं तो हम मानसिक तनाव से दूर रहते हैं। हम सुख और आनन्द की अनुभूति करते हैं। किसी प्रशिक्षित योगाचार्य की सलाह से प्रतिदिन हमें पाँच से दस मिनट का ध्यान जरूर करना चाहिए। यह हमें सभी प्रकार के तनाव से बचाए रखता है।

यदि हम यौगिक क्रियाओं से लाभ प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपना जीवन अनुशासित एवं संयमित रखना जरूरी है। रात्रि में समय से सोना तथा प्रातःकाल समय से जगना। बहुत ज्यादा भोजन करने की बजाय हमें सन्तुलित भोजनशैली को अपनाना चाहिए। इन्द्रियों का संयम तथा मन का नियंत्रण हमारी बुद्धि एवं विवेक की

प्रखरता को बढ़ाता है। योग हमें शान्त, सरल और शाकाहारी जीवन जीने की सलाह देता है।

योग की परिभाषा –

भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में योग का एक विशिष्ट स्थान है। योग शब्द वेदों, उपनिषदों, गीता एवं पुराणों आदि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित होता आया है। भारतीय दर्शन में योग एक अति महत्वपूर्ण शब्द है तथा इसे अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया गया है। योग से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

☛ श्रीमद्भगवतगीता में योग को विभिन्न सन्दर्भों में परिभाषित किया गया है–

योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्व्यक्त्वा धनंजय।
सिऋसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।
(श्रीमद्भगवतगीता–2/48)

सुख–दुःख, मान–अपमान, सिद्धि–असिद्धि आदि विरोधी भावों में समान रहने को भगवान ने योग कहा है। अतः सुख में न अधिक प्रसन्न होना और दुःख में न अधिक दुःखी होना ही योग है।

ब्रह्म प्रकाशं ज्ञान योगस्त मै काचित्तता।
चित्त वृत्ति निरोधश्च जीव ब्रह्मात्मनोपरः।।
(अग्नि पुराण, 183/1/3)

अर्थात् ज्ञान का प्रकाश चित्त पर पड़ने से चित्त की एकाग्रता ब्रह्म हो जाती है, जिससे जीव का ब्रह्म से मिलन होता है। चित्त की इस एकाग्रता को योग कहा गया है।

☛ योग के ग्रन्थों में सबसे प्राचीन व प्रमाणिक ग्रन्थ महर्षि पतंजलि कृत योग सूत्र के प्रथम अध्याय 'समाधिवाद' में योग को 'योगश्चित्त वृत्ति निरोध' के रूप में परिभाषित किया गया है, अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्तवृत्तियों के निरोध से तात्पर्य चित्तवृत्तियों को सांसारिक भोग से हटाकर ईश्वर की ओर लगाने से है। चित्त से अभिप्राय अन्तःकरण (मन, बुद्धि एवं अहंकार) से है।

☛ महर्षि व्यास के अनुसार योग का अर्थ– योगस्समाधिः। अर्थात् योग को समाधि बतलाया गया है। जिसका भाव यह है कि जीवात्मा योग रूपी समाधि के द्वारा सच्चिदानन्द (सत् + चित् + आनन्द) स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करे।

☛ याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा के मिलन को ही योग कहा जाता है।

☛ महर्षि अरविन्द के अनुसार– जीवन के सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने की जो कला या युक्ति है, वही योग है।

श्री अरविन्द के योग को सर्वांग अथवा समग्र योग के नाम से भी जाना जाता है। अरविन्द घोष अपने समग्र योग में गृहस्थ या सांसारिक जीवन को त्यागकर, आत्मा को परमात्मा में मिलाने की बात नहीं करते बल्कि वे सांसारिक जीवन का पालन करते हुए, साधना द्वारा आध्यात्मिक दर्जे में पहुँचकर इस जीवन को दिव्य बनाने की बात करते हैं। श्री अरविन्द का पूर्ण अथवा आन्तरिक योग मानस से अतिमानस की यात्रा को सहज बनाता है।

आत्मोन्नति के रूप में भारत में योग की विधा को वेद, पुराण, उपनिषद, महाभारत आदि सद्ग्रन्थों में सहज स्वीकार किया गया है और इस बात की चर्चा की गई है कि मनुष्य को धर्म के तथ्य का सम्यक् ज्ञान तभी हो सकता है जब कि उसका अन्तःकरण निर्मल व स्थिर हो। आत्म शुद्धि हेतु योग ही सर्वोत्तम साधन है।

योग की उत्पत्ति, इतिहास एवं विकास –

योग की परम्परा को अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। हजारों वर्ष पहले इसकी उत्पत्ति हुई थी। ऐसा माना जाता है कि जबसे सभ्यता की शुरुआत हुई है तभी से योग प्रचलन में है। अर्थात् प्राचीनतम धर्मों या आस्थाओं के जन्म लेने से बहुत पहले योग का जन्म हो चुका था। योग विद्या में शिव को 'आदियोगी'तथा 'आदि गुरु' माना जाता है। शिव ने योग रूपी एक आन्तरिक विज्ञान व सम्भावना को खोजा था, इसीलिए शिव को आदि योगी के रूप में भी जाना जाता है। प्राचीन काल में भारत में रहने वाले लोगों की प्रकृति धर्म, दर्शन एवं अध्यात्म के प्रति अधिक देखने को मिलती थी।

लोगों के आचरण में अध्यात्म कुछ इस कदर रचा–बसा था कि चाहे राजा हो या रंक, हर किसी का एक ही लक्ष्य हुआ करता था और वह लक्ष्य था मुक्ति। आज भी भारतीयों में मुक्ति शब्द लोकप्रिय है। आज भी जब हम भौतिकता से ऊपर उठकर जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने की बात करते हैं तो वह लक्ष्य मुक्ति ही है। यह सब प्राचीन समय से चली आ रही आध्यात्मिक ज्ञान की वह धारा है जो हम सबको प्रेरित करती रहती है। शिव एक ऐसी शख्सियत है जो योग, साधना, संकल्प, समर्पण तथा अपने तपस्वी जीवन से मानवीय चेतना को एक आकार देने में बड़ा योगदान दिया है, आदि योगी शिव ने ही इस सम्भावना को जन्म दिया कि व्यक्ति अपनी प्रजाति, अपने शरीर तथा अपने मन की भौतिक सीमाओं से परे जाकर

अपने महत्तर विकास को प्राप्त कर सकता है। जीवन जीने के एक नए तरीके को इजाद किया जा सकता हे। शिव ने ही मानव मन में योग का बीज बोया। यौगिक कथाओं के अनुसार– आदि योगी शिव ने आदि गुरु में रूपान्तरित करके योग विज्ञान का ज्ञान सात ऋषियों को प्रदान किया था, जिन्हें आज हम सप्तर्षि के नाम से जानते हैं। शिव ने इन सात लोगों में योग के अलग–अलग पहलुओं को स्थापित किया जो आगे चलकर योग की सात मौलिक विधाएं बन गई। आदि योगी शिव के बाद वैदिक ऋषि–मुनियों से ही योग का प्रारम्भ माना जाता है। बाद में कृष्ण, महावीर तथा बुद्ध ने इसे अपने तरीके से विस्तार रूप प्रदान किया। इसके पश्चात् पतंजलि ने योग सम्बन्धी विविध सामग्री को सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। इसे ही आगे चलकर सिद्धपंथ, शैव पंथ, नाथ पंथ एवं वैष्णव पंथियों ने अपने–अपने तरीके से विस्तार दिया।

हड़प्पा और मोहन जोदड़ों के उत्खनन से पूर्व पश्चिमी विद्वान यही मानते थे कि योग का प्रादुर्भाव करीब 500 ई.पू. में हुआ था। जब बौद्ध धर्म का उदय हुआ। लेकिन सिन्धु घाटी सभ्यता में जो उत्खनन हुआ उससे प्राप्त योग मुद्राओं से यह ज्ञात होता है कि योग का चलन पूर्व वैदिक काल (3000 ई.पू. से पहले) से ही था। वैदिक काल (3000 ई.पू. से 500 ई.पू.) में यज्ञ और योग का बहुत महत्व था। ब्रह्मचर्य आश्रम में वेदों की शिक्षा के साथ ही शस्त्र और योग की शिक्षा भी दी जाती थी। वैदिक साधना का मुख्य उद्देश्य–आत्मा और परमात्मा का मिलन, उनका एक्य है। इसलिए वेदों में लौकिक ज्ञान के साथ अलौकिक ज्ञान की भी चर्चा की गई है। अतः अलौकिक ज्ञान (अपवर्ग) को प्राप्त करने के लिए, आध्यात्मिक सुख, पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए वेदों में योग सम्बन्धी अनेक विचार यत्र–तत्र हैं। वेदों में योग की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि योग मार्ग पर चलने वाला साधक अंधकार को नहीं प्रकाश को चाहता है, अज्ञान को नहीं ज्ञान को चाहता है। योग का साधक अपने अन्तःकरण की शुद्धि हेतु कामना करता है ताकि वह परमतत्त्व को प्राप्त कर सके। आचार, विचार और व्यवहार की शुद्धि ही योग है और उस मार्ग पर चलने वाला साधक योगी है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वेदों में योग सम्बन्धी विचारधारा विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होती है।

पूर्व शास्त्रीय काल (500 ई. पू. से 200 ई.पू. तक) में उपनिषदों, महाभारत, भगवद्गीता, जैन और बौद्ध कालखण्ड में योग के जागरण तथा उत्थान की चर्चा होती है। उपनिषदों में योग सम्बन्धी चर्चा बिखरी पड़ी है, जिनका अन्तिम लक्ष्य परम ब्रह्म का साक्षात्कार, मोक्ष की प्राप्ति है। योग विद्या का उपनिषदों में बहुत अधिक वर्णन किया गया है। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार उपनिषदों की कुल संख्या 108 के लगभग मानी गई है। इसमें कहीं–कहीं योग का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। कुछ ऐसे उपनिषद भी हैं, जिनमें केवल योग विषय पर चर्चा की गई है, जैसे–अद्वयतारकोपनिषद्, अमृत बिन्दु उपनिषद्, मुक्ति उपनिषद्, दर्शनोपनिषद्, ब्रह्म विद्योपनिषद, नाद बिन्दुपनिषद् आदि।

भगवद्गीता में ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्मयोग और राजयोग का उल्लेख है। गीता के उपदेश में भगवान श्री कृष्ण स्वयं अर्जुन को योग का महत्व बताते हुए कर्मयोग, भक्ति योग व ज्ञान योग का वर्णन करते हैं। बौद्ध धर्म में भगवान् बुद्ध को योग का अध्ययन करने वाले पहले बौद्ध के रूप में जाना जाता है। बौद्ध साहित्य में ध्यान और यौगिक आसनों पर अधिक बल दिया गया है, जो ज्ञान प्राप्ति में सहायक हैं। भगवान महावीर की मदद से जैन धर्म ने भी योग को अपनाया। उन्होंने मोक्ष और मोक्ष प्राप्ति के लिए ध्यान के महत्व पर जोर दिया। बौद्ध और जैन काल के दौर में यम और नियम अर्थात् अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप और स्वाध्याय का प्रचलन ही अधिक रहा।

शास्त्रीय काल 200 (ई. पू. से 500 ई.) में योग एक स्पष्ट और समग्र रूप से प्रचलन में आया। पतंजलि ने वेदों में बिखरी योग विद्या को 200 ई. पू. के लगभग व्यवस्थित एवं समग्र रूप में प्रस्तुत किया। महर्षि पतंजलि पहले योगी थे जिन्होंने योग के अर्थ और इसके पीछे के वास्तविक उद्देश्य को सही मायने में समझा और अपने योग सूत्र में समझाया। इसे राजयोग कहा जाता है। इसके आठ अंग है– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इसी काल में योग से सम्बन्धित कई ग्रन्थों की रचना की गई, जिसमें पतंजलि का योग सूत्र, योगयाज्ञवल्क्य, योगाचारभूमिशास्त्र और विसुद्धिमग्न प्रमुख हैं।

उत्तर शास्त्रीय काल (500 ई से 1500 ई.) में पतंजलि योग के अनुयायियों द्वारा योग की छोटी–छोटी पद्धतियाँ शुरू की गयी। इस काल में अनेक योग शिक्षकों के नाम सामने आए जिन्होंने योग कला के विकास की

दिशा में काम किया, इनमें मुख्य रूप में आदि शंकराचार्य, माधवाचार्य, रामानुजाचार्य, मीराबाई और पुरन्दरदास शामिल हैं। हठयोग परम्परा के नाथ योगी जैसे मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, कौरंगिनाथ, आत्माराम सूरी, घेरंडा, श्रीनिवास भट्ट कुछ महत्वपूर्ण नाम हैं, जिन्होंने इस अवधि के दौरान हठ योग प्रथाओं को लोकप्रिय बनाया।

1500 ई. से 1900 ई. की अवधि को योग के समृद्ध इतिहास और विकास के दृष्टिकोण से आधुनिक काल माना जाता है। आधुनिक काल में योग का प्रचार करने वाले योगियों में स्वामी विवेकानन्द का नाम सबसे पहले लिया जाता है। सन् 1989 में शिकागो के धर्म संसद में विवेकानन्द के ऐतिहासिक भाषण ने भारत के अध्यात्म एवं योग से सारे विश्व को परिचित कराया। महर्षि महेश योगी, परमहंस योगानन्द, रमण महर्षि जैसे कई योगियों ने पश्चिमी दुनिया को प्रभावित किया। धीरे–धीरे योग एक धर्मनिरपेक्ष, प्रक्रिया–आधारित जीवनशैली के रूप में दुनिया भर में स्वीकार किया जाने लगा। टी. कृष्णमाचार्य के तीन शिष्यों, बी. के. एस. आयंगर, पट्टाभि जो इस और टी.वी. के देशिकाचार ने विश्व स्तर पर योग को लोकप्रिय बनाया।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस–

प्रत्येक वर्ष 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस (IDY) मनाया जाता है। 27 सितम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र संघ के 69वें सत्र को सम्बोधित करते हुए भारत के माननीय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने विश्व समुदाय से अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आह्वान किया। 11 दिसम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा के 193 सदस्यों में से रिकार्ड 177 सदस्य देशों ने 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का संकल्प सर्वसम्मति से अनुमोदित किया। 21 जून को ही अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने के पीछे खास वजह यह है कि 21 जून उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे लम्बा दिन होता है, जिसे ग्रीष्म संक्रान्ति कहते हैं। यह दिन साल का सबसे लम्बा दिन माना जाता है और यह 'दक्षिणायन' की शुरुआत का भी प्रतीक है। इस समय को योग और अध्यात्म के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस 21 जून, 2015 को 'सद्भाव और शान्ति के लिए योग' थीम पर मनाया गया था। पहली बार आयोजित इस अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस में भारत और दुनिया के लाखों लोगों ने भागीदारी की थी। 21 जून, 2024 को दसवाँ अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया, जिसकी थीम 'स्वयं और समाज के लिए योग' थी। यह थीम योग अभ्यास के दोहरे लाभों पर जोर देती है। व्यक्तिगत कल्याण को बढ़ाना और बड़े पैमाने पर समाज में सुधार लाना। 2024 की यह थीम मानती है कि आन्तरिक शान्ति और आत्म देखभाल एक खुशहाल और स्वस्थ अस्तित्व की आधारशिला है। योग अभ्यासियों को अपनी भावनाओं को नियन्त्रित करने, तनाव को कम करने और आत्म–जागरुकता विकसित करने का कौशल देता है।

मानव जीवन में योग का महत्व –

मानवीय सभ्यता के विकास के बाद से योग का महत्व हर कालखण्ड में रहा है। हजारों साल से योग मानव जीवन को सन्तुलित एवं परिमार्जित करने का कार्य कर रहा है। आज के प्रतिस्पर्धा व विलासिता के युग में हर व्यक्ति कई तरह के शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रसित है। लोग दवाइयों के भरोसे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। भौतिकता के इस युग में तथा भाग दौड़ भरी जिन्दगी में व्यक्ति को अगर शान्ति एवं स्वास्थ्य के साथ अपना जीवन जीना है तो योग एक बेहतर साधन हो सकता है। योग को हम दैनिक दिनचर्या में शामिल करके स्वयं के जीवन को बेहतर बना सकते हैं। योग की विभिन्न क्रियाएं एवं आसन हमारे जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे–शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक आयामों को सार्थक तथा सकारात्मक दिशा प्रदान करते हैं।

शारीरिक महत्व –

जीवन में किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने में शरीर का सबसे बुनियादी महत्व है। शारीरिक स्वास्थ्य हमारे आगे के उद्देश्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। योग साधना की शारीरिक स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण भूमिका है। योग के आठ अंगों में आसन व प्राणायाम से शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। योग की विभिन्न क्रियाओं एवं आसनों से शारीरिक शक्तियों को विकसित किया जा सकता है। आसन व प्राणायाम के द्वारा शरीर के अंगों में स्फूर्ति एवं सक्रियता आती हैं तथा अन्तःस्रावी तन्त्र प्रभावित होता है और ग्रन्थियों के स्राव सन्तुलित होते हैं। योग एक स्वस्थ जीवन जीने की कला है जिसको अपनाने से शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है तथा जीवन सुव्यवस्थित हो जाता है।

मानसिक महत्व –

मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने में भी योग एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य करता है। आज के

आधुनिक और जटिल समाज में मानसिक रोगियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। आधुनिक चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियाँ भी मानसिक रोग की भयावहता पर लगाम नहीं लगा पा रही हैं। मानसिक झटपटाहट, असन्तुलन एवं विकृतियों से निपटने के लिए योगाभ्यास एक सफल व कारगर चिकित्सा पद्धति है। योग के द्वारा मन की चंचलता को नियन्त्रित करके एकाग्रता को प्राप्त किया जा सकता है। आज की नई पीढ़ी में बचपन से ही योग को एक आवश्यक क्रिया के रूप में शामिल किया जाना चाहिए ताकि आगे चलकर योग उनके जीवन का एक नियमित हिस्सा बन सके। मानसिक रोग मन से उपजते हैं। यदि मन स्वस्थ हो तो हम अपनी मानसिक क्रियाओं का सम्पादन सही तरीके से कर पाने में सक्षम होते हैं।

सामाजिक महत्व –

व्यक्ति और समाज में एक पारस्परिक सम्बन्ध होता है। व्यक्ति समाज को तथा समाज व्यक्ति को घनिष्ठ रूप से प्रभावित करते हैं। आदर्श समाज की स्थापना में योग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। योग मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ बनाता है, और एक स्वस्थ व्यक्ति ही स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। आधुनिक समाज में दृष्टि डालने पर कई तरह की नकारात्मक प्रवृत्तियाँ देखने को मिल जाएंगी, जैसे विलासितापूर्ण जीवन, भौतिक संसाधनों के पीछे भागना, प्रतिस्पर्धा व उच्चतम चाह के लिए अनैतिक कार्यों में लिप्त होना एवं युवाओं तथा प्रौढ़ सभी में नशे की लत आदि। इस तरह की प्रवृत्तियों की वजह से सामाजिक कुरीतियों एवं बुराइयों को बढ़ावा मिल रहा है, जिससे समाज में शारीरिक व मानसिक रोगियों की संख्या बढ़ती जा रही है। योग के विभिन्न आसन एवं क्रियाओं का अभ्यास करने से व्यक्ति धीरे–धीरे अपने अन्दर सकारात्मक परिवर्तन कर सकता है। योग से इन्द्रियाँ संयमित तथा मन नियंत्रित होने लगता है। व्यक्ति के विचारों में संयम तथा सन्तुलित दृष्टिकोण आने लगता है, विचार उच्च हो जाते हैं, जिसका सीधा प्रभाव समाज पर पड़ता है। ज्ञानयोग, भक्ति योग व कर्मयोग जैसे साधन समाज को रचनात्मकता तथा भक्तिमय दिशा प्रदान करते हैं, जिससे व्यक्ति के विचारों एवं कर्मों में उच्चता तथा कुशलता की प्राप्ति होती है। योग के द्वारा व्यक्ति को नैतिक मूल्यों से सम्पृक्त जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है, जिससे आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है।

नैतिक महत्व –

योग सन्तुलित जीवनशैली को प्राप्त करने का प्रमुख साधन है। योग हमारे अन्दर के शारीरिक एवं मानसिक विकारों को बाहर कर नैतिक मूल्यों एवं सद्गुणों को विकसित करता है। योग साधना द्वारा व्यक्ति अपने विचारों एवं व्यवहारों का परिमार्जन कर अच्छी आदतों को विकसित कर सकता है। अष्टांग योग के अन्तर्गत यम (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य) और नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान) के द्वारा व्यवहार की शुद्धि होती है और नैतिक मूल्यों का विकास होता है। योग को अपने जीवन का हिस्सा बनाने वाले साधक की बुद्धि विकारों से रहित हो जाती है तथा विवेक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

आर्थिक महत्व –

योग विद्या के द्वारा मनुष्य अपने आर्थिक पक्ष को भी बेहतर कर सकता है। मानव जीवन के लिए आर्थिक विकास एक महत्वपूर्ण पक्ष है। बिना अर्थ के कुछ भी सम्भव नहीं है। हमारे शास्त्रों में चार पुरुषार्थों की बात की गई है–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इन पुरुषार्थ के मूल में आरोग्य की प्राप्ति कर धर्मसम्मत् तरीके से अर्ध का उपार्जन किया जा सकता है। एक स्वस्थ एवं निरोगी मनुष्य ही अपने आय के साधनों का विकास कर सकता है और अधिक परिश्रम कर अपनी आय को बढ़ा सकता है। यौगिक अभ्यास के द्वारा श्रमिकों, कर्मचारियों की कार्यकुशलता एवं कार्य क्षमता को बढ़ाकर बड़े–बड़े उद्योगों को स्थापित कर उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। योग के सतत अभ्यास से शरीर स्वस्थ रहता है, मन में एकाग्रता आती है तथा प्रतिरोधी क्षमताओंमें वृद्धि होती हैं, जिससे आर्थिक सुसम्पन्नता लायी जा सकती है।

आध्यात्मिक महत्व –

आध्यात्मिक विकास मानव जीवन का चरम उद्देश्य है। आध्यात्मिक उन्नति हमारे आनन्द का आधार है। अध्यात्म के द्वारा ही साधारण मनुष्य एकत्व, स्थितप्रज्ञ एवं आत्मानुभूति को प्राप्त कर सकता है। योग साधना मनुष्य की आध्यात्मिक यात्रा को सुगम बनाती है। शरीर, मन और बुद्धि से होते हुए मनुष्य आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करता है तथा बुद्धि को प्रखर बनाता है, जिससे मनुष्य अपने अन्दर छिपी आत्मिक शक्तियों को पहचानने में सक्षम हो पाता है। योग साधना के अभ्यास से दिव्य

दृष्टि की प्राप्ति होती है। योग साधना द्वारा तत्वदर्शन, आत्मदर्शन, अतीन्द्रिय दर्शन, दिव्यदर्शन एवं ब्रह्म साक्षात्कार किया जा सकता है।

निष्कर्ष –

योग मानव जीवन के लिए एक उपहार है। पशुत्व से मनुष्यत्व एवं मनुष्यत्व से देवत्व की इस यात्रा में योग ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बुद्धि, मन, जिज्ञासा, कल्पना, तर्क, चिन्तन एवं विवेक जैसी विशेषताओं ने मानव को आज यहाँ तक पहुँचाया है। इन सभी विशेषताओं में सन्तुलन, सामंजस्य, दूरदृष्टि एवं रूपान्तरण को क्रियाशील बनाने में योग ने बहुआयामी रूप से अपना प्रभाव दिखाया है। प्राचीन भारत में योग जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा हुआ करता था लेकिन मध्य के समय में इसका प्रभाव कम रहा वर्तमान में फिर से धीरे–धीरे इसके प्रभाव की महत्ता को लोग महसूस करने लगे हैं। योग के सकारात्मक परिणाम की वजह से आज योग शिक्षकों, प्रशिक्षकों, कार्यक्रमों एवं पाठ्यक्रमों की माँग बढ़ने लगी है। विभिन्न पाठ्यक्रमों में तो योग को एक अनिवार्य हिस्से के रूप में सम्मिलित किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में व्यापक परिवर्तन के रूप में कई तरह के माइनर एवं को–करिकुलर पाठ्यक्रमों को स्थान दिया है। जिसमें योग को भी शामिल किया गया है। आज के बेहद तनावपूर्ण एवं प्रतिस्पर्धात्मक दौर में योग को दिनचर्या में शामिल करने से सकारात्मक एवं आशावादी दृष्टिकोण जाग्रत किया जा सकता है। आत्मविश्वास को बढ़ाने में, कार्य क्षमता की वृद्धि में तथा बेहतर पारस्परिक सम्बन्ध बनाए रखने में योग एक बेहतरीन पद्धति है।

महर्षि पतंजलि से लेकर योग गुरु बाबा रामदेव तक अनेकानेक योगाचार्यों ने योग को जन–जन तक पहुँचाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। योग की महत्ता एवं स्वीकार्यता को देखते हुए सरकारें तथा शिक्षण संस्थान भी आगे आकर योग से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाकलापों को आगे बढ़ाने में सक्रियता दिखा रहे हैं। धन आवंटन, जागरुकता कार्यक्रम, शोध गतिविधियों को बढ़ावा देकर योग को प्रमोट किया जा रहा है ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग योग के प्रति संवेदनशील हो सकें और इससे लाभ उठा सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस (सामान्य योग अभ्यासक्रम प्रोटोकॉल), भारत सरकार, मई, 2019, https://www.yoga.ayush.gov.in, retrieved on 02.12.2024.
2. उपनिषदों में योग का स्वरूप, https://www.yaasye.in, retrieved on 03.12.2024.
3. गगनांचल (योग विशेषांक पत्रिका), वर्ष 38, अंक–3, मई–जून 2015।
4. जाटव, प्रवेश एवं गिरि, गणेश शंकर, वैदिक परम्परा में योग की अवधारणा, वेदांजलि जर्नल, वर्ष–7, अंक–14, भाग–2, जुलाई–दिसम्बर 2020।
5. जोशी, लालमणि, योग की उत्पत्ति और उसका प्रारम्भिक इतिहास, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
6. मुनि प्रणम्यसागर, अध्यात्म योग, आचार्य अकलंकदेव, जैन विद्या समिति, उज्जैन।
7. मोहन, ललित, मानव जीवन में योग का महत्व एवं उपयोगिता, रीसेन्ट रिसर्च इन सोशल साइसेंस एण्ड ह्यूमनिटिज, पृष्ठ – 88–90।
8. योग : स्वस्थ जीवन जीने का तरीका, रा. शै. अ. एवं प्र. प., नई दिल्ली, 2016।
9. योग सहायक, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार।
10. योग क्या है? योग का इतिहास और प्रकार, https://www.dabur.com/blog/yoga/what-yoga-history-andtypes-yoga, retrieved on 01.12.2024.
11. योग का इतिहास, https://www.hi.wikipedia.org, retrieved on 01.12.2024.
12. योग क्या है? https://www.byjus.com, retrieved on 10.12.2024.
13. योग का अर्थ एवं परिभाषा, https://www.sanskrit.nic.in, retrieved on 05.01.2025.
14. योग का महत्व एवं सिद्धान्त (2023), श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, https://www.slbrsv.ac.in, retrieved on 06.01.2025.
15. व्यक्ति एवं राष्ट्र के उत्थान में योग का महत्व, https://www.keavpublication.org, retrieved on 05.01.2025.
16. श्री अरविन्द, योग के आधार, स्पिरिचुअल साइंस पत्रिका, वर्ष–14, अंक–164, जनवरी 2022, https://www.the-comforter.org/hi/spiritualscience.html,retrieved on 06.01.2025.
17. https://www.igntu.ac.in, retrieved on 05.01.2025.
18. https://www.saamajvigyanshodhpatrika.com, retrieved on 05.01.2025.

ISSN : 2394-4366

Received: 30 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

आदिवासी उपन्यास साहित्य : परिचयात्मक अध्ययन

– स्वयंपूर्णा विजय गायकवाड
शोध छात्रा –
अनुसंधान केन्द्र– स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग एवं अनुसंधान केन्द्र, न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एवं साइंस कॉलेज (स्वायत्त) अहिल्यानगर– 414001 (महाराष्ट्र)
ई–मेल– **swayampurnagaikwadnet@gmail.com**
सम्बद्ध– सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)

– शोध निर्देशक
– डॉ. हनुमंत दशरथ जगताप
अनुसंधान केन्द्र– स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग एवं अनुसंधान केन्द्र, न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एवं साइंस कॉलेज (स्वायत्त) अहिल्यानगर– 414001 (महाराष्ट्र)

सम्बद्ध– सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)

सारांश

देश की सांस्कृतिक विविधता में आदिवासी समाज एक महत्वपूर्ण इकाई है। उनकी जीवनशैली, भाषा, परम्पराएँ और प्रकृति से जुड़ा जीवन–दर्शन उन्हें विशिष्ट पहचान प्रदान करता है। स्वतंत्रता के बाद भी आदिवासी समाज में विस्थापन, शोषण, सांस्कृतिक वर्चस्व और राजनीतिक उपेक्षा निरन्तर बढ़ी है, जिससे उनकी अस्मिता और अस्तित्व संकट में पड़ गया है। समकालीन हिन्दी साहित्य, विशेषतः उपन्यास विधा ने आदिवासी जीवन की पीड़ा, संघर्ष और प्रतिरोध को गम्भीरता से अभिव्यक्त किया है। इन उपन्यासों में आदिवासी केवल सहानुभूति का पात्र नहीं, बल्कि जागरुक, संघर्षशील और सशक्त सामाजिक इकाई के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इन उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी साहित्य ने आदिवासियों के गुमनाम इतिहास, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक अन्याय को उजागर कर उन्हें हाशिये से केंद्र में लाने का सशक्त प्रयास किया है।

मुख्य संबोध – आदिवासी, आदिवासी समाज, संस्कृति, शोषण, विस्थापन, अस्मिता संकट।

प्रस्तावना–

भारत की सांस्कृतिक विविधता में आदिवासी समाज एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन समुदायों की अपनी जीवनशैली, भाषा, परम्परा और प्रकृति से जुड़ा हुआ जीवन दर्शन है, जो उन्हें अन्य समाजों से अलग बनाता है परन्तु विकास की दौड़ में विस्थापन, शोषण, सांस्कृतिक वर्चस्व और राजनीतिक उपेक्षा ने इनकी अस्मिता और अस्तित्व पर गंभीर संकट उत्पन्न किया है। विगत कुछ दशकों में हिन्दी साहित्य, विशेषकर उपन्यास विधा ने आदिवासी जीवन की समस्या, संघर्षों और अस्मिता के प्रश्नों को गंभीर से उठाया है। समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने आदिवासी समाज की पीड़ा, उनकी संस्कृति, संघर्ष, प्रतिरोध और आत्माभिव्यक्ति को अपनी रचनाओं में प्रमुखता से स्थान दिया है। इन रचनाओं में आदिवासी विमर्श केवल सहानुभूति या करुणा का विषय नहीं बल्कि सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है।

विषय प्रवेश –

भारत का लगभग 22 प्रतिशत भू–भाग पहाड़ों से व्याप्त है। इसी पहाड़ी भू–भागों पर लगभग 414 आदिवासी जनजातियाँ निवास करती हैं। उत्तर ईशान्य, मध्य विभाग और दक्षिण विभाग ऐसे तीन भागों में आदिवासी लोग अपना निवास कर रहे हैं। भारत में आजादी के पश्चात् भी आदिवासी लोगों के जीवन में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। वर्तमान समय में थारू, नागा, तांबा, भोट, खासी, गारो, कुकी, मिझो, निकर, नाग, खासी, मुंडा, संथाल, भिल्ल, गरासिया, कोरकू, काली, ठाकुर, वारली,

वाघरी, तोडा, कोया, कादर, कुरुमन, मालसर आदि जनजाति के लोग भारत के विभिन्न पहाड़ों, बीहड़ों में निवास कर रहे हैं। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में जहाँ एक ओर हम वैश्विक महानता का स्वप्न देख रहे हैं, वही दूसरी ओर जंगलों में रहने वाला आदिवासी समाज दुनिया की सुख–सुविधाओं से कोसों दूर है। वैश्विकता के इस युग में आदिवासियों पर निरन्तर अत्याचार हो रहा है। सरकार द्वारा घोषित योजना प्राप्ति के पश्चात और भारतीय संस्कृति के सच्चे रक्षक होने वाले आदिवासी समाज अभाव, अपेक्षा एवं शोषण की त्रासदी झेल रहा हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव जी कहते हैं– "मानव सभ्यता के इतिहास में शायद ही कोई ऐसी जाति मिले, जो पराधीनों के लिए उदार रही है। यहाँ यह कहने में संकोच नहीं कि संस्कृति के दस्तावेज प्रायः बर्बरता के भी दस्तावेज होते हैं।"[1] हम आजादी के पश्चात आदिवासियों को हाशिये से निकाल कर मुख्यधारा में नहीं ला सके हैं लेकिन हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग हाशिये के जीवन पर लिखा रहा है। हिन्दी साहित्य इनके प्रति गम्भीर चिंतन पर लक्षित होने लगा है।

आदिवासी समाज एक शान्तिप्रिय समुदाय है जो भारतीय मूल समाज होने का गौरव भी प्राप्त कर चुका है। आदिवासी लोग पारम्परिक ढंग से जीवनयापन करते हुये अपने समाज को सुखमय बनाने की प्रक्रिया में निरन्तर लगे होते हैं। वे अपनी सीमित आकांक्षाओं के कारण एक बन्द दुनिया में जीवन यापन करते हैं। वे बाहरी समाज, संस्कृति से कटे हुए हैं, जब भी कोई बाहरी समाज या व्यक्ति इनके संसाधनों या जमीन पर कब्जा करने की कोशिश करता है तो ये आदिवासी समाज बलपूर्वक अपने संसाधनों जल, जंगल, जमीन तथा अपने समाज व संस्कृति की रक्षा के लिये संघर्ष करते हैं। किन्तु अब एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि– आधुनिक काल के प्रारंभ होने के साथ ही औद्योगीकरण नगरीकरण का प्रारंभ होता हैं। आदिवासी समाज के अनेक संघर्षों के बावजूद उनके क्षेत्रों पर विदेशी काबिज होते चले गये और उनके संसाधन कोयला, अयस्क और बेशकीमती प्राकृतिक संपदाओं पर अपना अधिकार कर लिया। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में जहाँ एक ओर हम वैश्विक महासत्ता का स्वप्न देख रहे हैं वहीं दूसरी ओर जंगलों रहने वाले आदिवासी समाज दुनिया की सुविधाओं से कोसों दूर हैं। वैश्विकता के इस युग में आदिवासियों पर निरन्तर अत्याचार हो रहा है। सरकार द्वारा घोषित योजना प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संस्कृति के सच्चे रक्षक होने वाले आदिवासी समाज अभाव, अपेक्षा एवं शोषण की त्रासदी को झेल रहे हैं। वन जीवन में प्रकृति के सानिध्य में रहने वाले ज्ञान से कोसों दूर वैज्ञानिक प्रगति से अंजान गरीबी, भूख, अशिक्षा एवम् अंधविश्वास से ग्रस्त इन आदिवासियों के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन को यथार्थ की भावभूमि पर रेखांकित करने का काम साहित्यकार कर रहे हैं। इनमें प्रमुख लेखक हैं– संजीव, रणेन्द्र, मैत्रेयी पुष्पा, प्रतिभा राय, देवेन्द्र सत्यार्थी, महाश्वेता देवी, भगवान दास मोरवाल आदि ने यह प्रयास किया है। समकालीन आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों में 'धूणी तपे तीर', 'जंगल जहाँ शुरू होता है, 'पाँव तले की दूब', 'जंगल के फूल', 'समर शेष है', 'काला पादरी', 'पठार पर कोहरा', 'जो इतिहास में नहीं है', 'गगन घटा घहरानी', 'अल्मा कबूतरी', 'डूब', 'पार', शैलूष', 'जहाँ बाँस फूलते हैं', 'रूपतिल्ली', 'वनतरी', 'सराहना', 'जंगल के आसपास', 'जंगल के गीत', 'मीठा घाटी', 'सीता, मौसी', 'बाजत अनहद ढोल', 'काला पहाड़', 'रेत', 'भारत बनाम इण्डिया', 'हस्तक्षेप', 'जाने कितनी आँखें', 'कगार की आग', 'देवी', 'सु–राज', 'ग्लोबल गाँव के देवता' 'गायब होता देश' आदि उल्लेखनीय हैं।

आज का आदिवासी केवल पीड़ित नहीं, बल्कि संघर्षरत और जागरुक है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों ने आदिवासी समाज को एक पात्र नहीं, बल्कि एक सजीव, सक्रिय और सशक्त इकाई के रूप में प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में आदिवासियों पर अनेक विधाओं में साहित्य का निर्माण हुआ है लेकिन उनमें भी उपन्यास विधा ने सशक्त रूप से आदिवासियों के साहित्य पर प्रकाश डाला है। आदिवासियों को आज भी औद्योगीकरण के नाम पर जल,जंगल और जमीन से निर्वासित किया जा रहा है। आदिवासियों की समस्या को हिन्दी उपन्यासकारों ने हाशिए से निकाल कर मानव रूप में लाने का प्रयास किया है। इस कड़ी में मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास 'कबूतरा' जनजाति पर आधारित शोधमूलक उपन्यास है। 'करनट' की भाँति 'कबूतरा' को भी अपराधजीवी करार दिया गया है। तीन पीढ़ियों की इस कथा में 'कबूतरा' लोगों के संघर्षमय और यातनापूर्ण जीवन का दस्तावी चित्रण मिलता है। सभ्य समाज, जिसे आदिवासियों की भाषा में 'कज्जा' कहा जाता है, इनके द्वारा दी जाने वाली प्रताड़ना का धार्मिक चित्रण 'अल्मा कबूतरी' में देखा जा सकता है। प्रस्तुत उपन्यास के 'कबूतरा' जनजाति के बारें में प्रो. कुंटे लिखते है कि– "यह कथा ही नहीं आज का

यथार्थ है, ग्रामीण भारत दलितों की हालत इन कबूतराओं से अलग नहीं है। सवर्ण समाज तथा उस वर्ग के शिक्षित को यह स्वीकार नहीं कि कबूतरा उनके ज्ञान के अस्त्र–शास्त्रों को प्राप्त करे। शिक्षा से विमुक्त जाति में जाति चेतना से उन्हे डर लगने लगता है। इसी कारण उन्हें शिक्षा से वंचित रखने का प्रयास किया गया है, समाज में निर्मित जाति चेतना का प्रयास किया गया है।"[2]

इस शृंखला में 'रणेन्द्र' द्वारा रचित 'गायब होता देश' इस सदी कि एक आदिवासी विमर्श पर आधारित महत्वपूर्ण कृती है। यह उपन्यास झारखण्ड के 'मुण्डा' आदिवासी समुदाय को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासी समाज की समस्याओं, संकट की स्थिति, कला, संस्कृति को चित्रित किया गया है। उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार विकास के नाम पर आज आदिवासी 'मुण्डा' समाज की संस्कृति एवं सभ्यता का विनाश हो रहा है। किस प्रकार इस आदिवासी जनजाति को विकास के नाम पर उनके ही जल–जंगल–जमीन से खदेड़ा जा रहा है। उसका चित्रण इस उपन्यास को में देखने को मिलता है – "अगर...मगर....लेकिन... परन्तु....पूर्व जमींदार ने 1947 के पहले हुकुमनामा जारी करके आदिवासी किसान से समर्पण सरेंडर का कागज प्राप्त कर लिया हो और उसे गैर–आदिवासी को ट्रांसफर किया हो....। यह था भयानक वायरस।"[3] भूमण्डलीकरण के इस दौर में आज जहाँ मनुष्य छोटी–छोटी जरूरतों की पूर्ति के लिए प्रयासरत है तो दूसरी ओर वनों की अन्धाधुन्ध कटाई आदिवासी मुण्डा समुदाय का असहाय शोषण लूट, पीड़ा, दर्द, विक्षोभ हर तरफ नजर आ रहा है। 'गायब होता देश' के इस लूट अभियान में सिर्फ़ मुण्डा समाज या आदिवासी समाज की सिर्फ जल, जंगल और ज़मीन की ही नहीं बल्कि उनके व्यवसाय, उनकी संस्कृति, समाज, परिवार, सब कुछ नष्ट होता रहा है, उसको चित्रित करते हुए, उसका विरोध इस उपन्यास के अन्तर्गत देखने को मिलता है। मूलतः यह उपन्यास विकास विरोधी गतिविधियों में शामिल है। हाशिए के लोगों के हित के बारे में बात करता है, जो विचार हमें उत्तर आधुनिकता में भी देखने को मिलते हैं।

'सूरज किरन की छाँव' और 'जंगल के फूल' राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यास हैं। 'सूरज किरन की छाँव में कालजयी चित्रकूट क्षेत्र के आदिवासी जीवन, उनमें बढ़ते ईसाई मिशनरियों के प्रभाव, उनके आर्थिक, शारीरिक शोषण आदि की कथा को बंजारी नामक आदिवासी युवती के जीवन–संघर्ष द्वारा रूपायित किया गया है। इसी कड़ी में 'पार' वीरेन्द्र जैन का एक महत्वपूर्ण आदिवासी केन्द्रित उपन्यास है। यह एक तरह से उनके उपन्यास 'डूब' का ही विस्तार है। इसकी कथा भूमि बुन्देलखण्ड अंचल है। यह दो गाँव–खेरा जीरोन की लड़ाई के बीच खण्डित हो रही जीवन पद्धति की कथा को लेकर आया है। उसकी मूल समस्या विस्थापन की समस्या है। 'पार' के आदिवासियों के जीवन का मूल आधार वन और वन की उपज है। किन्तु विकास के नाम पर आज ये वन ही उजड़ रहे हैं।

आदिवासी जीवन–केन्द्रित उपन्यासों में संजीव ठाकुर कृत 'धार' और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास भी उल्लेखनीय हैं। 'धार' में संथाल परगना की कोयला खदानों में काम करने वाले आदिवासियों के जीवन को, उनके दुःख दर्द, उनकी समस्याओं, सेठ ठेकेदारों, माफियाओं, गुण्डों द्वारा हो रहे उनके सर्वग्राही शोषण को संथाल आदिवासी युवती मैना के माध्यम से चित्रित किया गया है, तो जंगल जहाँ शुरू होता है' में 'थारू' आदिवासी जाति के जीवन संघर्ष को दर्शाया गया है जिसमें ठाकुरों और राजनीतिज्ञों के आपसी मिली भगत और आन्तरिक संघर्ष को देखा जा सकता है। पर इन लोगों की टकराहट में मरते तो आदिवासी ही हैं। इनके तमाम संघर्ष और वैरवृत्ति का तोड़ तो अन्ततः नारी–दमन ही है यह कटु सत्य भी यहाँ उजागर हुआ है।

प्रकाश मिश्र का उपन्यास 'जहाँ बाँस फूलते हैं' भी एक नयी भावभूमि को लेकर आता है। इसमें पूर्वोत्तर क्षेत्र के आसाम, मिजोरम, नागालैण्ड, मणिपुर आदि क्षेत्रों के आदिवासी जीवन की विभीषिका को उन क्षेत्रों में व्याप्त उग्रवाद नक्सलवादी–माओवादी आन्दोलन और उनके कारणों की गहरी पड़ताल की गई है। वहाँ के आम आदिवासियों को दोहरी मार झेलनी पड़ती हैं एक तरफ सरकार सेना के जीवन आदि द्वारा उनका शोषण होता है, तो दूसरी तरफ उग्रवादियों के अत्याचार भी उन्हें झेलने पड़ते हैं। इस उपन्यास में यह भी दिखाई देता है कि मिज़ोरम की 'मिज़ो' जनजाति जल, जंगल, जमीन के लिए उन पर होने वाले शोषण एवं शोषण के खिलाफ संघर्ष खड़ा करती है इससे विकास की ओर अग्रसर होने वाले पूंजीपति लोगों के उपभोक्ता वृत्ति के कारण मिज़ोरम के पूरी जीव मंडल पर असन्तुलन की स्थिति पैदा हो जाती है। इसका यथार्थ चित्रण उपन्यासकार ज्वलन्त समस्या के रूप में पाठकों के सामने 'दोला' नामक पात्र के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं– "मिज़ोरम पिछड़ा है, गँवार है। दुखी

है, दरिद्र है। इसे बदलना चाहिए। इसे बदलना तो वाई भी चाहता है। पर वाई भी दो है। एक तो सरकार है, जो नीति बनाती हैः उन्हें वैसा ही छोड़ दो; सिर्फ़ उन्हें लिखाओ–पढ़ाओ और आरक्षण की बदौलत नौकरी दो। सुरक्षा के लिए ज़रूरी हो तो सड़कें बनवा दो। लोग वाक़ई भूखों मरने लगे तो थोड़ा अन्न पहुँचा दो। किन्तु इन्हें छेड़ो नहीं। एक विशाल गणतंत्र की विरासत 'एकता में अनेकता' के उदाहरण स्वरूप इनकी जीवन पद्धति अक्षुण्ण रखो। 'एन्थ्रोपोलोजीकल म्यूज़ियम के पीस' के रूप में। दूसरा, इस नीति को क्रियान्वित करने वाले वाइयों का दल है; जो विकास के लिए मिले पैसे अपनी जेब में रख लेता है, यहाँ का अदरक, चावल, मिट्टी के मोल ले जाकर अपने वतन में सोना बनाता है, यहाँ की सुरा–सुन्दरियों का उपभोग इस तरह करता है कि जैसे मिज़ोरम उसकी ज़मीनदारी हो, उपनिवेश हो और वह इस उपनिवेश का एकमात्र मालिक।"[4]

'ग्लोबल गाँव के देवता रणेन्द्र का उपन्यास है। इसमें 'कीकट' प्रदेश के बिरवे जिले के आदिवासियों के जीवन को चित्रित किया गया है। इसमें 'कीकट' प्रदेश तो है ही, उसके अतिरिक्त छत्तीसगढ़, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, झारखण्ड आदि प्राकृतिक सम्पदा के भण्डार समाज प्रदेशों के आदिवासी लोगों की विकट भयंकर यातनामय जिन्दगी के दर्दनाक चित्र अंकित है। पूर्वोत्तर राज्यों की जो तमाम समस्याएँ हैं– नक्सलवाद, माओवाद आदि समस्याओं का चित्रण उपन्यास में मिलता है। इस उपन्यास में लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि जो प्रदेश बोक्साइट, कोयला, तांबा, यूरेनियम आदि प्राकृतिक सम्पदाओं के खजानों से परिपूर्ण हैं, वहाँ के स्थानीय आदिवासी लोगों को उसका किंचित मात्र भी लाभ नहीं मिला है। प्रस्तुत उपन्यास में शोषित एवं उपेक्षित जीवन बिताने वाले 'असुर' जनजाति का यथार्थ प्रस्तुत करते हुए लेखक कहते हैं– "छाती ठोंक ठोंक कर अपने को अत्यन्त सहिष्णु और उदार करने वाली हिन्दुस्थानी संस्कृति ने असुरों के लिए इतनी जगह नहीं छोडी थी। वे उनके लिये बस मिथकों में शेष थे। कोई साहित्य नहीं, कोई इतिहास नहीं, कोई अजायबघर नहीं। विनाश की कहानियों के कहीं कोई संकेत मात्र भी नहीं।"[5]

उपर्युक्त उपन्यासों के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि आदिवासियों की अनेक जनसमस्याओं को केन्द्र में रखते हुए हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी रचनाधर्मिता को निभाया है। आदिवासी उपन्यासों में इनके गुमनाम इतिहास को खोजने का प्रयास हिन्दी उपन्यासकारों ने किया है। देश की बड़ी आबादी आदिवासियों की है, जो आजाद भारत में समस्याओं से जूझ रही है। हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी केन्द्रित उपन्यासकारों ने इनके मूलभूत समस्याओं को देखा, जाना और उस पर अपनी लेखनी चलायी है।

निष्कर्ष–

समकालीन हिन्दी साहित्य में 'आदिवासी विमर्श' की एक ऐसी विचारधारा बन चुका है, जो न केवल आदिवासी समाज की समस्याओं को उजागर करता है, बल्कि उनके अस्तित्व, अस्मिता और अधिकारों के पक्ष में एक सशक्त आवाज भी बनता है। समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आदिवासी जीवन के भीतर की जटिलताओं, संघर्षों और परिवर्तनशील स्थितियों को बेहद संवेदनशीलता और प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन का यथार्थ, उनके अंतर्मन की पीड़ा, विस्थापन की त्रासदी, सांस्कृतिक आघात तथा शोषण के विविध रूपों के माध्यम से सामने आता है। साथ ही इन उपन्यासों में 'आदिवासी चेतना' का नवोदय और उनका आत्मसम्मान के साथ जीने का स्वप्न भी प्रमुख रूप से उपस्थित हैं। हिंदी आदिवासी उपन्यासों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उपन्यासकारों ने उन पहलुओं को उजागर किया है, जिन पर अब तक किसी ने प्रकाश नहीं डाला था। हिन्दी उपन्यासकार स्पष्ट करते हैं कि, आदिवासी यहाँ के मूल निवासी होकर भी उन्हें उपेक्षितों का जीवन जीना पड़ रहा है। उन्हें औद्योगीकरण के नाम पर जल–जंगल, जमीन से निर्वासित किया जा रहा है। हिन्दी आदिवासी उपन्यास साहित्य पर विचार करें तो यह उपन्यास केवल आदिवासियों के सांस्कृतिक, प्राकृतिक जीवन को व्यक्त नहीं करते बल्कि वैश्वीकरण, बाजारीकरण के युग में आदिवासियों के सामने आ रही नवीन समस्याओं को सामने रखते हैं और उनसे कैसे निपटा जा सकता है यह सुझाव भी देते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आदिवासी साहित्य यात्रा–सं. रमणिका गुप्ता, संस्करण 2008।
2. उपलब्धि 2002 – संपा. सूर्यनारायण रणसुभे,पृष्ठ – 88।
3. गायब होता देश – रणेन्द्र, पृष्ठ –42।
4. जहाँ बाँस फूलते हैं'– श्रीप्रकाश मिश्र, पृष्ठ – 36।
5. ग्लोबल गाँव के देवता – पुस्तक परिचय – रणेन्द्र।

Received: 02 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

स्त्री आत्म कथाएँ

– अर्चना पाण्डेय
शोध छात्रा – हिन्दी विभाग,
राजा हरपाल सिंह (पी.जी.)
कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर –
222175 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
archnatripathi87680@gmail.com

शोध निर्देशक
– डॉ. अजय कुमार
सहायक आचार्य–हिन्दी विभाग,
राजा हरपाल सिंह (पी.जी.)
कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर–
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
ajaykumar11@gmail.com

सारांश

आज भी पुरुष प्रधान समाज में उन्हें अपनी प्रतिष्ठा के खोने का डर है, किन्तु कुछ स्त्रियाँ स्वयं को आगे रखकर अपनी पीड़ा को समाज के सामने उड़ेल देना चाहती हैं। जैसे लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी'' की आत्मकथा (मैं किन्नर हूँ– 2015) आई जिसमें वो अपने पिता के द्वारा कैसे घर से निकाले गए राजू नाम होने पर स्वयं की कैसे पहचान कर पाती है और समाज से लड़कर अम्मा की सहायता से शिक्षा प्राप्त कर अपने किन्नर समाज की उन्नति करती हैं। आशा है आने वाले समय में इसी प्रकार स्त्रियाँ आत्मकथा लेखन में अपनी आप बीती निर्भय एवं निष्पक्ष होकर रख पाएंगी और हिन्दी साहित्य को समृद्ध करेंगी। मनुस्मृति के अनुसार– भाई, पिता या पुत्र के ही संरक्षण में स्त्रियों को वयनुरूप जीने एवं भरण–पोषण का अधिकार था। कहीं भी उनकी स्वतंत्रता स्वीकार्य नहीं थी। वैदिक काल के पश्चात कुछ स्त्रियों की गाथाएं रची गईं जैसे पंचकन्या ''दुर्गा स्वरूप'' की कहानी लेकिन यह आत्मकथा न होकर स्त्रियों की जीवन शैली पर थी। आत्मकथा लेखन के लिए स्त्रियाँ अपने मनःस्थिति को तैयार ही नहीं कर पा रही थीं। उन्हें दासता की जंजीर को तोड़ना एक अपराध सा लगता था। उन्हें अपने उसी जीवन को अपना कर्म एवं भाग्य मान लिया और अपमान एवं तिरस्कार जैसे व्यवहार को अमृत की घूँट मानकर पान करती रहीं।

भारतीय संस्कृति में मानव निर्माण के साथ दो जातियों का निर्माण हुआ स्त्री एवं पुरुष। प्रारम्भ में स्त्री पुरुष के ही समान अधिकार युक्त थी किन्तु काल के गर्भ में प्रणीत सत्य धीरे–धीरे स्त्री को कई बन्धनों में बाँधता चला गया। स्त्री प्रकृति की सबसे सुन्दर संरचना है जो सौंदर्य, प्रेम, करुणा दया, ममता, त्याग धर्म एवं शीलता की प्रतिमूर्ति है, उसे धीरे–धीरे समाज से विरस्कृत किया जाने लगा तथा बाल विवाह, सती प्रथा, अशिक्षा, पर्दा प्रथा जैसे स्त्री धर्मो मानकर अपनाने पर मजबूर किया जाने लगा। उसकी कोमलता को बर्बरता से रौंदा जाने लगा स्त्री को मात्र उपभोग की सामग्री एवं सेवार्थ दासी समझा जाने लगा और उसके गुणों को कौशल को, बुद्धि को रसोई एवं घर की चाहरदीवारों तक समेट दिया गया। उस पर होने वाले अत्याचार को भाग्य का नाम दे दिया गया तथा उसके कर्मठता को कर्तव्य मात्र समझा गया। धीरे–धीरे स्त्रियाँ इस तरह असमय कर्तव्यबोध एवं बंधनों में बँध गई कि इन जंजीरों को वो धर्म मानकर स्वतः प्रेमपूर्ण ढंग से उसका निर्वहन करने लगीं। पर हाय रे नियति एवं हाय रे समाज, धर्मपरायण स्त्रियों को भी समाज ने बख्सा नहीं चाहे वो माता सीता हों या मीरा, लक्ष्मीबाई हो या द्रौपदी हर जगह धर्म के नाम पर उनके अधिकारों का हनन एवं शोषण किया जाता रहा है। ऐसी स्थिति में साहित्य की तरफ रुझान कर पाना कठिन था।

आत्मकथा तो दूर की बात है।

पहले स्त्रियों की व्यथा पुरुष कवियों द्वारा ही कर दी जाती थी जैसे– मैथिलीशरण गुप्त की पंक्ति–

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में है पानी।"

गुप्त जी की एक और पंक्ति–

"तो क्या करूँ, कर ही क्या सकती हूँ,
और मैं रो रोकर मरना ही नारी लिखा लाई है।"

इसी क्रम में जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध पंक्ति देखिये–

"संकल्प अश्रु–जल से अपने
तुम दान कर चुकी पहले ही
जीवन के सोने से सपने
नारी! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास–रजत–नभ पग तल में।
पीयूष–स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।।"

इसी क्रम में सुमित्रा नन्दन पंत जी की पंक्ति देखिये–

"मुक्त करो नारी को मानव!
चिर बंदिनी नारी को युग युग की बर्बर कारा से,
जननी, सखी प्यारी को।"

उपरोक्त सभी पंक्तियों में नारी को शोषण से मुक्त होने के लिए प्रार्थना करना पड़ रहा है। पुरुष को किन्तु स्त्री फिर भी अपने साहस को नहीं जुटा पा रही थी की वे अपनी पीड़ा वेदना, भावों को कागज पर उतार सके वे अब भी समाज के लोक–लाभ के बेड़ियों को पुष्पहार की भाँति स्वयं पहने हुए थी।

मनुस्मृति के अनुसार– भाई, पिता या पुत्र के ही संरक्षण में स्त्रियों को वयनुरूप जीने एवं भरण–पोषण का अधिकार था। कहीं भी उनकी स्वतंत्रता स्वीकार्य नहीं थी। वैदिक काल के पश्चात कुछ स्त्रियों की गाथाएं रची गईं जैसे पंचकन्या "दुर्गा स्वरूप" की कहानी लेकिन यह आत्मकथा न होकर स्त्रियों की जीवन शैली पर थी। आत्मकथा लेखन के लिए स्त्रियाँ अपने मनःस्थिति को तैयार ही नहीं कर पा रही थीं। उन्हें दासता की जंजीर को तोड़ना एक अपराध सा लगता था। उन्हें अपने उसी जीवन को अपना कर्म एवं भाग्य मान लिया और अपमान एवं तिरस्कार जैसे व्यवहार को अमृत की घूँट मानकर पान करती रहीं। किसी भी दुर्व्यवहार का उन्होंने विरोध नहीं किया जब भी किसी महिला द्वारा ऐसे करने का प्रयत्न भी किया तो उन्हें कुलटा, कलंकिनी, व्यभिचारिणी के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। धीरे–धीरे समय में परिवर्तन हुआ और सावित्रीबाई फूले ने 1848 ई. में पुणे में पहला बालिका विद्यालय खोलकर शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं को आगे बढ़ाया। महिलाएँ शिक्षित तो हो रही थीं फिर भी अपनी आप बीती को आत्मकथा का रूप नहीं दे पा रही थीं। कहीं न कहीं अभी भी रूढ़िगत सोच ने उन्हें जकड़ रखा था किन्तु भारतीय मूल की बंगाली महिला लेखिका "रस सुंदरी" देवी ने "आमार–जीवन" नाम से पहली आत्मकथा 1876 ई. में लिखी। यह आत्मकथा 19वीं ई. सदी के भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति के बारे में बताती है। रस सुन्दरी देवी ने एक रुढ़िवादी बंगाली घराने में बाल वधू के रूप में जो जीवन जिया जो यातनाएँ सही उसका वर्णन बड़ी ही दिलेरी से किया है। यह आत्मकथा "अमार जीवन" (मेरी जीवन) दो भागों में प्रकाशित हुई जिसके पहले भाग में 16 छोटी–छोटी कहानियाँ है, जो उनकी आत्मकथा का वर्णन करती हैं, दूसरी 1906 ई. में प्रकाशित भाग है जिसमें 15 छोटी–छोटी रचनाएँ हैं जिनमें से प्रत्येक के पहले एक समर्पित कविता है। उनके आत्मकथा के लेखन के फलस्वरूप स्त्रियों में अपनी आप बीती एवं उजाड़ जीवन को व्यक्त करने का साहस प्राप्त हुआ और इस प्रकार आत्मकथा लेखन के प्रति स्त्री साहित्यकार आगे आईं। किन्तु आत्मकथा हर स्त्री द्वारा लिखना क्या संभव था, या किसी भी व्यक्ति द्वारा आत्मकथा लिखना आसान है शायद नहीं क्योंकि अपने जीवन को सत्यता के साथ समाज की एवं परिवार की परवाह किए बिना कुछ ऐसे पहलुओं को उधेड़ना जो शायद साहित्यकार के अलावा अन्य किसी को न पता हो ऐसे पक्ष को समाज के सामने प्रकाश में लाना जो अत्यन्त व्यक्तिगत कठिन होता है, कहीं वह शर्मिन्दगी का शिकार हो जाता है तो कहीं लोक लाज का भय, तो कहीं सामाजिक प्रतिष्ठा आहत होने का भय होता है। इन सभी भाव विचारों से ऊपर आकर सत्यबोधता के साथ अपनी आप बीती किसी महिला के द्वारा लिखना यथार्थ में प्रशंसनीय है। रससुन्दरी देवी के प्रयास के फलस्वरूप अन्य कई महिला साहित्यकारों ने भी अपनी आप बीती लिखी।

हिन्दी साहित्य में महिलाओं द्वारा लिखी गई कुछ आत्मकथाएँ–दोहरा अभिशाप कौशल्या वैसन्त्री, अन्या से

अनन्या तक प्रभात्वेतान इत्यादि हैं। किन्तु इस परम्परा में ''रेत की मछली'' कान्ता भारती द्वारा रचित स्त्री आत्मकथा एवं रमणिका गुप्ता की ''आप हुदरी'' एवं दूसरा खण्ड ''हादसे'' आत्मकथा के क्षेत्र में सत्य को उजागर करने वाली और स्त्री व्यवहार की एक नवीन पक्ष को प्रकाशित करती है। आप हुदरी में जहाँ एक जिद्दी लड़की जो मिलिट्री आफिसर की बेटी है। अपने ढंग से स्वतंत्रतापूर्ण जीवन जीने के लिए तैयार है और राजपूत की बेटी होकर ''गुप्त'' से ब्याह किया और अन्ततः पति से भी विद्रोह करके मजदूरों के जीवन संघर्ष में हाथ बंटाती है। कान्ता भारती जी ने ''गुनाहों का देवता'' जैसे प्रेमपूर्ण उपन्यास कर्ता के विरुद्ध उनके सत्य को उजागर करती है कि कैसे धर्मवीर भारती उनके हाथों को सिगरेट से जला दिया करते थे। इसी कड़ी में कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा ''लगता नहीं है दिल मेरा'' में उन्होंने जीवन के अच्छे बुरे अनुभवों को दो–टूक शब्दों में कहा– ''मैंने अपनी आपी बीती को बिल्कुल तटस्थ मुद्रा के साथ अभिव्यक्त किया है– ''मेरे मरघट मधुवन नहीं बने परन्तु यहाँ जलती भावनाओं के शव' जिन्दगी की ओर खींच ले जाते हैं।'' इसी कड़ी में पंजाबी साहित्यकार जिनकी आत्मकथा ''रसीदी टिकट'' नाम से बहुचर्चित हुई नाम आप स्वयं समझ गए होंगे, जी हाँ अमृता प्रीतम जी जो कहती हैं कि नफरत के दायरे पर भी तरस आता है उनको, क्योंकि अल्प आयु में माँ के गुजर जाने से ईश्वर से उनकी आस्था ही उठ गयी। वहीं 16 वर्षों की आयु में प्रीतम सिंह से विवाह एवं अलगाव के उपरान्त भी उनका नाम अमृता के साथ प्रीतम जुड़ा रहा। अमृता प्रीतम एकनिष्ठा का बोध कराते हुए ऐसे प्रेम कहानी का वर्णन किया जो शायद किसी सामान्य स्त्री के द्वारा व्यक्त कर पाना कठिन था। साहिर लुधियानवी के द्वारा सिगरेट पीकर छोड़े गए भाग को ऐशदान से उठाकर पुनः उसे जलाकर साहिर का एहसास करना, या स्कूटर पर चलते हुए इमरोज की पीठ पर साहिर का नाम लिखना हर तथ्य में वो अपने प्रेम को उत्कृष्टता तो प्रदान करती हैं, लेकिन इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन अपनी आत्मकथा में करना बड़ा ही साहस का कार्य था ना, उन्होंने समाज की चिन्ता की ना लोक लाज की अपने जीवन को उन्होंने पन्नों पर जीवन्त कर दिया। अमृता प्रीतम जी की आत्मकथा उन साहित्य प्रेमियों के लिए प्रेरणाप्रद है जो लोकलाज के भय से अपने जीवन की कुछ रहस्य को अनछुआ ही रहने देते हैं। वे अपनी प्रतिष्ठा के कम होने की सम्भावना से ग्रसित रहते हैं। इसी कड़ी में पद्मा सचदेव की आत्मकथा ''बूँदबावड़ी'' जो दुःख एवं सुख को व्यक्त करने वाली रेखा है– बचपन में ही पिता की छाया उठ जाना, माता की विवशता एवं भावुकता में एक घोर पियक्कड़ कवि का पति के रूप में वरण, ससुराल वालों का घोर अमानवीय व्यवहार, तीन वर्षों की लम्बी जानलेवा बीमारी, पुर्नविवाह सरदार सुरिन्दर जी से 1984 ई. में इन्दिरा गाँधी जी की हत्या एवं उस परिवेश में सिहरता हिंसात्मक जीवन व मरण के बीच के क्षणों को भोगकर जीने का संकल्प सचमुच! पद्मा जी ने प्राणों का बूँद–बूँद रस निचोड़ दिया है। पद्मा जी ने प्रश्न किया है कि ''स्त्री को मुक्ति किससे चाहिए? अपने बच्चों से? आपने पिता से या उस घर से जिसमें तिनका–तिनका जोड़ कर उसने गृहस्थी संजोयी है। स्त्री को मुक्ति उन बुराइयों से चाहिए जो आज पोषणता के रूप में जड़ हो गई हैं।

आज भी ज्यादातर स्त्रियाँ अपनी आत्मकथाओं को सत्यता के साथ लिख नहीं पातीं एवं जो सत्यता के साथ आत्मकथा का सृजन कर भी लेती हैं तो उसे प्रकाशित करवाने का साहस नहीं जुटा पाती क्योंकि स्त्रियों के जीवन के हर अवस्थाओं में कुछ न कुछ ऐसी घटना घटित होती रही हैं जिसका वर्णन करना सामान्य स्त्री के लिए सम्भव नहीं है। हर अवस्था में चाहे बाल्यकाल हो, यौवन काल हो या वृद्धावस्था हो हर चरण एक नवीन अनुभव शोषण एवं सुख– दुःख के पायदान से गुजरते हुई उसे आत्मकथा के रूप में सृजित करना बड़े ही साहस का कार्य है। आज हमारा समाज बहुत आगे बढ़ गया है। स्त्रियों को यथोचित स्थान भी प्राप्त हो रहा है, फिर भी कहीं कुछ कमी सी है, कुछ पहलू अनछुए से हैं। कुछ कार्य सरल एवं सहज होते हुए भी कठिन से प्रतीत होते हैं, पर स्त्रियाँ अब जाग चुकी हैं, सत्यता को मान चुकी हैं, मानव मन को पहचान चुकी हैं, और अपने भावों को कलम की ताकत के साथ उकेरने लगी हैं। वो जान चुकी हैं कि अगर हम आज अपने जीवन को उद्घाटित नहीं करेंगे तो आने वाले समय में स्त्री उन अनुभवों को प्राप्त करने से वंचित रह जाएगी एवं आने वाली स्त्री पीढ़ियाँ भी शोषण का शिकार होती रहेगी। इस लिए उन्होंने कलम को हथियार बनाया और मैदान में आ गई हैं और संकोच के भाव को त्याग कर इस विधा में रचनाएँ करने लगी हैं।

स्त्री आत्मकथा का विकास न होना इस बात की ओर भी संकेत करता है कि पुरुषों की बराबरी की बात

करने वाले समाज में आज भी बराबरी की कवेल बात की जाती है। स्वतंत्रता नहीं दी जाती स्त्रियाँ अपनी भावनाओं को अपने ज़ेहन में इस कदर दफना लेती हैं कि वही जीवन उन्हें प्रिय लगने लगता है।

यही कारण है कि आत्मकथा साहित्य के प्रारम्भिक युग (सन् 1873 से 1927 ई. तक) कोई भी आत्मकथा नहीं लिखी गई है। जब कि बनारसीदास जैन 1641 ई. से श्रीधर पाठक की स्वजीवन (1927 ई.) में आ चुकी थी। उपन्यास के द्वितीय युग (1928 ई. से 1946 ई.) में श्री निवासदास से बाबू गुलाबराय तक की आत्मकथा आ चुकी थी। आत्मकथा के उत्कर्ष काल में मात्र दो आत्मकथाएँ जानकी देवी बजाज को मेरी जीवन यात्रा तथा अतीत की परछाइयाँ बाद में परिवर्तित नाम रसीदी टिकट 1962 ई. में अमृता प्रीतम की आई।

स्त्री आत्मकथा फिर कुछ विकास की स्थिति में आई और प्रतिमा अग्रवाल (दस्तक जिन्दगी की) 1990, मोड़ जिन्दगी का 1996, बूँद बावड़ी – पद्मा सचदेव, हादसे रमणिका गुप्ता पिंजरे की मैना – चन्द्रकिरण, सोनेरेक्सा, और औरत कृष्णा अग्निहोत्री, आपहुदरी एक जिद्दी लड़की की कथा। कस्तूरी कुण्डल बसै – मैत्रेयी पुष्पा, अवरोह, आरोह–सुषमा बेदी, जमाने में हम (निर्मला जैन) की आई। इतनी स्त्री आत्मकथाएँ प्रकाशित होने के बाद भी स्त्रियाँ स्वयं के जीवन को आज भी चिंतित करने में हिचकिचाहट होती है।

आज भी पुरुष प्रधान समाज में उन्हें अपनी प्रतिष्ठा के खोने का डर है, किन्तु कुछ स्त्रियाँ स्वयं को आगे रखकर अपनी पीड़ा को समाज के सामने उड़ेल देना चाहती हैं। जैसे लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी'' की आत्मकथा (मैं किन्नर हूँ 2015) आई जिसमें वो अपने पिता के द्वारा कैसे घर से निकाले गए राजू नाम होने पर स्वयं की कैसे पहचान कर पाती है और समाज से लड़कर अम्मा की सहायता से शिक्षा प्राप्त कर अपने किन्नर समाज की उन्नति करती हैं।

आशा है आने वाले समय में इसी प्रकार स्त्रियाँ आत्मकथा लेखन में अपनी आप बीती निर्भय एवं निष्पक्ष होकर रख पाएंगी और हिन्दी साहित्य को समृद्ध करेंगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रेमचन्द, मुंशी, गोदान, भारत : प्रथम प्रकाशन, 1936।
2. शर्मा, रामविलास, प्रेमचन्द और उनका युग, पहला छात्र संस्करण, 1993, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 98–99।
3. शर्मा, रामविलास, प्रेमचन्द और उनका युग, पहला छात्र संस्करण, 1993, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या –3।
4. शर्मा, रामविलास, प्रेमचन्द, पहला संस्करण, 1941, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 94।
5. खेतान, प्रभा (अनु.), 2002, स्त्री उपस्थिति, नयी दिल्ली : हिन्दी पॉकेट बुक सेन्टर, पृष्ठ संख्या – 45।
6. जोशी, गोपा (2015), भारत में स्त्री असमानता, नयी दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या–14।
7. यादव, राजेन्द्र (2015), आदमी की निगाह में औरत, नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या – 15।
8. प्रेमचन्द, मुंशी, गोदान, भारत : प्रथम प्रकाशन : 1936।
9. प्रेमचन्द, मुंशी, कर्मभूमि भारत : 1932।
10. प्रेमचन्द, मुंशी, गोदान, भारत : प्रथम प्रकाशन : 1936।
11. प्रेमचन्द, मुंशी, गबन, भारत : 1928।
12. प्रेमचन्द, मुंशी, निर्मला, भारत : 1925–27।
13. प्रेमचन्द, मुंशी, रंगभूमि भारत : 1924–25।
14. जोशी, गोपा (2015), भारत में स्त्री असमानता, पृष्ठ संख्या – 11–12।

ISSN : 2394-4366

Received: 28 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा हेतु किये गये प्रावधानों का अध्ययन

– डॉ. रश्मि सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर –
समाजशास्त्र विभाग,
महिला महाविद्यालय (पी.जी.)
कालेज, किदवई नगर, कानपुर
– 208011 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
rashmikh55@gmail.com

सारांश

बालिका शिक्षा किसी भी समाज के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास की आधारशिला मानी जाती है। भारत में ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से बालिकाओं की शिक्षा, विशेष रूप से प्राथमिक स्तर पर, अनेक चुनौतियों से ग्रस्त रही है। परिवारिक, सामाजिक और आर्थिक बाधाओं के कारण बालिकाओं की शिक्षा में लैंगिक असमानताएँ लगातार देखने को मिली हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) भारत की शिक्षा व्यवस्था में एक ऐतिहासिक सुधार के रूप में सामने आई है। यह नीति समानता, गुणवत्ता और समावेशन पर आधारित है और बालिका शिक्षा को प्राथमिक स्तर पर सशक्त बनाने हेतु कई महत्वपूर्ण प्रावधान करती है। इसमें शिक्षा संरचना में परिवर्तन, प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (ECCE), मातृभाषा में शिक्षा, सुरक्षित विद्यालय वातावरण, लैंगिक समावेशन निधि (Gender Inclusion Fund), समावेशी शिक्षा और ड्रॉप आउट दर कम करने जैसे उपाय शामिल हैं।

मुख्य शब्द– मातृभाषा, लैंगिक असमानता, बाल्यावस्था देखभाल।

प्रस्तावना–

शिक्षा मानव विकास का सबसे प्रभावी साधन है। बालिका शिक्षा समाज और राष्ट्र के विकास का आधार मानी जाती है। यदि समाज की बालिकाएँ शिक्षित हों, तो इसका प्रभाव परिवार, समाज और राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भारत में शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति हुई है, परन्तु प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा कई कारणों से प्रभावित रही है। सामाजिक रूढ़ियाँ, लैंगिक भेदभाव, गरीबी, घरेलू उत्तरदायित्व, बाल विवाह और विद्यालयों की अपर्याप्त संरचना मुख्य बाधाएँ रही हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार ने बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सर्व शिक्षा अभियान (SSA), मध्याह्न भोजन योजना, बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ जैसी योजनाएँ लागू कीं। इन प्रयासों से नामांकन में वृद्धि हुई, लेकिन गुणवत्ता, सीखने की निरन्तरता और ड्रॉपआउट दर में अपेक्षित सुधार नहीं दिखा। इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 2020 को लागू किया गया। यह नीति बालिका शिक्षा को सशक्त, समावेशी और गुणात्मक बनाने की दिशा में एक दूरदर्शी कदम है। नीति का उद्देश्य केवल बालिकाओं का विद्यालय में नामांकन बढ़ाना नहीं है, बल्कि उन्हें सशक्त, आत्मनिर्भर और सामाजिक रूप से संवेदनशील नागरिक बनाना है।

अध्ययन के उद्देश्य–

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा से सम्बन्धित प्रावधानों का अध्ययन करना।

2. प्राथमिक स्तर पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के संभावित प्रभावों का मूल्यांकन करना।

3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के क्रियान्वयन में संभावित चुनौतियों और सामाजिक बाधाओं की पहचान करना।

शोध प्रविधि–

यह शोध वर्णनात्मक प्रविधि पर आधारित है। तथ्यों का संकलन द्वितीयक श्रोतों जैसे– शैक्षिक पत्रिकाएँ, पुस्तकें और शोध–पत्र आदि के माध्यम से किया जाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 2020 में प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा हेतु प्रावधान–

1. 5 + 3 + 3 + 4 शिक्षा संरचना–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति –2020 ने 10+2 संरचना को बदलकर 5 + 3 + 3 + 4 संरचना लागू की। 3–8 वर्ष की आयु को Foundational Stage में शामिल किया गया है। इससे बालिकाएँ प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़ती हैं और सीखने की क्षमता का विकास प्रारम्भिक स्तर से होता है।

2. प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (ECCE)–

3–6 वर्ष की बालिकाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण ECCE सुनिश्चित किया गया है। आँगनवाड़ी केन्द्र और प्राथमिक विद्यालयों के माध्यम से पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षा का समन्वय किया जाएगा। इससे कुपोषण और सीखने में कमी जैसी समस्याओं को कम करने में मदद मिलेगी।

3. मातृभाषा में शिक्षा–

कक्षा 5 तक मातृभाषा में शिक्षा देने का प्रावधान बालिकाओं के समझ, अभिव्यक्ति और आत्मविश्वास को बढ़ाने में सहायक है। ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों की बालिकाओं के लिए यह व्यवस्था विशेष लाभकारी है।

4. बालिका–अनुकूल एवं सुरक्षित विद्यालय–

विद्यालयों में अलग शौचालय, स्वच्छ पेयजल, सुरक्षित परिसर और स्थानीय उपलब्धता सुनिश्चित की गई है। यह प्रावधान बालिकाओं की सुरक्षा और स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है।

5. लैंगिक समावेशन निधि–

लैंगिक समावेशन निधि सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी बालिकाओं को शिक्षा में समान अवसर प्रदान करती है। इसका उद्देश्य नामांकन, उपस्थिति और शिक्षा की निरंतरता बढ़ाना है।

6. ड्रॉपआउट दर कम करना–

छात्रवृत्ति, पोषण योजनाएँ, अभिभावक और सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से बालिकाओं को स्कूल से जोड़े रखने की व्यवस्था की गई है।

7. समावेशी शिक्षा–

अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक और विशेष आवश्यकता वाली बालिकाओं के लिए विशेष शिक्षा एवं सहायक उपाय सुनिश्चित किए गए हैं।

8. शिक्षक प्रशिक्षण और लैंगिक संवेदनशीलता–

शिक्षकों को लैंगिक समानता और बालिका शिक्षा के प्रति संवेदनशील बनाने हेतु प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा।

9. डिजिटल माध्यमों से शिक्षा–

DIKSHA प्लेटफॉर्म, रेडियो, टीवी और ऑनलाइन सामग्री के माध्यम से दूरदराज़ क्षेत्रों में बालिकाओं तक शिक्षा पहुँचाई जा सकेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 2020 का बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा पर प्रभाव–

1.नामांकन और उपस्थिति में वृद्धि– 5 + 3 + 3 + 4 संरचना और ECCE से बालिकाएँ शिक्षा प्रणाली से प्रारम्भिक स्तर पर जुड़ेंगी। UNICEF और UNESCO की रिपोर्टों के अनुसार– प्रारम्भिक वर्ष में शिक्षा प्राप्त करने वाली बालिकाओं में कक्षा 1 से 5 तक ड्रॉपआउट दर में 30 प्रतिशत तक कमी देखने को मिलती है।

2. शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार– मातृभाषा और ECCE आधारित शिक्षा से बालिकाओं में पढ़ने, लिखने और संख्यात्मक कौशल में सुधार होगा। NCERT के अध्ययन के अनुसार– जो बालिकाएँ ECCE प्राप्त करती हैं उनकी सीखने की क्षमता 35–40 प्रतिशत अधिक होती है।

3. सामाजिक और आर्थिक बाधाओं में कमी– Gender Inclusion Fund, छात्रवृत्ति और पोषण योजनाएँ बालिकाओं को शिक्षा की मुख्यधारा में लाने में मदद करेंगी। उदाहरण के लिए– बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ अभियान से विद्यालय में बने रहने की दर में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

4. बालिकाओं का सशक्तिकरण और

आत्मविश्वास– नियमित विद्यालय सहभागिता, मातृभाषा में शिक्षा और सह–पाठ्यक्रम गतिविधियाँ बालिकाओं का आत्मसम्मान, नेतृत्व क्षमता और सामाजिक भागीदारी बढ़ाती हैं।

5. समावेशी शिक्षा और लैंगिक समानता– अनुसूचित जाति, जनजाति, विशेष आवश्यकता वाली बालिकाओं और अल्पसंख्यक समूह की बालिकाओं को समान अवसर मिलते हैं। इससे समाज में लैंगिक असमानता कम होती है और भविष्य में बालिकाएँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनती हैं।

6. डिजिटल शिक्षा– DIKSHA, टीवी, रेडियो और डिजिटल प्लेटफॉर्म से दूरदराज़ क्षेत्रों की बालिकाओं तक शिक्षा पहुँच सकेगी, जिससे शिक्षा में असमानता घटेगी और सीखने के अवसर बढ़ेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के क्रियान्वयन की चुनौतियाँ–

1. अवसंरचना की कमी– ग्रामीण और दूरदराज़ क्षेत्रों में पर्याप्त स्कूल भवन, शौचालय, पेयजल, पुस्तकालय और खेल सामग्री नहीं हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार– लगभग 40 प्रतिशत विद्यालयों में बालिका शौचालय उपलब्ध नहीं हैं।

2. प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी– शिक्षकों की संख्या और गुणवत्ता नीति के लक्ष्यों को प्रभावित करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी और प्रशिक्षण की अनुपलब्धता एक बड़ी चुनौती है।

3. वित्तीय संसाधनों की सीमाएँ– लैंगिक समावेशन निधि और अन्य योजनाओं के लिए पर्याप्त बजट आवश्यक है। यदि बजट अपर्याप्त रहेगा तो नीति के उद्देश्यों का क्रियान्वयन बाधित होगा।

4. सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँ– बाल विवाह, घरेलू उत्तरदायित्व, परिवार का विरोध और लैंगिक रूढ़ियाँ शिक्षा में बाधा उत्पन्न करती हैं।

5. डिजिटल विभाजन– ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और स्मार्ट डिवाइस की कमी डिजिटल शिक्षा में असमानता उत्पन्न करती है।

6. निगरानी और मूल्यांकन की कमी– नीति के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए निरन्तर निगरानी और मूल्यांकन आवश्यक है।

7. बहुभाषी शिक्षा का क्रियान्वयन– मातृभाषा में शिक्षा के लिए सामग्री निर्माण, शिक्षक प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम की उपयुक्तता सुनिश्चित करना चुनौतीपूर्ण है।

निष्कर्ष–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बालिका शिक्षा को सशक्त बनाने के लिए दूरदर्शी, समावेशी और परिणामोन्मुखी नीति है। यह नीति समानता, समावेशन और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के सिद्धान्तों पर आधारित है। उचित क्रियान्वयन, बजट प्रावधान और सामाजिक सहयोग से यह नीति भारत में बालिका शिक्षा के क्षेत्र में सकारात्मक और स्थायी परिवर्तन ला सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) – मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ।
2. पाठक,पी. डी. (2008) – भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।
3. डॉ. शिवदत्त (2012) – बुनियादी शिक्षा की अवधारणा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. पाठक सच्चिदानन्द (2021) – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के महत्पूर्ण प्रावधान : एक अध्ययन – Multidisciplinary Academic Research- 2021;18(6) : 216–220.

ISSN : 2394-4366

Received: 04 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

राष्ट्रीय विकास और सुरक्षा में मीडिया की भूमिका

– डॉ. अनिल कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर –
सैन्य अध्यन विभाग,
डी.ए–वी. कॉलेज, कानपुर, 208001
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
anilsingh7.kanpur@gmail.com

सारांश

राष्ट्रीय विकास को प्रभावी ढंग से प्रभावित करने के लिए मीडिया का स्वतंत्र और निष्पक्ष होना आवश्यक है। स्वतंत्र मीडिया जनता की आवाज बनता है, जनमत का निर्माण करता है और सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करता है। इसी प्रकार, यह गरीबों को सशक्त बनाता है, विकास को गति देता है और यह सुनिश्चत करता है कि लोगों की बुनियादी सामाजिक जरूरतें पूरी हों। मीडिया की स्वतंत्रता के साथ–साथ यह सुनिश्चित करता है कि लोगों की बुनियादी सामाजिक जरूरतें पूरी हों। मीडिया की स्वतंत्रता के साथ–साथ यह सुनिश्चित करना होगा कि राष्ट्रीय विकास में योगदान दिया जाए। समाज में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चौथे स्तम्भ के रूप में, वे सरकार के तीनों अंगों की गतिविधियों पर नियंत्रण और संतुलन बनाए रखते हैं। एजेण्डा निर्धारित करने वाले के रूप में, वे सार्वजनिक एजेण्डा के मुद्दों को प्रभावित करते हैं, सूचना के संरक्षक के रूप में, वे तय करते हैं कि जनता तक कौन सी जानकारी पहुँचेगी प्रहरी के रूप में, वे तय करते हैं कि जनता तक कौन सी जानकारी पहुँचेगी प्रहरी के रूप में, वे शक्तिशाली हितों के विरुद्ध जनता के हितो का प्रतिनिधित्व करते हैं और गुणक के रूप में वे सैन्य कमाण्डरों की युद्ध क्षमता को बढ़ाते हैं।

''मीडिया शब्द लैटिन शब्द ''मीडियम'' से लिया गया है, और इसका प्रयोग सामूहिक संज्ञा के रूप मे टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र, फिल्म इंटरनेट आदि को संदर्भित करने के लिए किया जा सकता है। इसके अलावा, मीडिया को उच्च–परिभाषा संचार चैनल के रूप मे परिभाषित नहीं किया गया जाता है। जैसे कि प्रिंट या रेडियो, जो एक ही संवेदी रिसेप्टर पर केन्द्रित होते हैं।

संचार मौखिक या लिखित हो सकता है, औपचारिकता या अनौपचारिक, शब्दिक या गैर शब्दिक, पारम्परिक या आधुनिक। चाहे इसका रूप कोई भी हो, संचार का उद्देश्य एक पक्ष से दूसरे पक्ष तक सूचना पहुँचाना हैं। स्रोत, संदेश, माध्यम, प्राप्तकर्ता ओर प्रभाव संचार के मुख्य को जनसंचार कहते हैं। संचार के अनेक तरीके हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से माध्यम कहा जाता है। राष्ट्रीय चरित्र और सुरक्षा के विकास मे माध्यमों की महत्वूर्ण भूमिका होती है।

राष्ट्रीय विकास में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दे शामिल हैं। सामाजिक विकास और मुद्दों में मीडिया भ्रष्टाचार से लड़ने नशीली दवाओं के खिलाफ युद्ध करने, आपदाओं पर उपयोगी जानकारी प्रदान करने और साम्प्रदायिक संघर्षों को रोकने, शिक्षा और जनसंख्या निंयत्रण मे मदद कर सकता है। मीडिया विशेष रूप से जन स्वास्थ्य, विशेषकर बच्चों की

बीमारियों के खिलाफ और स्वास्थ पर्यावरण के पक्ष में उपयोगी है, राजनीतिक विकास में, मीडिया विशेष रूप से लोकतंत्र और सुशासन राजनीतिक पारदर्शिता, विदेश नीति और और मानवाधिकार, आतंकवाद के खिलाफ युद्ध और जनसम्पर्क के क्षेत्रों मे योगदान देता है। आर्थिक विकास और मुद्दों में, मीडिया व्यवसाय और निवेश को फलने–फूलने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, ये समाज के आर्थिक रूप से वंचित समूहो को सशक्त बनाने मे भी सहायता करते हैं।

1. भ्रष्टाचार –

भ्रष्टाचार को सार्वजनिक शक्ति का दुरुपयोग करके व्यक्तिगत लाभ या किसी ऐसे समूह के लाभ के लिए किया गया कार्य माना जाता है, जिसके प्रति व्यक्ति निष्ठा रखता है। मीडिया सरकार और कॉपोरेट जगत का दोनों में भ्रष्टाचार को उजागर कर सकता है, मीडिया का ध्यान आकर्षित करना व्यवहार परिवर्तन के लिए सशक्त प्रोत्साहन प्रदान कर सकता है, इसलिए प्रतिष्ठा सम्बन्धी दण्ड और पुरस्कार मतदाताओं के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करने मे शक्तिशाली साबित हो सकते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें मीडिया ने भ्रष्ट नेताओं को सत्ता से बेदखल करने में योगदान दिया, जैसे– इक्वाडोर के राष्ट्रपति बुकाराम, वेनेजुएला के पेरेज, ब्राजील के कोलर, फिलीपींस के एस्ट्राडा और अमेरिका के निक्सन।

2. साम्प्रदायिक संघर्ष–

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि संघर्षों से सम्बन्धित घटनाओं की रिपोटिंग करते समय मीडिया को पूर्वागृह पर संतुलन टकराव पर संचार और अज्ञानता पर अन्तर्दृष्टि को कैसे बढ़ावा देना चाहिये, यह मीडिया के लिए महत्वपूर्ण चुनौती है। रिर्पोटिंग में पूर्वाग्रह से मुक्त होकर, मीडिया राजनीतिक स्थिरता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, विशेष रूप से भारत और नाइजीरिया जैसे बहुजातीय, बहुधार्मिक और विविध समाजों में इसलिए मीडिया को जनता की नब्ज समझना चाहिए क्योंकि समाज के कल्याण को खतरे में डालने या नुकसान न पहुँचाने का उनका पवित्र दायित्व है।

3. आपदाएँ –

इलेक्ट्रानिक और प्रिट मीडिया, विशेष रूप से दृश्य प्रभाव वाली आपदाओं को व्यापक कवरेज प्रदान करते हैं। रेडिया और टेलीविजन प्रारम्भिक चेतावनी, निकासी सम्बन्धी जानकारी प्रसारित कर सकते हैं और जोखिमों तथा प्रतिक्रियाओं के बारे मे जन जागरुकता बढ़ा सकते हैं। भारत में एक अध्ययन में प्राकृतिक आपदाओं के दौरान राज्य सरकारों द्वारा राहत व्यय के आवंटन और सार्वजनिक खाघ वितरण की तुलना की गई। जिन राज्यों में समाचार पत्रों का प्रसार अधिक था, वहाँ राहत वितरण भी अधिक था। एक अन्य अध्ययन मे, भारत मे आए चक्रवात (1999) और मोजांविक में आयी बाढ़ का टीवी कवरेज भारतीय चक्रवात के कवरेज से पाँच गुना अधिक था। अमेरिका और यूरोप के 23 लोकप्रिय समाचार पत्रों में भी इन्हीं आपात स्थितियों के मीडिया कवरेज मे एक समान पैटर्न में पाया गया। यह पाया गया कि मीडिया कवरेज और अन्य मीडिया कवरेज के बीच सम्बन्ध था। आपदा ग्रस्त क्षेत्र मे होने वाली कवरेज और वहाँ पहुँचाने वाली धनराशि आपदा आने पर मीडिया कई भूमिका निभाता है–

(i) घटनाओं के बारे मे जानकारी प्रदान करना।

(ii) वे आसन्न आपदा की खबरों को प्रभावित कर सकते हैं, घटित हो चुकी या घटित हो रही घटनाओं के प्रभावों को बता सकते हैं।

(iii) प्राकृतिक आपदा कवरेज से राजनीतिक कार्यवाही हो सकती है।

(iv) आपदा की कहानियाँ सहानुभूति, सामुदायिक एकजुटता और राष्ट्रीय कार्यवाही को प्रेषित कर सकती है।

4. जन स्वास्थय अभियान–

जन स्वास्थ्य अभियानों, विशेष रूप से महामारियों और एड्स, सार्स और इबोला जैसी तेजी से फैलने वाली बीमारियों के खिलाफ मीडिया का बहुत महत्व है। थाईलैण्ड और युगाण्डा में सफल एड्स शिक्षा अभियानों से यह साबित होता है कि मीडिया जन स्वास्थ्य के प्रयासों को बेहतर बना सकता है। इसी तरह भारत और नेपाल मे एक एकीकृत मीडिया अभियान सफल रहा जिसके परिणाम स्वरूप 2,00,000 (दो लाख) लोगों ने कुष्ठ रोग का इलाज कराया और इससे सम्बन्धित गलत धारणाओं को दूर करके में भी मदद मिली। 2001 में अनुमानित चार मिलियन मामलों के साथ, भारत में दक्षिण अफ्रीका के बाद एड्स के मामलों की संख्या विश्व मे दूसरे स्थान पर है। भारत में मीडिया अभियान में आधी से अधिक आबादी को लक्षित करते हुए 1000 (एक हजार) से अधिक प्रसारण और गाँवों के लिए नियोजित कार्यक्रमों की 3500 से अधिक वीडियो स्क्रीनिंग शामिल है। कार्यक्रमों में नाटक (जासूस विजय) 'रियल्टी' युवा शो' (हाथ से हाथ मिला), व्यक्तिगत स्वास्थ्य

पर रेडियो फोन–इन (चट चौक) और विज्ञापन स्पॉट शामिल थे।

5. मीडिया और राजनीतिक विकास–

मीडिया राजनीति और संस्कृति को प्रभावित कर सकता है। संचार केवल विचारों और मतों की अभिव्यक्ति का साधन नहीं है बल्कि अक्सर समाज के विकास के लिए उत्प्रेरक का काम करता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सभी क्षेत्रों को राजनीतिक समस्याओं पर बहस न करने और उनके समाधान खोजने का अवसर देती है। मीडिया की भूमिका के माध्यम से राजनीतिक समाधान खोजने के कुछ क्षेत्रों पर नीचे चर्चा की गयी है–

1. लोकतंत्र और सुशासन – लोकतंत्र शासन का अधिकार एक मौलिक मानवधिकार है जिसका प्रयोग जनता को स्वतंत्र और निश्पक्ष चुनावों के माध्यम से करना चाहिए।

(क) राजनीतिक नेताओं की जनता के प्रति जवाबदेही – राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मामलों में पारदर्शिता नीतियों के निर्माण में जनता के विचारों और मतों को मान्यता देना और नागरिकों को बिना किसी डर के नीतियों और मुद्दों पर चर्चा करने के अवसर प्रदान करना, सुशासन के मापदण्ड हैं– स्वतंत्र, निष्पक्ष और सटीक पत्रकारिता। एक स्वस्थ और सुचारु रूप से चलने वाले लोकतंत्र के लिए मीडिया आवश्यक है। कुल मिलाकर मीडिया उन तानाशाहों अंहकारी नेताओं और राजनीतिक अभिजात वर्ग पर लगाम लगाने का काम करता है जो सोचते है कि वे अपने कृत्यों से बच निकलेंगे।

2. राजनीतिक पारदर्शिता – मीडिया सरकार के कामकाज को समझने, राजनीतिक निर्णयों मे भाग लेने और सरकारी अधिकारियों को जवाबदेही ठहराने में लोगों की मदद करके राजनीतिक व्यवस्था को अधिक पारदर्शी बना सकता है। हालांकि यह ध्यान देने योग्य है कि राजनेता दर्शकों को ध्यान भटकाकर मीडिया का दुरुपयोग कर सकते हैं और ''राजनीति में ऐसी कोई वास्तविकताओं और राजनीतिक मुद्दों को पीछे धकेल देती है और अंततः उन्हें विस्थापित कर देती है''।

3. विदेश नीति – सामान्य तौर पर, विदेश नीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने की मीडिया की क्षमता पर साहित्य नीतिगत उद्देश्यों की पारित के लिए नीतिगत त्वरक, बाधक और एजेण्डा–निर्धारक एजेण्ट के रूप में मीडिया के प्रभाव की तीन वैचारिक रूप से भिन्न और विश्लेषणात्मक रूप से उपयोगी समझ का सुझाव देता है।

4. मानवाधिकार – मानवधिकार वे अधिकार है जिनका प्रत्येक मनुष्य को आनन्द लेने और संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है। मीडिया राष्ट्रीय संविधानों में निहित और मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यू.एच.डी.आर.) द्वारा मान्यता प्राप्त इन अधिकारों की रक्षा कर सकता है। इन अधिकारों में जीवन का अधिकार अभिव्यक्ति की स्वंतत्रता, संगठन की स्वंतत्रता और निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार शामिल है। मीडिया का ध्यान निरंकुश शासनों द्वारा मानवाधिकारों के हनन को रोकने या हतोत्साहित करने मे सहायक हो सकता है।

5. मीडिया और आर्थिक विकास – मीडिया आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकता है सुशासन को बढ़ावा देकर और नागरिकों को सशक्त बनाकर विकास करना, ताकि अर्थव्यवस्था बेहतर ढंग से काम कर सकें। इसमें आर्थिक विकास, प्रतिस्पर्धा में वृद्वि, सतत् विकास, गरीबी और असमानता में कमी, वेतन और लाभों में वृद्धि और औद्योगिक नीति शमिल है। आर्थिक विकास में मीडिया के योगदान से जुड़े प्रमुख क्षेत्र हैं–

1. व्यापार और निवेश का वातावरण – अर्थव्यवस्था के विकास के लिए, व्यापार और निवेश के फलने–फूलने के लिए अनुकूल वातावरण आवश्यक है। मीडिया स्वास्थ व्यापार के लिए वातावरण प्रदान कर सकता है। पारदर्शिता और जवाबदेही के व्यापारिक माहौल को बढ़ावा दे सकता है और यह सुनिश्चत कर सकता है, कि संभावित निवेशकों को सटीक वित्तीय जानकारी उपलब्ध हो। वैश्विक और विदेशी मीडिया अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मुद्दों पर रिपोर्ट करते हैं। मुद्रा बाजार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार। हालांकि, मीडिया अनुकूल वातावरण बनाने या बिगाड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा पैदा करने वाली खबरें, जैसे कि युद्ध, नागरिक अशांति, महामारियों (एड्स, सार्स, आदि) हिंसक अपराध, भ्रष्टाचार आदि, निवेशकों को डराने के लिए जानी जाती हैं।

2. आर्थिक सशक्तिकरण – मीडिया समाज के गरीब और वंचित वर्गों को आयामी बात रखने की क्षमता प्रदान करता है। गरीबों और शोषितों की दयनीय स्थिति को उजागर करना मीडिया का कर्तव्य है, ताकि नेतृत्व पर कार्यवाही करने का दबाव बने मीडिया गरीबी उन्मूलन और आर्थिक सशक्तिकरण से सम्बन्धित सरकारी कार्यक्रमों के

प्रति जागरूकता बढ़ाने मे भी मदद कर सकता है, जिससे सार्वजनिक सेवाएं गरीबों के प्रति अधिक संवेदनशील बन सके। सामाजिक विकास मे भूमिका निभाते हुए, मीडिया भ्रष्टाचार, आपराधिक हिंसा साम्प्रदायिक संघर्श सार्वजनिक स्वास्थ्य और सम्बन्धित मुद्दों से निपटने में समाज की सहायता करता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा, मीडिया और संघर्ष समाधान–

किसी राष्ट्र और उसके नागरिकों की राष्ट्रीय सुरक्षा प्रभावी नेतृत्व, सामाजिक कल्याण और आर्थिक विकास की आधारशिला बनी हुई है। आधुनिक राष्ट्र–राज्य परिवेश में, राष्ट्रीय सुरक्षा में राष्ट्रीय रक्षा के अतिरिक्त मानद और सामाजिक सुरक्षा को भी प्राथमिकता दी गई है, जिसमें सुरक्षा के मूल सिद्धान्त शांति बनाए रखने और संघर्षों को समाप्त करने पर केन्द्रित हो गए हैं। शीत युद्ध की समाप्ति और वैश्वीकरण तथा प्रौद्योगिकी के उदय के बाद से, विश्वभर में विभिन्न संदर्भों में संघर्ष समाधान तकनीकों के उपयोग को दर्शाने वाले कई वैचारिक ढाँचे विकसित किए गए हैं। शांति स्थापना और संघर्षोत्तर शांति निर्माण के लिए विभिन्न नीतिगत विकल्पों को विकसित किया जा रहा है, जिनमें सैन्य और गैर–सैन्य उपाय, विकास और शासन सम्बन्धी दृष्टिकोण तथा निवारक कूटनीति शामिल है। राज्य के साथ–साथ नए उपक्षेत्र गैर–सरकारी और निजी संगठनों को संघर्ष समाधान में प्रमुख भूमिका निभाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। ये संगठन सुरक्षा और शांति अध्ययन क्षेत्रो मे व्यापक रूप से अपनी भूमिका निभा रहे हैं, इसी तरह शीत युद्ध के दौरान, शांति और सुरक्षा अध्ययन मे कार्यरत विश्लेषकों ने जनंसचार माध्यमों और सामाजीकरण प्रयासों की भूमिका का अध्ययन किया, जो मुख्य रूप से मतभेदों को सुलझाने और संघर्षरत क्षेत्रों में सुरक्षा और स्थिरता की भावना बनाए रखने के लिए सफल रहे, इससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा और बहस हुई और दुनिया भर के देशों ने जनसंचार माध्यमों और समाजीकरण प्रयासों की भूमिका का अध्ययन किया, जो मुख्य रूप से मतभेदों को सुलझाने और सहर्घग्रस्त क्षेत्रों में सुरक्षा और स्थिरता की भावना बनाए रखने में सफल रहे, इससे अतिरिक्त स्तर पर चर्चा और बहस हुई और दुनिया भर के देशों ने जनसंचार माध्यमों और सामाजीकरण प्रथाओं की भूमिका का अध्ययन किया, जो मुख्य रूप से मतभेदों को सुलझानें और संघर्षग्रस्त क्षेत्रों में सुरक्षा और स्थिरता की भावना बनाए रखने में सफल रहे, इससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा और बहस हुई और दुनिया भर के देशों ने जनसंचार माध्यमों को राज्य में संघर्ष समाधान के एक प्रमुख योगदानकर्ता के रूप में एकीकृत करने के लिए अपने व्यवहार में बदलाव किया।

निष्कर्ष –

समाज में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चौथे स्तम्भ के रूप में, वे सरकार के तीनों अंगों की गतिविधियों पर नियंत्रण और संतुलन बनाए रखते हैं। एजेण्डा निर्धारित करने वाले के रूप में, वे सार्वजनिक एजेण्डा के मुद्दों को प्रभावित करते हैं, सूचना के संरक्षक के रूप में, वे तय करते हैं कि जनता तक कौन सी जानकारी पहुँचेगी प्रहरी के रूप में, वे तय करते हैं कि जनता तक कौन सी जानकारी पहुँचेगी प्रहरी के रूप में, वे – शक्तिशाली हितों के विरुद्ध जनता के हितो का प्रतिनिधित्व करते हैं और गुणक के रूप में वे सैन्य कमाण्डरों की युद्ध क्षमता को बढ़ाते हैं।

औपनिदेशिक शासन, गृहयुद्ध, मुक्ति संघर्ष और राजनीतिक अस्थिरता से जूझ चुके युद्धोत्तर समाजों को राष्ट्र निर्माण की आवश्यकता होती है, अन्यथा वे "विफल राज्य" बन जाते हैं। स्वतंत्र और निष्पक्ष मीडिया पुर्ननिर्माण, पुर्नवास, और सुलह, पूर्व लड़ाकों के विस्थापन और पुर्नवास और शान्ति स्थापना के प्रयासों में महात्वपूर्ण भूमिका निभाता है पीड़ितों, प्रतिशोध, छोटे हथियारों की तस्करी, गरीबी, बीमारियों चुनावों और क्षमता निर्माण जैसे मुद्दों को सम्बोधित करने मे मीडिया की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय विकास को प्रभावी ढंग से प्रभावित करने के लिए मीडिया का स्वतंत्र और निश्पक्ष होना आवश्यक है। स्वतंत्र मीडिया जनता की आवाज बनता है, जनमत का निर्माण करता है और सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करता है। इसी प्रकार, यह गरीबों को सशक्त बनाता है, विकास को गति देता है और यह सुनिश्चत करता है कि लोगों की बुनियादी सामाजिक जरूरतें पूरी हों। मीडिया की स्वतंत्रता के साथ–साथ यह सुनिश्चित करता है कि लोगों की बुनियादी सामाजिक जरूरतें पूरी हों। मीडिया की स्वतंत्रता के साथ–साथ यह सुनिश्चित करना होगा कि राष्ट्रीय विकास में योगदान दिया जाए।

मीडिया सनसनीखेज खबरों दुष्प्रचार और पक्षपात के माध्यम से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का दुरुपयोग कर सकता है। राष्ट्रीय विकास में मीडिया की

प्रभावशीलता से सम्बोधित अन्य कारकों में स्वामित्व का प्रश्न और मीडिया की बुराइयाँ शमिल हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बर्ध. ए. ई. और लिप्स कॉम्ब. ए(1904), थॉमस जेफरसन के लेखन मेमोरियल संस्करण, वाशिंगस पी. सी. 1903–04, खण्ड 14, ऐसे : http://extext.virginia.edu/jefferson/guotat-iosn/ feffe/600.htm.
2. इण्डोनेशिया में मीडिया के विकास के माध्यम से लोकतंत्र और सुशासन को मजबूत करना, अतः विषयक परियोजना http://www.on.or.id/prog/pre-pro1.htm.
3. वेरोनिक एडवर्ड्स, (2000) "मीडिया की भूमिका" संघर्ष समाधान केन्द्र, सत्यापन, कार्यशाला, एंटेबे, मुगाण्डा, 27 जून–01 जुलाई।
4. जे. एम. बाल्किन (1998) "हाउ मास मीडिया सिमुलेट पॉलिटिकल ट्रांसपेरेसी," मेल, येल युनिवर्सिटी प्रेस ऑनलाइन लेखन, http://www.yate.edu/fawweb/jablkin/articles/media 01/htm.
5. जेम्स श्लेसिंगर (1992) "शीतयुद्ध के बाद की विदेश नीति की खोज।" विदेश मामले, शीतकालीन।
6. एण्ड्रयू नेटेसियोस, (1996) "प्रभाव के भ्रम : जटिल आपात स्थितियों में सी.एन.एन. प्रभाव। "आर 01 रोखर्ग और टी.जी. वीस, संपादक नरसंहार से नरसंहार तक : मीडिया, सार्वजानिक नीति और मानवीय संकट, बूकिग्स इंस्टीट्रयूशन पृष्ठ – 150।
7. आर्थिक विकास को परिभाषित करना, जी.ई.डी.ए., फरवरी (1999) http://www.geda.org/misc/definition.htm.
8. आर्थिक विकास क्या है?' अमेरिकी वाणिज विभाग http://www.osec.doc.edu/html/20/whatised.htm.
9. डंकन थॉमस, जॉन स्ट्रांस और मारिया–हेलेना, हेनरिकेस (1991), "मॉकी शिक्षा बच्चे की ऊँचाई की कैसे प्रभावित करती है?" जर्नल ऑफ हयूमन रिसोर्सेज, खण्ड – 26, संख्या–2, पृष्ठ– 183–211.
10. रॉबर्ट सी. हॉनिकि (1988) डेवलपमेंट कम्युनिकेशन, न्यूयार्क, लॉगमैंन।
11. "कृषि क्षेत्र में मीडिया पर प्रकाश डाला गया" डॉन, 3 दिसम्बर(1999), इंटरसेट संस्करण।
12. रिकस्टेपेन हवेस्ट, (2000) "भृष्टाचार पर अंकुश लगाने में मीडिया की भूमिका विश्व बैंक संस्थान http://www.world bank.org/wib/governance/media.pdf.
13. पीटर जे. पी. लैंगसेथ और रिक स्टेपेनहवेस्टर, (1997) "राष्ट्रीय की भूमिका" भ्रष्टाचार से लड़ने में सत्यनिष्ठा प्रणाली / वाशिंटन डी. सी.।
14. ओपोल ई ओगोसू (1999 –) भ्रष्टाचार विरोधी मुद्दे "विकास फोरम, 17 नबम्बर– http://www.worldbank.org/hm/anticorrupt/003.html.
15. के. जे. रेड्डी (2002), "वर्तमान उथल पुथल गोधरा और उसके बाद : मीडिया की भूमिका। " इण्डियन फर्स्ट फाउण्डेशन का उद्घाटन समारोह, 6 अप्रैल।
16. स्टीफन रैटियन," खतरे को कम करने और आपदा प्रबन्धन में मीडिया की भूमिका।" http://www.annenberg.nwu./pubs/disar/disas7.htm.
17. टिमोथी बेस्ली और रॉबिन बर्गेस (2002) – "सरकारी जबावदेही की राजनीतिक अर्थव्यवस्था भारत से सिद्धान्त और साक्ष्य," वर्किग पेपर, लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, नवम्बर।
18. गोर्म आर. ओल्सेन एट अल. (2003) – "मानवीय संकट : आपातकालीन सहायता का स्तर क्या निर्धारित करता है?" आपदाएँ, खण्ड 27, संख्या 2, पृष्ठ 109–126 ।
19. बी.बी.एस. वर्ल्ड सर्विस ट्रस्ट. http://www.bbc.co.uk/worldservice/us/turst/ 030410brazi//teprosy.shtml.

ISSN : 2394-4366

Received: 04 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

उच्च स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य

– कु. संगीता देवी
रिसर्च स्कालर –
शिक्षाशास्त्र विभाग,
मेजर एस. डी. सिंह विश्वविद्यालय,
फर्रुखाबाद–209748 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
sangeeta1977yadav@gmail.com

– रिसर्च सुपरवाइजर
– डॉ. पूनम बाजपेई
एसोसिएट प्रोफेसर –
शिक्षाशास्त्र विभाग,
मेजर एस. डी. सिंह विश्वविद्यालय,
फर्रुखाबाद–209748 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
pbajpai71@gmail.com

सारांश

हम कह सकते हैं कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे केन्द्र एवं राज्य दोनों की विशेष महत्ता है। विशेषकर तब जब कि पूरे देश में नई शिक्षा नीति लागू हो गई है। जिसमें उच्च शिक्षा में अनुसंधान को बढ़ाने की अनुशंसा है। राज्य एवं केन्द्र दोनों सरकारों का विशेष दायित्व है कि वह मानविकी एवं विज्ञान दोनों क्षेत्रों में निवेश करें। जिससे बौद्धिक सम्पदारूपी धन से देश उन्नति एवं विकास के क्षेत्र में आगे बढ़ सके।

अगर हम प्रागैतिहासिक काल से मानव सभ्यता के विकास को देखें तो हम पाते है कि शुरुआत के कुछ कालों तक मनुष्य और जानवरों के बीच ज्यादा अन्तर नहीं था। धीरे–धीरे मनुष्य ने बौद्धिक विकास किया और वह इस समानता से दूर जा सका। इस बौद्धिक विकास में शिक्षा का अहम योगदान था।

भारतीय सन्दर्भ में शिक्षा के विकास की जानकारी हमें वैदिक युग से प्राप्त होती है। वैदिक काल में ही चारो वेद उनके ब्राम्हण तथा आरण्यकों को लिखा गया और शिक्षा की जिम्मेदारी गुरुकुलों को सौंपी गयी। प्रत्येक गुरुकुल में शिक्षा और प्रबन्ध की जिम्मेदारी गुरू की होती थी और राज्य इसमें हस्ताक्षेप नहीं करता था।

बौद्ध काल में शिक्षा का भार मठों ने उठा लिया तथा राज्य द्वारा इन मठों को आर्थिक सहायता दी जाने लगी जिससे अपरोक्ष रूप से शिक्षा में राज्य की भूमिका की शुरुआत हो गयी। मुगल काल में शिक्षकों को राज्य की तरफ से वेतन देना आरम्भ कर दिया गया तथा अंग्रेजों के समय यह पूर्ण रूप से राज्य का विषय हो गई और राज्य नियम तथा अधिनियमों द्वारा शिक्षा को नियंत्रित करने लगा।

स्वतंत्र भारत में 1976 तक शिक्षा राज्य का विषय रही। 1976 में हुए 42वें संविधान संसोधन द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया जिसमें शिक्षा पर राज्य और केन्द्र दोनों नियम बना सकते थे। विसंगति होने पर केन्द्र के नियम ही मान्य होते थे।

19वीं शताब्दी में जब कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई तो राज्य ने व्यापक रूप से उच्च शिक्षा के लिए नियम व विनिमय तैयार किये तो वही से उसके लिए इस क्षेत्र में उसको प्रतिबद्ध होना पड़ा।

उच्च शिक्षा का कार्य केन्द्र और राज्य दोनों मिलकर करते हैं। केन्द्र ने इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की जो केन्द्र और राज्य के विश्वविद्यालयों के लिए गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा को निर्धारित करता है। राज्य के भी उच्च शिक्षा विभाग की स्थापना इसी दृष्टिगत की है। उच्च शिक्षा

के प्रशासन की जिम्मेदारी जिनको दी गयी है उनको एक रेखाचित्र द्वारा दर्शा सकते हैं।

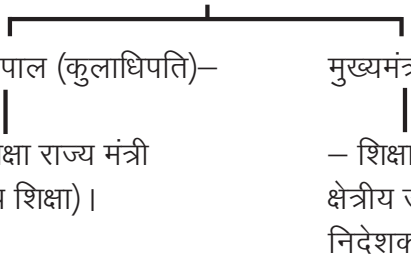

इसके अतिरिक्त राज्य सरकार के निम्न कार्यों पर चर्चा की जा सकती है–

1– उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रचार्यों, शिक्षकों, शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की नियुक्ति।

2– एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा इन संस्थानों में नियुक्ति।

3– कर्मचारियों, शिक्षकों के लिए सेवा शर्तों का निर्धारण।

4– संस्थानों के लिए समय – समय पर निर्देशिका को बनाना।

5– इन सबके लिए अनुदान की व्यवस्था करना।

6– शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान को बढ़ावा देना तथा इसके लिए अनुदान निर्धारित करना।

7– केन्द्र से अनुदान प्राप्त करके उसे विभिन्न विश्वविद्यालयों, उच्च शिक्षण संस्थानों में वितरित करना।

इन सभी कार्यों को राज्य सरकार उच्च शिक्षा सेवा आयोग, उच्च शिक्षा परिषद, तथा विश्वविद्यालय के कुलपतियों के माध्यम से सम्पादित करती है।

इन सब के अलावा यहाँ उच्च शिक्षा को काफी हद तक विश्वविद्यालयों को सौंप दिया गया ये विश्वविद्यालय भी दो प्रकार के हैं– (1) सम्बद्धक तथा (2) आवासीय सम्बद्धक। केवल महाविद्यालयों को अपने से सम्बद्ध कर परीक्षाएँ कराकर उपाधियाँ प्रदान करते हैं तथा आवासीय में शिक्षण कार्य भी किया जाता है और उपाधियाँ भी वितरित की जाती हैं।

विश्वविद्यालय भी प्रशासन एवं शिक्षण सम्बन्धी उत्तरदायित्व राज्य सरकार द्वारा विनियमित नियमों के माध्यम से सम्पादित करते है और इस कार्य के लिए कुलाधिपति द्वारा कुलपति, प्रतिकुलपति, वित्त अधिकारी, कुल सचिव परीक्षा नियंत्रक की नियुक्ति की जाती है।

विश्वविद्यालय महाविद्यालयों के कार्य पर नियंत्रण, प्रवेश के नियम, शिक्षा सत्र को नियमित, पाठ्यक्रमों का निधारण तथा परीक्षाओं के आयोजन सम्बन्धी कार्यों को करते हैं।

विश्वविद्यालय का कार्य है कि सम्बद्ध विभागों एवं महाविद्यालयों के कार्यों में नियन्त्रण रखना, प्रवेश प्रक्रिया के नियमों को बनाना एवं सत्र को समुचित रीति से संचालित करना तथा विभिन्न कक्षाओं का पाठ्यक्रम एंव उससे सम्बन्धित पुस्तकों का प्रकाशन करना और परीक्षाओं का आयोजन कराना मुख्य कार्य है।

स्नातक स्तर का बड़ा हिस्सा महाविद्यालयों में दिया जाता है, सरकार द्वारा या शैक्षिक ट्रस्टों द्वारा विश्वविद्यालय परिसर के बाहर स्थापित और प्रबन्धित किया जाता है।

एक महाविद्यालय अध्ययन के एक पाठ्यक्रम के लिए एक विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त है। जिसके नियमों और विनियमों का पालन किया जाता है। पाठ्यक्रम के अध्ययन के बाद विद्यार्थी परीक्षा देते हैं और उत्तीर्ण होने के पश्चात् डिग्री प्राप्त करते हैं।

उच्च शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय नीति और नियोजन तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र समग्र विकास की जिम्मेदारी है। भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी प्रणाली है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्चशिक्षा की मान्यता की देखभाल करता है।

परम्परागत प्राप्त मानव ज्ञान का संरक्षण, नवीन ज्ञान का संरक्षण, नवीन ज्ञान का अनुसंधान एवं प्रसार विश्वविद्यालयों के प्रमुख कार्य हैं।

विश्वविद्यालय के मुख्य कार्य–

सम्बद्ध महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम का सही समय पर संचालन कराना एवं विषय विशेषज्ञों के द्वारा उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करवा कर समय पर परीक्षा परिणाम घोषित करना।

परीक्षा में सम्मिलित परीक्षार्थियों को सक्षम अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित अंकतालिका प्रदान करना एवं दीक्षान्त समारोह का आयोजन करना, सफल परीक्षार्थियों को उपाधि प्रदान करना विश्वविद्यालय के कार्य है।

शिक्षकों कर्मचारियों तथा अधिकारियों को समय–समय पर आवश्यकतानुसार वेतन भुगतान करना, पुराने महाविद्यालयों में नए विषयों को पढ़ाने की अनुमति एवं सम्बद्धता प्रदान करना अनुसंधान कार्य करना एवं सम्बद्ध विभागों/महाविद्यालयों को प्रोत्साहन एवं सुविधाएं

प्रदान करना चाहिए। ऐसे सभी कार्य शैक्षिक हित में विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आते हैं।

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति का मूल आधार होती है। शिक्षा को तीन भागों में बांटा गया है– प्राथमिक माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा राज्य में शैक्षिक नियोजन के लिए शिक्षा मंत्रालय होता है। शिक्षा का कार्य प्राथमिक शिक्षा परिषद एवं माध्यमिक शिक्षा परिषद देखती है। शैक्षिक संरचना में माध्यमिक शिक्षा एक महत्वपूर्ण चरण है। क्योंकि यही उच्च शिक्षा के लिए छात्रों को तैयार करता है। शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया है। माध्यमिक शिक्षा में भी प्रमुख कार्य राज्य सरकार का है। विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रम निर्माण, पुस्तक, लेखन, प्रशिक्षण शुल्क, परीक्षा सम्पादन एवं प्रमाण पत्र देने आदि के समस्त महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करती है। उच्च स्तर पर इन कार्यों को करने के लिए विश्वविद्यालयों का गठन किया जाता है। विश्वविद्यालय निजी अथवा राजकीय आवसीय, सम्बद्धक, संघात्मक आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में राष्ट्रपति तथा राज्य विश्वविद्यालयों में राज्यपाल संरक्षण्क (कुलाधिपति) की भूमिका में होते हैं, किसी राज्य की शक्ति उच्च शिक्षा होती है। उच्च शिक्षा तक आते–आते छात्र के संस्कार दृढ़ हो जाते हैं। प्रायः छात्र–छात्रायें अपने लिए ज्ञान की एक निश्चित धारा का चयन करने में सक्षम होते हैं, जो कि उस धारा का चयन वह माध्यमिक स्तर पर कर चुका होता है।

शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जो एक राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक देश की समृद्धि उसकी शिक्षा संस्थाओं के स्तर पर निर्भर करती है। सरकारों को शिक्षा क्षेत्र के लिए वित्तीय संसाधनों का प्रबन्ध करना राष्ट्रीय शिक्षा की योजनाओं का निर्माण करना और जनतांत्रिक शिक्षा व्यवस्था करना सरकार का उत्तरदायित्व होता है।

मनुष्य में सृजनात्मक सोच को बढ़ावा देना और शैक्षिक शोध के लिए उपयुक्त माहौल प्रदान करना विश्वविद्यालय का कार्य है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे केन्द्र एवं राज्य दोनों की विशेष महत्ता है। विशेषकर तब जब कि पूरे देश में नई शिक्षा नीति लागू हो गई है। जिसमें उच्च शिक्षा में अनुसंधान को बढ़ाने की अनुशंसा है। राज्य एवं केन्द्र दोनों सरकारों का विशेष दायित्व है कि वह मानविकी एवं विज्ञान दोनों क्षेत्रों में निवेश करें। जिससे बौद्धिक सम्पदारूपी धन से देश उन्नति एवं विकास के क्षेत्र में आगे बढ़ सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– शैक्षिक प्रशासन – भटनागर आर. पी.।
2– शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध – वर्मा जी. एस. ।
3– विद्यालय प्रशासन, संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा – गुप्ता राम बाबू।
4– शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श – जायसवाल सीताराम।
5– स्कूल आर्गेनाइजेशन – कोचर एस. के.।
6– भारत में शिक्षा का इतिहास – कर्ण सिंह।
7– भारतीय शिक्षा का इतिहास – लाल रमन बिहारी।
8– शैक्षिक प्रबन्ध एवं विद्यालय संगठन – पारीक महेश कुमार।
9– शिक्षा प्रशासन एवं प्रबन्ध – शर्मा आर. ए.।
10– भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास – शर्मा आर. ए.।
11– एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मैनेजमेंट – शर्मा आर. ए.।
12– एजुकेशनल मैनुअल – श्रीवास्तव एस. एन.।

ISSN : 2394-4366

Received: 06 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

साक्षात्कार विधा का उद्भव एवं विकास

– शेफाली यादव
शोधार्थी जे. आर. एफ.,
हिन्दी विभाग,
डी. बी. एस. कालेज, गोविन्द नगर, कानपुर–208006
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
saifaliyadav9@gmail.com

– रिसर्च सुपरवाइजर
– डॉ. अनिता सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर –
हिन्दी विभाग,
डी. बी. एस. कालेज, गोविन्द नगर, कानपुर–208006
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
anitasingh021111979@gmail.com

सारांष

आधुनिक युग में साक्षात्कार विधा का विशेष योगदान है, विधा केवल हिन्दी साक्षात्कार में बल्कि पत्रकारिता में विशेष योगदान दे रही है, चाहे नेता हो या अभिनेता सब इण्टरव्यू के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हें, आज के इस युग में इण्टरव्यू काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय विधा है। हिन्दी साक्षात्कार में प्रायः साहित्यकारों विवादास्पद रचनाओं का पुनः मूल्यांकन गुटबाज, अनैतिकता, भ्रष्टाचार साहित्य की खोज, आलोचकों की कमी, नारी की समस्या, पुरस्कार सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर विभिन्न पत्रों/अखबारों/पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इण्टरव्यू (साक्षात्कार) विद्या सशक्त विद्या है, साक्षात्कार विद्या केवल अपने तक सीमित न होकर अन्य विधाओं में भी इसका योगदान महत्वपूर्ण साथ ही साक्षात्कार विधा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, दूरदर्शन रेडियो में आज भी इसकी प्रसिद्धि शीर्ष पर है, आज वर्तमान में प्रिन्ट मीडिया, रेडियो, मोबाइल के बढ़ते प्रभाव ने इस विधा को इतना लोकप्रिय बना दिया इसके भविष्य में विकास की अनन्त सम्भावना है।

भूमिका–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, प्रत्येक घटना के विषय में जानने व समझने की जिज्ञासा रखता है, साक्षात्कार विधा इसी से जन्मी है, अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति को शान्त रखने के लिए, साक्षात्कार संवाद का एक सशक्त माध्यम है, साक्षात्कार एक व्यक्तिनिष्ठ आत्मनिष्ठ विधि है, जो दो व्यक्तियों के परस्पर होती है, साक्षात्कार पश्चिम देशों की विधा मानी जाती है, साक्षात्कार का जर्मनी में वर्ष 1450 उद्भव हुआ था। हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं को विकसित होने का पर्याप्त सम्भावना है।

अर्थ एवं परिभाषा–

इण्टरव्यू यानि साक्षात्कार का सीधा सा अर्थ है, किसी से बातचीत करना, अपने प्रश्नों द्वारा किसी व्यक्ति के विचारों को पाठकों के लिए प्रस्तुत करना साक्षात्कार को हिन्दी में भेंटवार्ता, मुलाकात, भेंट, बातचीत आदि नामों से जाना जाता है, अंग्रेजी में इसके लिए इण्टरव्यू शब्द का प्रयोग होता है। Inter का अर्थ ''अन्तरिक'' और View का अर्थ ''अवलोकन करना'' सामान्य अर्थ में साक्षात्कार से तात्पर्य है कि एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति से वार्तालाप द्वारा उसकी योग्यता गुण, ज्ञान की जानकारी प्राप्त करना। साहित्य के क्षेत्र में एक रचनाकार के जीवन विचारों, रुचियों को समझने का सबसे सरल तरीका साक्षात्कार है।

साक्षात्कार विद्या हिन्दी साहित्य की ऐसी विधा है, जिसके माध्यम से

हम जीवनदर्शन, रचनाकर्म, अभिरुचियों को न्यूनतम समय में जान सकते हैं, हिन्दी साक्षात्कार का उद्भव 20वीं शताब्दी की शुरुआत में हुआ था, उस समय सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे थे, पत्रकारिता का विकास हो रहा था और साहित्य में नई विधाओं का उद्भव हो रहा था, उसी समय हिन्दी साहित्य में साक्षात्कार विधा का भी उद्भव हुआ, कुछ लोग इस विधा का पत्रकारिता के अधिक निकट मानते हैं।

1. रामचन्द्र तिवारी– ''इण्टरव्यू में उत्तर देने वाले को विख्यात महिमामय होना आवश्यक है, ऐसी स्थिति में उनके उत्तर मूल्यवान होते हैं।

2. हरिवंश राय बच्चन – ''इण्टरव्यू का मकसद पढ़ने वाला यह अनुभव करे कि वह कवि विशेष से मिल चुका है।''

3. डॉ. नागेन्द्र – इण्टरव्यू से अभिप्राय उस रचना से है जिसमें लेखक व्यक्ति विशेष के साथ साक्षात्कार करने के बाद प्रायः किसी निश्चित प्रश्न माला के आधार पर उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में प्रमाणित जानकारी प्राप्त करें और लिपिबद्ध करें।

4. गुड्स एवं हैट – ''किसी उद्देश्य से किया गया गम्भीर वार्तालाप ही साक्षात्कार है।''

फ्रायडे ने कहा है– ''जब किरण फूटती है तो सवेरा होता है, वही संवाद है, जब कोई व्यक्ति बोलता है, तो वह खुलता है, ''साक्षात्कार दरअसल नियोक्ता द्वारा व्यक्ति को खोलने का प्रयास है, जिससे उसके गुणों विचारों से अवगत हो सकें।

हिन्दी साहित्य में साक्षात्कार विधा कोई पुरानी नहीं अन्य विधाओं की अपेक्षा अभी अपनी शैशवस्था में है, वर्तमान में आधुनिक पत्रकारिता का अभिन्न एवं लोकप्रिय अंग बन चुकी है। इसकी शुरुआत भी बेनी माधव शर्मा की पुस्तक कवि दर्शन से हुई सन् 1920 में पण्डित स्वर्गीय बनारसी दास चतुर्वेदी ने इसकी शुरुआत की अन्य विधाओं की अपेक्षा बहुत कम साहित्यकार इसमें सक्रिय हुए परिणाम यह हुआ कि कुद गिने चुने ग्रन्थ ही प्रकाश में आए हैं, साक्षात्कार विधा पर आधारित शोध ग्रन्थों की सख्या 150 ही है, फिर भी चतुर्वेदी ने विधा बनवा ही दिया, बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे चिंत्रक ने इस विधा को पुष्पित किया और एक सार्थक कदम बढ़ाया।

श्रीराम शर्मा ने इसे पत्रकारिता के माध्यम से प्रतिष्ठित किया ''डाक्टर सत्येन्द्र'' ने साधना के अंक में प्रतिष्ठित साहित्यकारों के साक्षात्कार प्रस्तुत कर, हिन्दी साक्षात्कार की परम्परा में पत्रिकाओं का बहुत सहयोग रहा, समालोचना पत्रिका के 1905 अंक में प्रकाशित संगीतकार विष्णु दिगम्बर पुलस्कर का साक्षात्कार पाठकों और संगीत प्रेमियों के लिए चर्चा का विषय है। 'हंस' पत्रिका में निराला का साक्षात्कार अपने घर में सरस्वती का अपमान उद्धृत है, निराला जी ने क्रोधपूर्वक कहा था– नेताओं के समक्ष लेखकों के इण्टरव्यू को आज भी निम्न समझा जाता है।

साक्षात्कार विधा को समृद्ध विधा के रूप में स्थापित करने मे बनारसीदास चतुर्वेदी से लेकर राजेन्द्र यादव तक का विशेष योगदान रहा है, आज भी पत्रिकाओं में साहित्यकारों के इण्टरव्यू छपते हैं, लेकिन बेहद हल्के होते हैं, इससे विद्या के तौर पर मजबूती नहीं मिलती, इलेक्ट्रानिक मीडिया में आज साक्षात्कार विद्या सबसे समृद्ध रूप में है, किसी नेता का इण्टरव्यू हो या अभिनेता का जनता के लिए मनोरंजक होता है, शायद इसी वजह से आज इण्टरव्यू का प्रचलन बढ़ा है।

साक्षात्कार का वास्वविक अर्थ किसी महान, साहित्यकार, दार्शनिक, धर्मज्ञ, राजनीतिक आदि से मिलकर उसके विषय के अनुरूप महत्वपूर्ण प्रश्नों को व्यवस्थित ढंग से लिपिबद्ध करके उसकी प्रस्तुति जिससे विद्वानों के साथ सामान्य पाठक भी उसका रसस्वादन कर सकें, जिसमें व्यक्ति की रुचि, बुद्धिमता, कार्य कुशलता स्वभाव आदि से परिचित हो सके।

हिन्दी साक्षात्कार में प्रायः साहित्यकारों विवादास्पद रचनाओं का पुनः मूल्यांकन गुटबाज, अनैतिकता, भ्रष्टाचार साहित्य की खोज, आलोचकों की कमी, नारी की समस्या, पुरस्कार सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर विभिन्न पत्रों / अखबारों / पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं।

साक्षात्कार विद्या का विकास –

हिन्दी साक्षात्कार का विकास सही मायनों में भारतेन्दु काल से पूर्व प्रतीत होता है, एक ओर हमारे देश में प्राचीनतम् संस्कृत ग्रन्थ में संवाद को ही साक्षात्कार का रूप माना जाता है।

नचिकेता–राम संवाद, कृष्ण–अर्जुन संवाद, भीष्म–युधिष्ठिर, संवाद आदि प्रचलित संवाद रूप में था, आरम्भ में संचार प्रणाली हस्तलिखित थी, कवियों द्वारा कबूतरों के माध्यम से संदेश प्रेषित किये जाते थे, यह बताना कठिन होगा कि साक्षात्कार की शुरुआत कब से हुई

साक्षात्कार विधा भारत में पश्चिम की देन है। सर्वप्रथम जर्मनी के लोहनिसवर्ग मुद्रण रूप में 1450 में प्रारम्भ माना गया।

भारतेन्दु काल में सभी विधाओं का विकास प्रारम्भ हो गया था, भारतेन्दु ने साहित्य की धारा को ही बदल दिया था, इसी काल में साहित्य साक्षात्कार को नवीनतम विधाओं में स्थान मिला, अगर साक्षात्कार को विद्या के रूप में देखे तो 19वीं शताब्दी में विधा का विकास हो चुका था, इसी दृष्टि में ''कर्वी लेडर'' की 'इमेजनरी कर्बोसंस' पुस्तक उल्लेखनीय है, इस पुस्तक में साहित्य के विद्वानों के काल्पनिक वार्तालाप है, भारतेन्दु युग में साक्षात्कार विधा की शुरुआत पत्र–पत्रिकाओं के द्वारा हुई किन्तु पूर्ण रूप से विकसित न हो सकी। भारतेन्द्र काल में साक्षात्कार विधा की शुरुआत पत्र पत्रिकाओं के द्वारा हुई किन्तु पूर्ण रूप से विकसित न हो की, भारतेन्दु काल में साक्षात्कार विद्या अपनी शिशु अवस्था में थी, इस युग में हमने साक्षात्कार को विधा के रूप में जाना पर उसे वो मान्यता न मिली।

हिन्दी साहित्य में साक्षात्कार विधा में द्विवेदी युग का महत्वपूर्ण स्थान है, जिस प्रकार भारतेन्दु काल में विधा का उद्‌भव काल था, उसी प्रकार द्विवेदी युग में साक्षात्कार विधा ने एक कदम आगे बढ़ाया, महावीर प्रसाद द्विवेदी का साक्षात्कार विधा में अति महत्वपूर्ण योगदान रहा है, डॉ. असद के अनुसार– द्विवेदी युग में साक्षात्कार की शुरुआत हुई, हिन्दी पत्र का समालोचना 1924 सितम्बर में सर्वप्रथम संगीत की धुन प्रकाशित हुआ, द्विवेदी युग में साक्षात्कार की शुरुआत विष्णु पुरस्कार भेंटकर्ता प्रकाशित हुआ, सही से पात्र परिचय साक्षात्कार का भी आरम्भ हुआ।

प्रेमचन्द काल में साक्षात्कार विद्या अपनी युवावस्था में थी, प्रेमचन्द का साक्षात्कर विधा में महत्वपूर्ण योगदान है, बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिया गया साक्षात्कार 'प्रेमचन्द के साथ दो दिन' सबसे प्रसिद्ध साक्षात्कार है। इस साक्षात्कार के द्वारा प्रेमचन्द जी की जीवनशैली, साहित्यिक योगदान के साथ उनके गृहस्थ जीवन सम्बन्धित बातों का पता चलता है, जैसे वह लेखन कार्य के चलते खाना–खाना भूल जाते उनका अपनी पत्नी के प्रति सम्मान, इस इण्टरव्यू में चतुर्वेदी जी ने प्रेमचन्द के साहित्यिक योगदान का विस्तृत उल्लेख है, इसी प्रकार नरोत्तम नागर ने ''निराला जी'' का ऐतिहासिक साक्षात्कार लिया जो 'हंस' के दिसम्बर के पत्र छपा था।

डॉ. असद लिखते हैं कि पाँचवें दशक पर बेनी माधव शर्मा की पहली पुस्तक ''कवि दर्शन'' प्रकाशित हुई, यही संग्रह के रूप में प्रकाशित पहली साक्षात्कार पुस्तक थी, इसमें अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल, श्याम सुन्दर दास आदि के साक्षात्कार संकलित हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास, प्रगतिवाद ओर प्रयोगवाद का विशेष योगदान रहा है, इस युग में रामविलास शर्मा, नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल त्रिलोचन आदि के साक्षात्कार पत्रिकाओं में प्रकाशित हए जिससे हमें इन साहित्यकारों के साहित्यिक ज्ञान योग्यता, उनके विचारों, गुणों रुचि से अवगत हो सकें।

आधुनिक युग में साक्षात्कार विधा का विशेष योगदान है, विधा केवल हिन्दी साक्षात्कार में बल्कि पत्रकारिता में विशेष योगदान दे रही है, चाहे नेता हो या अभिनेता सब इण्टरव्यू के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हें, आज के इस युग में इण्टरव्यू काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय विधा है।

साक्षात्कार साहित्य विकास में साहित्यिक पत्रकारिता–

साहित्य पत्रकारिता साक्षात्कार विधा के विकास का अभिन्न अंग रहा है, दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हे, हिन्दी के गद्य साहित्य में नवीन विधाओं को लोकप्रिय बनाने में सामान्य पाठकों एवं पत्रकारिता के सर्जनात्मक विकास से हुआ, इस प्रकार विविध विधाओं को लोकप्रिय बनाने में सामान्य पाठकों एवं पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

पहला भारतीय का अंग्रेजी भाषा में जेम्स अगस्त हिक्की के संपादन में निकाला, इस पत्र का नाम भी हिक्की गजट या बंगाल गजट था। इस प्रकार भारत में पत्रकारिता की नींव अंग्रेजों द्वारा ही डाली गयी।

इसके बाद भारतीय पत्र 'उदन्त–मार्तण्ड' हिन्दी पत्र बंगाल भूमि से प्रकाशित हुआ, इसके बाद राजा राममोहन राय का पत्र 'संवाद–कौमुदी' प्रकाशित हुआ, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की पत्रिका कविवचन सुधा बनारस से प्रकाशित हुआ। इसके बाद समय पर अनेक पत्र–पत्रिकाओं का समाचार पत्र छपने लगे, आज के दौर में दि हिन्दू, टाईम्स ऑफ इण्डिया, दैनिक भास्कर, आज, अमर उजाला जैसे अनेक पत्र पत्रिकायें हैं, जिनमें समय–समय पर अनेक साक्षात्कार प्रकाशित अभिनेता, अभिनेत्री के इण्टरव्यू लोकप्रिय होते हें, वही राजनेताओं के

भी साक्षात्कार प्रकाशित होते हैं, जो इन पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के जरिये जनमानस का मनोरंजन करते हैं, साक्षात्कार विधा के योगदान में पत्रिकाओं का योगदान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हें।

साक्षात्कार में रेडियो का योगदान –

संचार माध्यम में अनेक विकसित माध्यम उपलब्ध रेडियो उनमें से एक है, संचार प्रक्रिया में रेडियो दूरस्थ स्थानों तक सूचना पहुँचाने में सक्षम है, रेडियो का अविष्कार गुग्लिग्मो मार्कोनी सन् 1895 में व्यावहारिक रेडियो सिंग्नल भेजा, सन् 1896 में इसका पेटेन्ट कराया। सन् 1900 के दशक में इसका व्यावसायिक प्रसारण शुरू हुआ, वही पहला प्रसारण जुलाई 1826 को मुम्बई प्रसारित किया, रेडिया द्वारा अनेक साक्षात्करकर्ता 23 जुलाई, 1826 को मुम्बई प्रसारित किया, रेडियो द्वारा अनेक साक्षात्कारकर्ता प्रसारित हुये। आज के दौर में प्रधानमंत्री मोदी का ''मन की बात'' रेडियो पर ही प्रसारित होता है।

साक्षात्कार में दूरदर्शन का योगदान –

रेडियो द्वारा केवल ध्वनि, तरंगें, भेजी जाती थीं, परन्तु दूरदर्शन के माध्यम सदृश्य चित्र आवाज का प्रसारण हुआ, फ्रांस एवं अमेरिका में प्रसारण की संरक्षण हुई, संयुक्त राज्य अमेरिका प्रथम रंगीन प्रसारण हुआ, भारत में सबसे पहले राजेन्द्र प्रसाद के द्वारा इसका प्रसारण हुआ। दूरदर्शन के आगमन ने साक्षात्कार साहित्य को बहुत प्रभावित हुआ, साहित्य, लेखक और पाठक के बीच सीधा सम्बन्ध कायम करता है, साथ ही वह मन और बुद्धि से सीधा साक्षात्कार करता प्रतीत होता है।

अपने आपके साक्षात्कार साहित्य विकास दूरदर्शन की उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध हुई, वही दूरदर्शन साक्षात्कार साहित्य विकास का अभिन्न अंग रहा है।

दूरदर्शन में विविध विषयक साक्षात्कार साहित्य तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक विषयों पर साक्षात्कार उपलब्ध है।

साक्षात्कार प्रक्रिया एवं प्रविधि –

साक्षात्कार या इण्टरव्यू की प्रक्रिया जितनी सरल दिखाई देती है, वह अपनी ही जटिल होती है, इस प्रक्रिया में भेंटकार को साक्षात्कर्ता की सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए, जिसका साक्षात्कार लिया जाये, वे विशिष्ट व्यक्तित्व हो, इण्टरव्यू तथ्यात्मक सूचनाओं का तीव्र संचार है, जिससे स्थितियों का अनुमान लगाया जा सके, उनके विचारों से परिचय पाया जा सके, साक्षात्कार से व्यक्ति की छवि का पता चलता है।

साक्षात्कार से पूर्व तैयारी –

1. सर्वप्रथम साक्षात्कार के विषय का चुनाव करें।
2. साक्षात्कार किसका लेना है, चुनाव करें।
3. समय एवं स्थान निर्धारण करें।
4. साक्षात्कार के विषय की तैयारी करें।
5. साक्षात्कार के प्रश्नावली तैयार करें एवं सहायक उपकरणों की तैयारी करें।

साक्षात्कार में ध्यान रखने वाली बातें–

1. साक्षात्कार लेने के लिए सही समय पर पहुँचें।
2. साक्षात्कार लेने से पहले उत्तरदाता को अभिवादन करें।
3. उत्तरदाता को अपना परिचय दें।
4. उत्तरदाता को उद्देश्य बतायें।
5. सहज स्वाभाविक ढग से बातचीत शुरू करें।
6. क्रम से प्रश्न करें और उत्तर दें।
7. यदि जवाब हाँ हैं तो प्रश्न जारी रखें।
8. उत्तरदाता के बीच रोक–टोक न करें।
9. आक्रामक ढंग से प्रश्न न करें।
10. अन्त में अभिवादन करें।

साक्षात्कार लेखन से पूर्व ध्यान रखें –

1. उत्तरदाता द्वारा दिये गये तथ्यों का मिलान अवश्य कर लें।
2. उत्तरदाता द्वारा दी गयी बातों के बार में सन्दर्भ जुटा लें।
3. नोट की गयी अनावश्यक बातों को हटा दें।
4. साक्षात्कार लेखन की योजना बना लें।

साक्षात्कार के तत्व –

1. संवाद तत्व – संवाद से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व उभर कर सम्मुख आता है, संवाद हमेशा निष्पक्ष होता है, इसमें सर्वथा यथार्थ ही होता है, कोई दोहरापन नहीं, साक्षात्कारकर्ता एवं शोधकर्ता दोनों ही संवाद के माध्यम से व्यक्तित्व का परिचय देते हैं, संवाद तत्व में भाषा का बड़ा महत्व है, इसके द्वारा साक्षात्कार दाता पूर्ण रूप से व्यक्त होता है।

2. व्यक्तित्व चित्रण – व्यक्ति का व्यक्तित्व अगर देखने से ही पता चल जाये तो साक्षात्कार की जरूरत नहीं होती, साक्षात्कार द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का बाहरी रूप न होकर आन्तरिक स्वरूप को भी उजागर करना होता है।

3. देशकाल और वातावरण – जब कहीं किसी का साक्षात्कार लिया जाता हैं तो वहाँ वह व्यक्ति से पूंछा जाता है कि वह कहाँ का नागरिक है, किस क्षेत्र से आता है, साक्षात्कार द्वारा समाज से घट रही घटनाओं की भी जानकारी ली जा सकती है।

उदाहरण के लिए बिहार के किसी व्यक्ति से जो बाढ़ प्रभावित क्षेत्र से आता है, बाढ़ को रोकने के उपाय, सरकार द्वारा कोई योजना की जानकारी ले सकते हैं, कश्मीर के व्यक्ति से कहाँ की परेशानी व सरकारी योजनाओं के बारे में पूंछ सकते हैं।

शैली – इण्टरव्यू में लेखक को शैली द्वारा विनोद पुट होनी चाहिए। आक्रामक शैली से हमेशा बचना चाहिए।

उद्देश्य – बहुद्देशीय के बिना किसी भी व्यक्ति का जीवन पूर्ण नहीं इसलिए साक्षात्कार लेने से पहले आपको अपने उद्देश्य ज्ञात हो, आप किस उद्देश्य को ज्ञात करने के लिए साक्षात्कार कर रहे हैं।

साक्षात्कार के प्रकार –

1. आत्मकथात्मक साक्षात्कार – इस साक्षात्कार में केवल अपने 'स्व' ग्रहीत एवं आत्मचरित साक्षात्कार होते हें, इसमें साक्षात्कर्ता एक साक्षात्कार दाता दोनों एक ही होते हैं।

2. संस्मरणात्मक साक्षात्कार – इस साक्षात्कार में घटनायें घट चुकी होती हैं। उन्हीं घटनाओं, साहित्यों की याद कर लिपिबद्ध किया जाता है।

4. चित्रात्मक साक्षात्कार – इस साक्षात्कार में व्यक्ति विशेष का वर्णन किया जाता है, साथ ही अन्य क्षेत्रों में उपयोगी होते हैं जैसे क्रिकेट की लाइव फील्ड में कमेन्ट्री।

5. संवादात्मक साक्षात्कार – मीडिया द्वारा प्रतिदिन लाइव साक्षात्कार लिये जाते हैं, ये प्रेस रिपोर्टर द्वारा कराये जाते हैं।

6. प्रश्नोत्तर साक्षात्कार – इस शैली का उपयोग साक्षात्कार में केवल प्रश्नों के आधार पर साक्षात्कार होता है।

7. व्यक्तित्व परक साक्षात्कार – सुप्रसिद्ध व्यक्ति का इण्टरव्यू जैसे माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी का।

8. परिचर्यात्मक साक्षात्कार – किसी घटना पर या घटित हो चुकी घटना पर परिचयात्मक साक्षात्कार का गठन होता है, जिससे सभी पहलू उजागर हो सकें।

9. औपचारिक–अनौपचारिक साक्षात्कार – औपचारिक साक्षात्कार में सभी नियमों का धयन रखते हुए प्रश्न पूँछे जाते हैं, अनौपचारिक में कोई भी घटना पर प्रश्न पूँछ लेते हैं, कुछ भी पहले से निश्चित नहीं होता है।

10. आकस्मिक साक्षात्कार – समाज के सामान्य व्यक्ति से प्रश्न पूँछ लेना, जैसे महंगाई, पेट्रोल गैस के दामों पर।

11. योजनाबद्ध साक्षात्कार – किसी उद्देश्य के लिए लिया गया साक्षात्कार योजनाबद्ध साक्षात्कार कहलाता है।

12. माध्यमों के आधार पर साक्षात्कार के प्रकार – साक्षात्कार माध्यम के आधार के अन्तर्गत अन्य विभिन्न प्रकार से साक्षात्कार को कवर किया जाता है, जिसमें प्रमुख हैं–

1. श्राव्य माध्यम – रेडियो द्वारा।

2. दृश्य श्राव्य – टेलीविजन, केबल

3. मुद्रण माध्यम – दैनिक समाचार पत्र, पत्रिकायें, शोध पत्रिका आदि।

4. वाक् एवं श्राव्य – टेलीविजन/मोबाइल

5. कम्प्यूटर – इण्टरनेट/ई–मेल

साहित्यिक साक्षात्कार के प्रकार –

काल्पनिक साक्षात्कार – काल्पनिक साक्षात्कार एक कलात्मक माध्यम है, राजनीतिक एवं मनोरंजन पत्रकारिता में प्रायः इनकी स्थिति होती है।

संवादात्मक साक्षात्कार – इसमें दो व्यक्तियों के परस्पर प्रश्नोत्तर के स्थान पर संवाद प्रक्रिया अपनायी जाती है, इसमें विचार विश्लेशण और निष्कर्ष प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

राजनीतिक साक्षात्कार – राजनीति साक्षात्कार दैनिक पत्रकारिता को अधूरा नेता, प्रतिपक्ष लेना सब शामिल होते हैं, इनसे तत्कालीन एवं स्थानीय मुद्दे पर साक्षात्कार लिया जाता है।

कला एवं सांस्कृतिक साक्षात्कार – इस साक्षात्कार में कला प्रेमी एवं संस्कृति के धरोहर अभिनेताओं के साक्षात्कार लिये जाते हैं (नृत्य गायन, लोकनाट्य) आदि।

साहित्यिक साक्षात्कार – इसमें साहित्यकारों लेखक, कवि इनके साक्षात्कार लिये जाते हैं।

साक्षात्कार के उद्देश्य –

साक्षात्कार लेने के पीछे का उद्देश्य व्यक्ति

विशेष से ऐसी सूचनाओं एवं जानकारी को पाना है, जो उसके व्यक्तित्व को चित्रित करें, व्यक्तियों की आप बीती घअनाओं को जानना, उनके जीवन की रुचियों, विचार, प्रेरणा उनसे सम्बन्धित सूचना एवं जानकारी प्राप्त करना, किसी विशेष घटना की जानकारी लेना, जिससे जनमानस को लाभ हो, उनके विचारों से परिचित हो सके।

निष्कर्ष –

साक्षात्कार विद्या सशक्त विद्या है, साक्षात्कार विद्या केवल अपने तक सीमित न होकर अन्य विधाओं में भी इसका योगदान महत्वपूर्ण साथ ही साक्षात्कार विधा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, दूरदर्शन रेडियो में आज भी इसकी प्रसिद्धि शीर्ष पर है, आज वर्तमान में प्रिन्ट मीडिया, रेडियो, मोबाइल के बढ़ते प्रभाव ने इस विधा को इतना लोकप्रिय बना दिया इसके भविष्य में विकास की अनन्त सम्भावना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वाङ्मय पत्रिका हरे राम पाठक (मई 2008)।
2. साक्षात्कार प्रक्रिया और प्रविधि – डॉ. राजेन्द्र मिश्र (मई 2008)।
3. कैसे कैसे साक्षात्कार – अनन्त विजय।
4. साक्षात्कार कैसे हो तैयार – शहरोज भूमिका।
5. वाङ्मय पत्रिका – अशफाक कादरी।
6. साहित्यकारों के साक्षात्कार – डॉ. विजयानन्द पृष्ठ– 4।
7. पत्रकारिता एवं सम्पादन कला – एन. सी. पन्त।
8. साक्षात्कार सिद्धान्त और व्यवहार–रामशरण जोशी, पृष्ठ–20 ।
9. मीडिया लेखन सिद्धान्त – मुकेश मानस।
10. हिन्दी इण्टरव्यू : उद्भव एवं विकास – डॉ. विष्णु पंकज, पृष्ठ – 54।
11. साक्षात्कार, संवाद और वार्ताएँ – राजेन्द्र यादव।
12. विविध विधायें – शशि सहगल, पृष्ठ संख्या– 62।
13. साक्षात्कार : तकनीक एवं विधियाँ – डॉ. एस. श्रीकान्त।

शोध-पत्र लेखकों को विशेष निर्देश

'दि गुंजन' और 'अभिनव गवेषणा' मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल में पेपर प्रकाशित कराने के लिए पाँच प्रमुख बातों का होना बहुत ही आवश्यक है–

(1) रिसर्च जर्नल पत्रिका के क्रमानुसार चार पेज से कम नहीं होना चाहिए।
(2) रिसर्च जर्नल में कम से कम आठ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **(References)** का होना आवश्यक है।
(3) रिसर्च जर्नल में लेखक का नाम, पद, कालेज का पता, ऊपर अंकित होना चाहिए।
(4) नवीनतम एक पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ एवं ई-मेल एड्रेस।
(5) रिसर्च जर्नल में प्रमाण-पत्र हेतु आपके निवास का पता अंकित होना जरूरी है।

यह आप सभी के स्नेह का ही परिणाम है कि आपके प्रबुद्ध विचारों को **'दि गुंजन' और 'अभिनव गवेषणा' मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल** के माध्यम से अपने पाठकों तक पहुँचाने का सुअवसर मिल रहा है। विस्तृत जानकारी हेतु कार्यालय अथवा मोबाइल पर सम्पर्क करें।

- प्रबन्ध सम्पादक

सम्पर्क- 8896244776, 9335597658

ISSN : 2394-4366

Received: 08 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन (1950 से 1980 तक)

– गौरव
शोध छात्र – हिन्दी विभाग,
नेहरू ग्रामभारती मानित
विश्वविद्यालय, कोटवा, जमुनीपुर,
प्रयागराज–221505 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
gauravtripathi10031994@gmail.com

– शोध निर्देशक –
– डॉ. भूप नारायण
सहायक आचार्य – हिन्दी विभाग,
नेहरू ग्राम भारती मानित
विश्वविद्यालय, कोटवा, जमुनीपुर,
प्रयागराज–221505 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
shuklabhoopnarayan@gmail.com

सारांश

स्वातंत्रर्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी जीवन से से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज को केवल आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर आंकना सही नहीं है। उनके पास भी अपनी एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, जीवन–दर्शन है और अपने समाज के प्रति गहरी आत्मीयता और संवेदनशीलता है। उनका विकास तब ही सार्थक हो सकता है जब उनकी परम्पराओँ और अस्मिता का सम्मान किया जाए, न कि उन्हें मिटा कर तथाकथित "मुख्यधारा" में शामिल किया जाए। रचनाकार का यह प्रयास आदिवासियों को केवल सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखता, न ही उन्हें 'पीड़ित' के रूप में सीमित करता है, बल्कि उन्हें उनके पूरे अस्तित्व के साथ – एक स्वायत्त सांस्कृतिक इकाई के रूप में सामने लाता है।

हिन्दी उपन्यासों की विकास–यात्रा में यदि आदिवासी जीवन के चित्रण की उपस्थिति को देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि इस विषय को गम्भीरता से स्थान स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही मिला। स्वतंत्रता से पूर्व के उपन्यासों में आदिवासी समाज का उल्लेख बहुत सीमित और अक्सर सतही रूप में ही हुआ करता था। हालांकि प्रेमचन्द जैसे यथार्थवादी रचनाकार ने अपनी अमर रचना 'गोदान' में एक प्रसंग के माध्यम से संघर्ष, विस्थापन और शोषण जैसे विषय हिन्दी उपन्यासों में मुखर होने लगे। लेखकों ने आदिवासी समाज को सिर्फ सहानुभूति के पात्र के रूप में नहीं, बल्कि उनकी आत्मनिर्भरता, परम्पराओं और स्वाभिमान के साथ प्रस्तुत करना शुरू किया।

आदिवासी समाज हमेशा से ही बाहरी हस्तक्षेप और सांस्कृतिक टकरावों का शिकार रहा है। विशेषकर धर्मांतरण की प्रक्रिया ने उनके पारम्परिक जीवन, विश्वास और सांस्कृतिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। इसी ज्वलन्त और संवेदनशील विषय को केन्द्र में रखकर योगेन्द्रनाथ सिन्हा ने वर्ष 1956 में 'वनलक्ष्मी' उपन्यास की रचना की। यह रचना न केवल एक सामाजिक दस्तावेज है, बल्कि एक सांस्कृतिक चेतना का स्वर भी है, जो झारखण्ड के दुमका क्षेत्र की 'हो' जनजाति की जटिल जीवन परिस्थितियों को सामने लाती है।

उपन्यास की केन्द्रीय पात्र बुदनी एक ऐसी युवती है, जो आदिवासी समाज की पारम्परिक सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी है, लेकिन परिस्थितियाँ उसे एक ऐसे मोड़ पर ले आती हैं जहाँ उसका जीवन निजी और सामाजिक टकरावों से भर उठता है। बुदनी, जो सहज, सादा, लेकिन अपने आत्मसम्मान के प्रति सजग है, की भेंट एक ईसाई युवक जेफ्रेन से होती है। जेफ्रेन का

सम्बन्ध उस समाज से है जो बाहरी धर्म और पाश्चात्य संस्कृति में विश्वास रखता है। वह बुदनी को प्रेम के माध्यम से आकर्षित करता है, लेकिन उनका यह सम्बन्ध जब विवाह की ओर बढ़ता है, तब धर्म और संस्कृति के भिन्न मूल्यों का टकराव एक असहज सच्चाई के रूप में सामने आता है।

'वनलक्ष्मी' में इस प्रेम–सम्बन्ध को केवल दो व्यक्तियों के बीच का व्यक्तिगत मामला नहीं दिखाया गया है, बल्कि इसके माध्यम से आदिवासी समाज पर मंडराते सांस्कृतिक संकट को रूपायित किया गया है। उपन्यासकार ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि धर्मांतरण की प्रक्रिया केवल एक धार्मिक बदलाव नहीं है, बल्कि यह आदिवासी समुदाय की जड़ों को हिलाकर रख देने वाली प्रक्रिया है, जिसमें न केवल उनकी परम्पराएं कमजोर पड़ती हैं, बल्कि उनकी सामूहिक अस्मिता भी खतरे में आ जाती हैं।

"वनलक्ष्मी केवल एक प्रेमकथा नहीं है – यह एक चेतावनी है, एक सामाजिक उद्घोषणा है, जो हमें यह सोचने पर विवश करती है कि जब कोई बाहरी ताकत किसी समुदाय की आत्मा, उसकी संस्कृति, और उसके जीवन मूल्य को अपने प्रभाव में लेने का प्रयास करती है, तो असल में कितना कुछ खोता है – व्यक्ति की पहचान, समुदाय का आत्मसम्मान और समाज की सामूहिक विरासत।"

इस उपन्यास की विशेषता यही है कि यह केवल कथा नहीं कहता, बल्कि प्रश्न उठाता है – कि क्यों हमेशा आदिवासी और दलित ही भूख, शोषण और सांस्कृतिक आक्रमण के शिकार बनते हैं? और क्यों उनके अस्तित्व की रक्षा के लिए केवल संवेदना ही नहीं, अपितु सजगता और संघर्ष की आवश्यकता होती है?

वरुण के बेटे नागार्जुन द्वारा रचित एक प्रभावशाली सामाजिक उपन्यास है, जो वर्ष 1957 में प्रकाशित हुआ था। "यह कृति विशेष रूप से बिहार क्षेत्र के आदिवासी मछुआरा समुदाय के जीवन, उनकी सांस्कृतिक अस्मिता, परंपरागत आजीविका और उस पर मंडराते संकटों को अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है। यह उपन्यास न केवल एक समुदाय की संघर्षगाथा है, बल्कि तथाकथित विकास की नीतियों के दुष्परिणामों पर भी गहरा विमर्श करता है।"

उपन्यास की पृष्ठभूमि में कोसी परियोजना जैसे जल–विकास कार्यक्रम हैं, जिन्हें राष्ट्र के विकास के नाम पर संचालित किया गया, लेकिन उनके परिणामस्वरूप जो विस्थापन, बेरोजगारी और सांस्कृतिक विघटन उत्पन्न हुआ, उसे नागार्जुन ने बड़े यथार्थपूर्ण ढंग से उजागर किया है। उन्होंने यह दिखाया है कि कैसे इस परियोजना ने आदिवासी मछुआरों के जीवन को पूरी तरह बदल कर रख दिया, और उनके पारंपरिक मछली पालन जैसे व्यवसाय को संकट में डाल दिया।

इस उपन्यास का मुख्य पात्र 'मोहन माजी' एक संघर्षशील और आत्मगौरव से भरा हुआ आदिवासी मछुआरा है, जो पीढ़ियों से पारम्परिक मछली पालन के कार्य में संलग्न है। उसके लिए यह कार्य सिर्फ आजीविका का साधन नहीं, बल्कि संस्कृति, पहचान और आत्मसम्मान का पर्याय है। मोहन माजी आधुनिक योजनाओं और सरकारी हस्तक्षेप के बावजूद अपने पारंपरिक पेशे को छोड़ने को तैयार नहीं होता। उसका संघर्ष एक व्यक्ति का नहीं, बल्कि पूरे समुदाय की सांस्कृतिक विरासत को बचाने की लड़ाई है।

नागार्जुन ने 'वरुण के बेटे' के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि विकास और परम्परा के बीच संघर्ष में हमेशा परम्परा को ही बलिदान देना पड़ता है। आदिवासी समाज, जो सदियों से जल, जमीन और जंगल से जुड़ा रहा है, उसे विकास की आड़ में उसकी जड़ें काटकर मुख्यधारा में शामिल करने की प्रक्रिया वास्तव में उसके अस्तित्व को मिटाने का कार्य करती हैं।

हिन्दी साहित्य में रांगेय राघव की कृति 'कब तक पुकारूँ' (1957) आदिवासी विमर्श पर आधारित उन कुछ अग्रणी उपन्यासों में से एक है, जो न केवल सामाजिक यथार्थ को स्वर देते हैं, बल्कि इतिहास, संस्कृति और राजनीति के उस त्रिकोण को भी उजागर करते हैं, जिसमें आदिवासी समाज लम्बे समय से फंसा हुआ है। यह उपन्यास राजस्थान की करनट जनजाति के जीवन संघर्ष, उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं और सामाजिक अस्तित्व की चुनौतियों का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत करता है।

रांगेय राघव ने इस रचना के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि करनट जनजाति कोई बिखरी हुई या असंस्कृत जनसंख्या नहीं है, बल्कि यह समाज एक समृद्ध परम्परा, विशिष्ट रीति–रिवाजों और सशक्त सामुदायिक पहचान से युक्त है। फिर भी तथाकथित 'मुख्यधारा' का समाज, विशेषकर धार्मिक समूह और जातिवादी सामाजिक

ढांचे, उनकी संस्कृति और जीवन पद्धति पर निरन्तर आक्रमण करता आया है। हिन्दू, ईसाई या अन्य धर्मों की घुसपैठ न केवल उनकी धार्मिक स्वतंत्रता को बाधित करती है, बल्कि उनकी सांस्कृतिक जड़ों को भी काटने का प्रयास करती है।

उपन्यास का केन्द्रीय पात्र सुखराम, इन्हीं उलझनों का जीवन्त प्रतीक है। वह स्वयं करनट जनजाति से होने के बावजूद सामाजिक स्वीकृति और सम्मान की लालसा में अपनी वास्तविक पहचान को छिपाता है और स्वयं को ठाकुर वंश का बताकर 'ऊँची जाति' का दावा करता है। यह मानसिक प्रवृत्ति, जो कई निम्न जातियों और आदिवासी समूहों में देखी जाती है, इस बात को रेखांकित करती है कि भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था कितनी गहरी पैठी हुई है, जहाँ आत्मगौरव के लिए भी व्यक्ति को अपनी असली पहचान से मुकरना पड़ता है।

सुखराम का वह प्रखर कथन– "हम इस अधूरे किले के असली मालिक हैं३ आज जो अंग्रेजों के गुलाम राजा वहाँ बैठे हुए हैं, रेडियो में अपनी जिन्दगी गुजार रहे हैं, जो प्रजा के दुख–दर्द नहीं देखते हैं, वे बेईमानी से वहाँ आकर बैठे हुए हैं। हम इसके असली मालिक हैं।" केवल एक भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं है, बल्कि इतिहास की उस अनदेखी विरासत की पुनः दावेदारी है, जिसे उपेक्षा, शोषण और छल के माध्यम से हड़प लिया गया। यह स्वर साम्राज्यवाद, सामन्ती व्यवस्था और जातिगत दम्भ के विरुद्ध एक सामाजिक उद्घोष बनकर उभरता है। इस उपन्यास में रांगेय राघव ने न केवल एक आदिवासी चरित्र की अर्न्तव्यथा को उकेरा है, बल्कि एक पूरे समुदाय के सांस्कृतिक विस्थापन, पहचान के संकट और ऐतिहासिक अन्याय को बड़े ही संवेदनशील और बौद्धिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। 'कब तक पुकारूँ' महज एक उपन्यास नहीं, बल्कि उस मौन पुकार की प्रतिध्वनि है जिसे आदिवासी समाज सदियों से करता आ रहा है– अपनी पहचान, सम्मान और हक के लिए।

उपन्यास की नायिका 'प्यारी' अपने स्त्रीत्व को ही अपने दुखों का मूल कारण मानती है। वह अपने भीतर के गहरे आक्रोश को ईश्वर से संवाद के रूप में व्यक्त करते हुए कहती है "मुझे उठा ले, मुझे अपने पास बुला ले। इस तरह मुझे धीरे–धीरे तड़पाकर मत मार। मेरा कसूर क्या है? अगर मैं पराए मर्दों के साथ सोई हूँ, तो तूने मुझे ऐसी जाति में क्यों जन्म दिया, जिसे कोई अधिकार ही नहीं? तूने मुझे औरत ही क्यों बनाया?" इस भावुक उद्गार में जाति, लिंग और सामाजिक व्यवस्था – तीनों के अत्याचारों की एक साथ प्रतिध्वनि सुनाई देती है, जो पाठकों को भीतर तक झकझोर देती है।

शानी द्वारा में रचित उपन्यास 'साँप और सीढ़ी' भारतीय आदिवासी समाज की सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक संघर्ष और बदलते समय के प्रभावों की मार्मिक एवं सजीव अभिव्यक्ति है। इसकी कथा उड़ीसा और बंगाल की सीमा पर स्थित कस्तूरी नामक गाँव के इर्द–गिर्द घूमती है। यह गाँव, जो पहले एक शान्त और परम्पराओं से बँधा हुआ स्थान था, अब धीरे–धीरे सामाजिक संक्रमण, बाहरी प्रभावों और सांस्कृतिक टकरावों की चपेट में आता दिखाई देता है।

इस उपन्यास की नायिका धान माँ है – जो हलबा जनजाति से ताल्लुक रखती है। उसका असली नाम चम्पा है, लेकिन धान बेचने के कार्य के कारण लोग उसे 'धान माँ' कहने लगते हैं। धान माँ एक बाल विधवा है, जिसने जीवन की तमाम कठिनाइयों और सामाजिक उपेक्षाओं के बावजूद हार नहीं मानी। वह अपने साहस और आत्मनिर्भरता के साथ संघर्षरत रहती है। राष्ट्रीय राजमार्ग पर बनी उसकी चाय की दुकान केवल उसका व्यवसाय नहीं, बल्कि सामाजिक गतिशीलता और बदलाव की गवाही भी है।

उपन्यास में मध्यवर्गीय समाज और पाश्चात्य प्रभावों को भी प्रमुखता दी गई है। यह वर्ग पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध से प्रभावित होकर गाँवों में तथाकथित 'नवीनता' और 'सभ्यता' का आयात करता है, लेकिन यह नवाचार स्थानीय सांस्कृतिक ताने–बाने को तोड़ता है और गाँव में एक सामाजिक विकृति का रूप लेता है। यह नई अपसंस्कृति धान माँ जैसी मूल निवासी महिला को अन्दर तक आहत करती है। उसकी पीड़ा और आक्रोश उपन्यास में तब सामने आता है जब वह कहती है यह गाँव अब रहने लायक नहीं रहा। यहाँ ओछे लोग बसते हैं और छोटी–छोटी बातों को लेकर कलह करते रहते हैं। किसी भी भले इंसान के लिए यहाँ जीवन व्यतीत करना कठिन होता जा रहा है।

'साँप और सीढ़ी' केवल एक महिला की कथा नहीं है, न ही यह केवल धर्मांतरण या जातीय संघर्ष की कहानी है। यह एक व्यापक सामाजिक रूपान्तरण का दस्तावेज है। यह दर्शाता है कि जब आदिवासी समाज अपनी जड़ों

से कटने लगता है, तो उसका अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। इस उपन्यास के माध्यम से शानी ने न केवल समाज का यथार्थ चित्रण किया है, बल्कि पाठक को यह सोचने पर विवश भी किया है कि अस्मिता, संस्कृति और सामूहिक पहचान को बचाने के लिए संघर्ष क्यों जरूरी है।

राजेन्द्र अवस्थी द्वारा रचित 'जंगल का फूल' हिन्द साहित्य में आदिवासी जीवन की गहराइयों में उतरने वाला एक उल्लेखनीय उपन्यास है, जो गोंड जनजाति के जीवन संघर्ष, सामाजिक अन्याय और अस्मिता के संकट को बड़े ही प्रभावशाली और यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास केवल एक कथा न होकर उस समाज की सामूहिक वेदना का दस्तावेज है जो सदियों से उपेक्षित रहा है। लेखक ने बस्तर अंचल के दन्तेवाड़ा, नेतानार और बेमूर जैसे इलाकों की पृष्ठभूमि में आदिवासी समुदाय की जीवनशैली, उनकी समस्याओं और बदलते सामाजिक समीकरणों को बहुत ही सजीवता और संवेदना के साथ उकेरा है।

उपन्यास में आदिवासी स्त्रियों की स्थिति को भी बहुत गहराई और मार्मिकता से चित्रित किया गया है। पितृसत्तात्मक सोच से ग्रस्त आदिवासी समाज में स्त्रियों को आज भी वह सम्मान नहीं मिलता, जिसके वे वास्तविक रूप से अधिकारी हैं। उन्हें न तो सामाजिक बराबरी का दर्जा मिलता है और न ही स्वतंत्र अस्तित्व। वे पुरुषों की इच्छाओं, सम्बन्धों और निर्णयों की परिधि में कैद हैं। दूसरी ओर गैर–आदिवासी समाज उन्हें केवल उपभोग की वस्तु समझता है, जिससे उनकी स्थिति और भी जटिल हो जाती है। एक स्थान पर उपन्यास में पुरुष मानसिकता को दर्शाते हुए कहा गया है कि स्त्री को रखना और छोड़ देना केवल मन की बात है, यानी उसे एक स्वायत्त व्यक्ति नहीं बल्कि क्षणिक आकर्षण की वस्तु के रूप में देखा जाता है। स्त्री के सम्बन्ध में यह संवाद गहरी पीड़ा और यथार्थ का उद्घाटन करता है। "मन का सौदा जब तक चलता है, ठीक रहता है, जिस दिन मन खट्टा हुआ, रास्ता बदल लिया।"

लेखक ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से यह दर्शाया है कि स्त्रियों की पहचान समाज की इच्छाओं से अलग भी हो सकती है, और उन्हें केवल किसी की पत्नी, प्रेयसी या पुत्री के रूप में सीमित कर देना उनके अस्तित्व को नकारना है। उपन्यास में आदिवासी स्त्रियों की इस स्थिति को न केवल उजागर किया गया है, बल्कि उनके भीतर उठ रही अस्मिता की चेतना को भी स्वर दिया गया है।

"सागर लहरें और मनुष्य उदय शंकर भट्ट द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है, जो मछुआरे समुदाय के जीवन, उनके संघर्ष, और बदलती सामाजिक परिस्थितियों को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। यह उपन्यास विशेष रूप से इस बात को उजागर करता है कि किस प्रकार विकास के नाम पर हो रहा शहरीकरण पारंपरिक समुदायों के अस्तित्व को संकट में डाल रहा है।"

कहानी की मुख्य पात्र 'रत्ना' एक ऐसी युवती है, जो अपने गाँव और वहाँ की सीमित दुनिया से बाहर निकलने की तीव्र इच्छा रखती है। वह अपने भीतर कई सपने पालती है और चाहती है कि वह अपने जीवन को एक नई दिशा दे सके। गाँव से जुड़ा मोह अब उसके लिए बोझ बनता जा रहा है, क्योंकि वह एक बेहतर भविष्य की तलाश में है – एक ऐसा भविष्य जहाँ उसके सपने साकार हो सकें।

इस उपन्यास में केवल रत्ना की व्यक्तिगत आकांक्षाओं और संघर्षों को ही नहीं दिखाया गया है, बल्कि कोली जनजाति के संपूर्ण जीवन–पद्धति, उनकी सांस्कृतिक जड़ें, त्योहारों की रंगीनता, और सामाजिक संरचना को भी संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

'सागर लहरें और मनुष्य' केवल एक व्यक्ति की कहानी नहीं है, यह उन हजारों मछुआरों और आदिवासी समुदायों की पीड़ा का प्रतीक है जो विकास और आधुनिकता की दौड़ में अपने घर, संस्कृति और जीवन के साधनों को खोते जा रहे हैं। यह उपन्यास हमें सोचने पर विवश करता है कि प्रगति की कीमत किनसे और किस रूप में चुकवाई जा रही है।

'शालवनों का द्वीप' गुलेशर खान 'शानी' का एक ऐसा उपन्यास है, जो हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन के यथार्थ, उसकी जटिलताओं और सांस्कृतिक मूल्यों का सजीव चित्रण करता है। यह कृति पहली बार 1967 में प्रकाशित हुई थी और तब से आज तक यह उपन्यास आदिवासी विमर्श के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण पाठ के रूप में देखा जाता है। शानी ने इसमें मध्य प्रदेश (अब छत्तीसगढ़) के बस्तर अंचल के भीतरी क्षेत्र 'अबूझमाड़' को कथा के केन्द्र में रखा है, जो अपनी प्राकृतिक विकटता, सामाजिक जटिलताओं और सांस्कृतिक विशिष्टताओं के लिए जाना जाता है। उन्होंने विशेष रूप से ओरछा नामक गाँव और वहाँ रहने वाले माड़िया–गोंड समुदाय के जीवन को आधार बनाकर इस उपन्यास का तानाबाना बुना है।

इस उपन्यास में शानी आदिवासी समाज को महज किसी लोककथा या पौराणिक दृष्टि से नहीं देखते, बल्कि वह उनके जीवन के यथार्थ, संघर्ष, संवेदनाओं और आत्मसम्मान के साथ गहराई से जुड़ते हैं। डॉ. एम. दफ्तरोज अहमद जैसे समीक्षकों ने भी इस बात की पुष्टि की है कि "इस उपन्यास में माड़िया–गोंड समुदाय की जीवन–पद्धति, उनके पर्व–त्योहार, विश्वास, और सामाजिक ढांचे को एक सजीव और यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।" शानी ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि "मैंने वहाँ की जनजातियों के जीवन के भीतर उतरने की कोशिश की, न केवल उनके रीति–रिवाजों को समझा, बल्कि उनके भीतर की मानवीय भावनाओं, पीड़ा, उल्लास और समाज–बोध को भी उकेरने का प्रयास किया है।"

'शालवनों का द्वीप' केवल एक आदिवासी कथा नहीं है, बल्कि यह उस समाज की आत्मा में प्रवेश करने की साहित्यिक कोशिश है, जिसे मुख्यधारा की दृष्टि अक्सर नजरअंदाज कर देती है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि यह आदिवासियों को केवल सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखता, न ही उन्हें 'पीड़ित' के रूप में सीमित करता है, बल्कि उन्हें उनके पूरे अस्तित्व के साथ – एक स्वायत्त सांस्कृतिक इकाई के रूप में सामने लाता है।

निष्कर्ष–

इस प्रकार स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी जीवन से से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज को केवल आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर आंकना सही नहीं है। उनके पास भी अपनी एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, जीवन–दर्शन है और अपने समाज के प्रति गहरी आत्मीयता और संवेदनशीलता है। उनका विकास तब ही सार्थक हो सकता है जब उनकी परम्पराओँ और अस्मिता का सम्मान किया जाए, न कि उन्हें मिटा कर तथाकथित "मुख्यधारा" में शामिल किया जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गंगासहाय मीणा, आदिवासी और हिन्दी उपन्यास, अनन्य प्रकाशन, नईदिल्ली, प्रथम सं. 2016, पृष्ठ– 65।
2. स्नेहलता नेगी, आदिवासी समाज और साहित्य अनुज्ञा प्रकाशन दिल्ली, सं. 2021, पृष्ठ – 183।
3. रांगेय राघव, कब तक पुकारूँ, राजपाल एण्ड संस, नईदिल्ली, सं. 2009, पृष्ठ – 21।
4. वही, पृष्ठ – 107।
5. शानी, साँप और सीढ़ी, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, प्रथम संस्करण – 1971।
6. राजेन्द्र अवस्थी, जंगल के फूल, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1962, पृष्ठ – 125।
7. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिक पब्लिशर्स, नईदिल्ली, प्रथम संस्करण – 2014, पृष्ठ – 107।
8. डॉ. एम. फिरोज अहमद, वाङ्मय, त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका, अलीगढ़, अक्टूबर, 2013, पृष्ठ – 181।
9. शानी, शालवनों के द्वीप, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, प्रथम सं. 1967।

ISSN : 2394-4366

Received: 14 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

छत्रपति संभाजी महाराजांची नाटक वाङमयातील प्रतिमा

– डॉ. विकास नागोराव दुधभाते
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग,
श्रीकृष्ण कनिष्ठ महाविद्यालय,
गुंजोटी–313606 (महाराष्ट्र)

ई–मेलः
vikasnagorao@gmail.com

नाटक हा एक ललित वाङ्मयाचा प्रकार आहे। सर्व ललित वाङ्मयाचा प्रमुख उद्देश म्हणजे जीवनातील काही सत्य हे अनेक कल्पित प्रसंगांनी कलात्मक रीतीने समाजासमोर मांडणे व मनोरंजन करणे। नाटक हेही त्याला अपवाद नाही. सर्वसाधारणपणे आपणास नाटक म्हणजे असे सांगता येईल रंगभूमीवर दृष्यात्मत रूपाने प्रायोगिक होईल अशी वाङ्मयन रचना म्हणजे नाटक नाटककार आपली कलाकृती निर्माण करताना सत्याचा वास्तवतेचा प्रत्यय घेत असतो काही नाटककार यासाठी ऐतिहासिक घटनांचा आधार घेऊन नाटके रस्त्यात मराठी नाटकांमध्ये ऐतिहासिक नाटके मोठ्या प्रमाणात लिहिलेली आपणास दिसून येतील।

(1) वासुदेव शास्त्री खरे यांचे 'गुणोत्कर्ष नाटक' – संभाजी राजेंच्या जीवनावर आधारित लिहिलेले पहिले ऐतिहासिक नाटक वासुदेव शास्त्री खरे या इतिहास अभ्यासकाचे इसवी सन् 1885 मध्ये लिहिलेले 'गुणोत्कर्ष' होय। या नाटकाचा प्रमुख नायक हा वडगाव चा जिवाजी पंत देशपांडे एक देशभक्त आहे। त्यांच्यावर अनेक संकटे येतात व त्याचे तो परिहार करतो। यासम्बन्धीचे नाटकाचे कथानक आहे. या नाटकामध्ये पन्हाळगडचा किल्लेदार गणपतराव याच्या नादाने संभाजीराजे अत्यन्त नादान व दुष्ट बनल्याचे दर्शविले आहे।

संभाजी राजे च्या दुष्ट वागण्याने व मोगला जाऊन मिळण्याच्या मनसुभ्यामुळे दुःखी झालेले शिवाजी महाराजांचे चित्रण या नाटकांमध्ये केले आहे. शिवाजी संभाजी बद्दल प्रल्हाद निराजीस सांगतात, ''ज्या महाराष्ट्र देशाच्या राज्यरुपी पक्षाचे बीजारोपण करून त्याचं आज 40 वर्षे सतत् मेहनत घेऊन मी पाणी घातले तो राज्य वृक्ष आकस्मात तुटून पडण्याचा समय आला आहे आणि त्यास तोडणारा तरी कोण तर प्रत्यक्ष माझा मुलगा'। पुढे संभाजीराजे ला उद्देशून असे म्हणतात, ''शंभू शंभू असं कसा रे कुलागार कार्टा निप जलास श। माझ्याच उदरात जन्मलास त्या तुला दूसरी कोठे जागा नव्हती तू जन्मलास तेव्हाच का मेला नाहीस? म्हणजे हे खेळ वाहने तरी माझ्या नशिबी आले नसते''।

संभाजी राजे च्या भविष्याबद्दल शिवाजी महाराज निराजीच असेही सांगतात ''तो पुढे मागे केव्हातरी मराठी राज्य बुडवून तुमच्या माना मुसलमानाच्या हाती देणार हे खचित''।

(2) आत्माराम मोरेष्वर पाठारे संगीत श्री संभाजी नाटक – संभाजी जीवनावरचे महत्त्वाच ऐतिहासिक नाटक म्हणजे 1891 स''' प्रकाशित केलेले आत्माराम मोरेश्वर पाठारे यांचे 'संगीत श्री छत्रपती संभाजी' हे नाटक होय. या नाटकात संभाजीच्या दूरवर्तनाचे चित्रण केले आहे। या नाटकांचे एकूण सात अंक आहेत। पहिल्या दोन अंकांमध्ये शिवाजीचा एकनिष्ठ व

पराक्रमी सेवक हिरोजी फर्जद याला संभाजीने कुस्तीमध्ये कपटाने ठार मारल्यामुळे त्याचा मुलगा येसाजी व मुलगी तुळशी संभाजीवर सूड उगवण्यासाठी आसुसलेली दाखवले आहेत। दोघेही बहिण भाऊ वर करणे संभाजीची गोड बोलून एकनिष्ठ असल्याचे दर्शवले आहे। तुळशी संभाजीस खोटे प्रेमाच्या जाळ्यात आडकावते। तुळशी विषयी असक्त वासनांच्या आहारी गेलेल्या संभाजीचे मनोविश्लेषण पण या नाटकाच्या पदातून दाखविले आहे. संभाजी हे पद म्हणतो।

(3) वा. ना. शहायांचे 'प्रणयी युवराज' – संभाजी राजेच्या जीवनावरील एक महत्त्वाचे नाटक श्प्रणयी युवराजश्होय। या नाटकामध्ये संभाजी राजे व औरंगजेबाची कन्या झेबूनिस्सा यांच्या प्रणय कथेवर नाटक आधारलेले आहे। या नाटकात लेखकाने नादान, उतावीळ, प्रेमवीर अशी संभाजी राजेची प्रतिमा रंगवलेली आहे। संभाजी राजे आपल्या वडिलांसोबत औरंगजेब बादशहास भेटावयासाठी जातात। तेव्हा बाल संभाजी व झेबूनिस्सा भेट जयसिंगाच्या उद्यानात होते। एकमेकांना पाहताच ते प्रेमात पडतात. परंतु यावेळी यावेळी झेबूनिस्सा ही रजपूत वेशामध्ये असते. दुसरीकडे झेबूनिस्सा शिवाजी महाराज दऊे न त्यास मुस्लिम करण्याचा बेत औरंगजेबाचा होता। ही वाघ त्यांची पुत्र अकबरास सामान्य होती। त्यांच्या मनात संभाजी द्यावे असे विचार होता। या सर्व घटकांचा समावेश यामध्ये आहे।

(4) वि. हा. औंधकरांचे 'बेबंदषाही' नाटक (1924)– संभाजीच्या व्यक्तिमत्व संदर्भात गडकरी यांच्याच विचारांशी पायावर पाय ठेवून औंधकरांनी 1924 मध्ये बेबंदशाही हे नाटक लिहिले औंधकरानीं चिटणीस बखरीचा आधार जास्तीत जास्त घेऊन हे नाटक लिहिले आहे। या नाटकामध्ये संभाजीराजांचे वर्णन विलासी, कामांध, बेजबाबदार असेच दाखविले आहे। संभाजी राजेंनी शिर्क्यांचे शिरकाण केल्यामुळे गणोजी शिर्के हा सुडाने पेटून भोसल्याचा नरवध करण्यासाठी मोगलाला मिळालेला असून कलशा कबजीला हातांशी धरून संभाजीराजेना पकडण्याचा बेत आखतो याची माहिती खंडोजी चिटणीसासारख्या राज्यनिष्ठ सेवकाला शाहीर मार्फत लागते। ते येसूबाई साहेबांना सांगतात, संभाजीराजांना रायगडाच्या बाहेर जाण्यापासून रोखण्याची विनंती येसूबाईस करतात। तेव्हा येसूबाई संभाजीराजे ला रोखण्यासाठी जाते। तेव्हा मद्यधुंद संभाजी राजे कलश्या कब्जीला दिलेल्या वचनासाठी येसूबाई लाथाडल्याचे या नाटकात दर्शवले आहे। मध्य धुंद संभाजीराजांचे चित्रण केले आहे।

(5) मालती माधव तेंडुलकर यांचे 'मराठ्यांचा राजा' – संभाजी राजेंची गोव्यावरील स्वारी हा नाटकाचा महत्त्वाचा मूळ उद्देश आहे। या नाटकामध्ये संभाजी राजेंची व्यसनी, कामांध प्रतिमा पुसून काढण्याचा प्रयत्न तेंडुलकरांनी केला आहे। संभाजी राजे जेव्हा गोव्यावर स्वारी करतात। त्यावेळी पोर्तुगीजांचा वकील फर्नांडिस संभाजीराजे ला खूण करण्यासाठी जड जवाहिरात व त्यांच्यासोबत विदेशी मद्य देतो। तेव्हा संभाजी राजे मद्य स्वीकारत नाहीत। त्यानंतर नजराणा म्हणून सेराला फिरंगी सौंदर्य म्हणून महाराजां समोर हजर करतात। त्यावेळी संभाजी राजे तिला आपली लहान बहीण माननू तिची खणा नारळाने ओटी भरून तिच्या घरी नेऊन सोडतातमराठ्यांचा राजा नाटकामध्ये संभाजी राजे कलशाच्या पूर्णपणे आहारी गेलेले बेजबाबदार, भोळे असे या नाटकांमध्ये दाखवले आहेहे।

(6) यशवन्त नारायण टिपणीस यांचे 'शिवाजीलाशह' नाटक (1933) – हे नाटक 1933 मध्ये टिपणीस यांनी लिहिले छत्रपती शिवाजी आणि संभाजी राजे या दोघांच्या संबंधावर नाटकाची रचना आधारलेली आहे. गतकालीन कोणत्याही नाटकाचा अनुकरण न करता हे नाटक टिपणीस आणि रचले आहे। या नाटकाचा कथानकावरून लेखकाने चिटणीस बकरीचा आधार घेतल्याचे निदर्शनास येते। शिवाजीला शह या नाटकांमध्ये संभाजीराजे स्वच्छंदी, व्यसनी, बेजबाबदार आणि स्त्रीशौकीन असल्याचे दर्शवले आहे।

टिपणीसाच्या या नाटकात संभाजी स्त्रीशौकीन असून त्याचे राधा व हिरकणी या दोन स्त्रियांची संबंध असल्याचे दर्शवले आहे। त्यातील राधा विवाहित असून तिचे संभाजी राजे वर प्रेम होते। हळदी–कुकं वाच्या निमित्ताने ती रायगडावर आल्यावर संभाजीच्या महालात जाते। त्यावेळी संभाजी राजे तिच्यावर बलात्कार करतात असे नाटकात दाखविले आहे।

(7) न. के. सोनसुरकर यांचे 'थोरात यांची कमळा' नाटक (1951) – संभाजी राजे यांच्या जीवनावर थोरात यांची कमळा हे ऐतिहासिक नाटक नाके सोनसुरकर यांनी 1981 मध्ये लिहिले या नाटकांमध्ये मराठ्यांचा पराक्रमी सरदार थोरात यांची रूप सुंदर कन्या कमळा आणि संभाजी राजे यांच्या प्रणय कथेवर हे नाटक आधारलेले आहे। या नाटकामध्ये पराक्रमी, शूर, दिलदार

परंतु विषयासक्त संभाजी रंगवला गेला आहे।

थोरात यांच्या वाड्यात संभाजी असताना विसाजी घाटगे विजापूरच्या आदिलशाहीचा सरदार संभाजी राजेला पकडून नेण्यासाठी येतो तेव्हा कमळा व थोरात दोघेही त्याचा विरोध करतात। घडलेले या घटनेमुळे संभाजी राजांची माफी मागतात। संभाजी राजे कमळेला आपल्या घोड्यावर बसून रायगडावर घेऊन जातात। या घटनेची माहिती जेव्हा शिवाजी महाराजांना लागते। संभाजीला उद्देशून म्हणतातषकिती महत्वकांक्षा बाळगल्या होत्या आम्ही आपल्याविषयी केवढे मनोरे मनात बांधले होते आम्ही कर्तबगारीचे? पण त्या आमच्या महत्वकांशी मनोर्‌यांचा चक्काचूर झाला ..... शंभू म्हणजे अबलांना आपल्या शीलाच रक्षण करणारा पाठचा भाऊ वाटावा पण या तुमच्या कृत्याने त्या आमच्या अशा धुळीस मिळाल्या। आपल्या शिलाचे रक्षण करता म्हणून ज्याच्याकडे आया बहिणी असेल आणि आदराने पुण्यात्मा म्हणून पहात होत्या, तोच त्यांना शील भ्रष्ट करून पापात्मा ठरलाष्प्रायश्चित्त अग्नीत जळत असलेला संभाजी म्हणतो ''बस! आबासाहेब नाही ऐकवत! आमच्यात आता ते कर्णकडू शब्द! भर सभेत द्रौपदीचं वस्त्रहरण करू पाहणारा, दुष्ट दुश्मनास आणि द्रोपदीच्याच देहलतेच्या कोमलतेने कामांध होऊन त्यामुळे सर्वस्वाला मुकलेला कीचक, हे दोन दुरात्मे आपल्या पक्तीला आणखी एक तिसरा मिळाला म्हणून ते पहा अंतराळातून आमच्याकडे पाहून खदखदा हसत आहेत. आबासाहेब आपण सारख्या पुण्यवान पवित्र पुरुषांचा पुत्र म्हणून घेण्याची आमची पात्रता नाही''।

नाटकांमध्ये पुढे कमळेला पळवून आणल्याबद्दल संभाजी राजेंना पन्हाळ्यावर नजर कैदीची शिक्षा होते कमळा शेवटी संभाजीने केलेल्या गुन्ह्यात स्वतः सुद्धा जबाबदार आहे म्हणून आत्महत्या करते असे चित्रण या नाटकात केले आहे।

नाटकांची चिकित्सा –

(1) सोयराबाईंना भिंतीत चिडून मारणारे नाटकामध्ये आत्माराम पाठारे यांचे संगीत श्री छत्रपती संभाजी, गडकऱ्यांचे राजसन्यास, औंधकरांचे बेबंदशाही यासारख्या ऐतिहासिक नाट्य कृतीतूनही सोयराबाईला संभाजी राजांनी भिंतीत चीनुन मारल्या बाबतचे अतिरंजीत चित्र नाटककाराने रेखाटले आहे।

संभाजी राजांच्या वास्तव इतिहासात मात्र सोयराबाईचा मृत्यू दिनांक 27 ऑक्टोबर, 1681 म्हणजे महाराजांच्या मृत्यूनंतर1920 महिन्यांनी आणि संभाजी महाराज रायगडावर राज्याधिकारी म्हणून आल्यानंतर पंधरा–सोळा महिन्यांनी झाला. सोयराबाई रायगडावर मरण पावल्या त्यावेळी संभाजी महाराज पन्हाळ्यात होते इंग्रजांच्या बातमीनुसार सोयराबाई रक्तातील साराने मरण पावल्या।

छत्रपती संभाजीराजांनी 20 जुलै 1680 रोजी स्वतः चा राज्याभिषेक करून घेतला यानंतर जून 1681 च्या सुमारास पन्हाळ्यावर असताना त्यांना अन्नामध्ये विष देऊन मारण्याचा कट केला यामध्ये सोयराबाईचा हात आहे असे समजूनही संभाजी राजांनी इतर मंर्त्याप्रमाणे त्यांना ठार केले नाही त्याचवेळी त्यांना मृत्यू आला पण तो त्यांनी विष प्राशन करून आत्महत्या केली म्हणून यात छत्रपती संभाजी महाराजांना जबाबदार धरता येणार नाही याशिवाय छत्रपती संभाजी राजांनी आपल्याला राज्यपद मिळावे म्हणून नवस केला होता अर्थात प्रत्यक्ष सत्ता मिळाल्यानंतर तो नवस पूर्ण झाला। त्यामुळे त्याप्रसंगी त्यांनी 24 ऑगस्ट 1680 रोजी बाकरे नावाच्या ब्राह्मणाला संस्कृतमध्ये दानपत्र करून दिले यामध्ये सोयराबाईचा उल्लेख करताना त्यांनी पुढील उद्‌गार काढले आहेत सुरू झालेल्या प्रबल वैराग प्रविष्ट झालेल्या दुष्टमंर्त्याचा ज्येष्ठ पुत्राला राज्य दान करू नये या दुष्ट सल्ल्यामुळे जिचे हृदय कलोशीत झाले आहे वस्तूचा निळ्या पिवळ्या पार्श्वभूमीत असलेल्या स्फटिकांप्रमाणे जिचे हृदय स्वच्छ सौजन्य युक्त आहे अशा राणीविषयी पक्षपातीमुळे शिवाजीराजांचे मत आपल्या विरुद्ध असल्याचे समजून सुद्धा केवळ तेवढ्याच कारणाने पितृभक्तीत आंतर पडू न देणारे ..... वगैरे'।

या ऐतिहासिक पुराव्यावरून संभाजी राजांनी रागामध्ये येऊन सोयराबाईंना भिंतीत चिडून ठार मारले हा आरोप तथ्यहीन व खोटा असल्याचे सिद्ध होते।

(2) छत्रपति संभाजी महाराज यांचा इतर स्त्रियांशी जोडलेला संबंध – नाटकामध्ये वासुदेव शास्त्री खरे यांनी गुणोत्कर्ष या नाटकात राधा बाई वर अशक्त संभाजी रंगवलेला आहे यशवंत नारायण टिपणीस यांनी शिवाजीला शह या नाटकात राधा व हिरकणी या दोन काल्पनिक स्त्री पात्राशी संभाजी राजांचा संबंध जोडून स्त्री शौकीन संभाजीराजांची प्रतिमा निर्माण केलेली आहे आबासाहेब आचरेकरांनी अमर जहाले राजे छत्रपती संभाजी आणि सह्याद्री सांग` कथा शंभूची या नाटकांमध्ये गजरा या काल्पनिक स्त्रीपात्रासोबत संभाजीराजांचे संबंध

जोडून बदली अशी संभाजी राजांची प्रतिमा निर्माण करून संभाजी राजांना बदनाम करण्याचा प्रयत्न केला आहे।

वरील मराठी ऐतिहासिक साहित्यामध्ये जी स्त्रीपात्रे रंगवलेले आहेत त्या ऐतिहासिक कागदोपत्री कोठेही पुरावा सापडत नाही असे असताना सुद्धा अशा काल्पनिक पात्रांच्या आधारे संभाजीराजांची बदफैली व रंगेल प्रतिमा रंगवणे हे इतिहासाचा विपर्यास करणारे आहे। त्यामुळे संभाजी राजांची प्रतिमा सर्वसामान्य जनमानसात मुर्ली बनली।

(3) शिर क्याचे शिरकाण करणारे संभाजीराजे– नाटकामध्ये राज संन्यास, बेबंदशाही, मानी मराठा छत्रपती संभाजी या नाटकातील शिर्क्यांच्या शिरकानाबाबतचे विकृत चित्र नाटककाराने रेखाटले आहे। शिरकाण म्हणजे शीर कापणे किंवा शिरक्याची कत्तल करणे असा चुकीचा अर्थ घेतल्यामुळे सर्व घोटाळा झाला आहे शिरकाण या शब्दाचा अर्थ शिरख्यांच्या ताब्यातील प्रदेश असा आहे। जसे फिरंग्याचे फिरंगण हपसांचे प्रदेश हापसान तसेच शिरकाण म्हणजे रायरी सभोवतालचा शिरक्यांचा मुलुख असा स्पष्ट निर्देश सर्वत्र कागदपत्रात पहावयास मिळतो। शिरकाण म्हणजे शिरख्यांची जहागीर होती मूळ शब्द प्रयोग शिरकाण केले असा नसून शिरकाण घेतले असा आहेआमचे शिरकाण आम्हास परत मिळो अशी शिर्क्यांची मागणी होती शिर्के मंडळी ही जवळपास इसवीसन 1688 च्या शेवटपर्यंत संभाजीराजांशी एकनिष्ठ होती परंतु शहा आजमचे सैन्य आल्यावर मुकर्रबखा बरोबर शिर्क्यांचा धीर सुटून ते आपल्या वतनाच्या बचावार्थ मोगला कडे गेले त्याचा फायदा मुकरब खानाने घेऊन शिरख्यांचा पन्हाळ्याच्या राजकारणात उपयोग करून घेतला। त्याचा परिणाम संभाजी राजे व शिर्के यांच्या भांडणात होऊन शिरख्यांना सर्वस्वी मोगलांचे चाकर म्हणून राहण्याची पाळी आली। ऐतिहासिक पुराव्यानुसार शिरक्यांमध्ये दौलतराव गणोजी व देवजी यांचा समावेश होतो छत्रपती संभाजी राजांनी या सर्वांची जहागिरी जप्त केली त्यांना मारले नाही।

निष्कर्ष–

(1) बहुतांश ऐतिहासिक नाटकातून संभाजी राजांची व्यसनी बदफैली, क्रूर, अविचारी अशी अनैतिक प्रतिमा निर्माण केली आहे।

(2) संभाजी राजांवरील मराठीतील ऐतिहासिक नाटक वाङ्मय आधारित असल्यामुळे संभाजी राजांवर सोयराबाईंना भिंतीत चुनून मारणारा मुत्सद्दीमेतं र्यांना ठार करणारा राजारामाला अंधार कोठडीत टाकणारा शिर्क्यांचे शिरकाण करणारा असे अनेक आरोप करून त्यांची क्रूर खुर्ची प्रतिमा निर्माण केली।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुणोत्कर्ष : खरे वासुदेव शास्त्री, मुंबई – 1886।
2. संगीत श्री छत्रपती संभाजी, बाळकृष्ण लक्ष्मण पाठक, मुंबई– 1881।
3. प्रणयी युवराज : चहा वालचंद्र नानचंद्र, प्रकाशन बालचंद्र कोठारी बी. ए. कसबापेठ, पुणे – 1917।
4. बेबंदशाही : औंधकर वी .ह., परचुरे प्रकाशन मंदिर, मुंबई – 1975।
5. मराठ्यांचा राजा : तेंडुलकर मालती माधव, प्रकाशन गणेश महोदय आणि कंपनी, पुणे – 1933।
6. शिवाजीला शह : टिपणीस यशवंत नारायण, प्रकाशन आनंद मोरेश्वर पौराणिक परचुरे पौराणिक, मंडळी माधवबाग मुंबई– 1933।
7. थोराताची कमळा : सोनसुरकर ना. के. आनंत प्रकाशन मुंबई–8।
8. समग्र सेतू माधवराव पगडी (खण्ड दुसरा) : जोशी द. प. उषा जोशी, मराठी साहित्य परिषद, हैदराबाद–2010।
9. शिवपुत्र छत्रपती संभाजी महाराज : मोहोड शालिनी, कलादन प्रकाशन पुणे – 2012।
10. श्री छत्रपती संभाजी महाराज यांचे विचिकित्सक चरित्र : बेंद्रे वा. सी. मनोरमा प्रकाशन, मुंबई, द्वितीय आवृत्ति–1971।

ISSN : 2394-4366

Received: 16 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

विभारानी के नाटकों का उद्देश्य

– राखी प्रवीण कोटला
शोध छात्रा – अनुसंधान केन्द्र – स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग एवं अनुसंधान केन्द्र न्यू आर्ट्स, कामर्स एवं साइंस कालेज (स्वायत्त), अहिल्यानगर–414001 (महाराष्ट्र)

ई–मेलः
rakhee.kotla@gmail.com

सम्बद्ध – सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)

– शोध निर्देशक
– डॉ. हनुमंत दशरथ जगताप
अनुसंधान केन्द्र – स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग एवं अनुसंधान केन्द्र, न्यू आर्ट्स, कामर्स एवं साइंस कालेज (स्वायत्त), अहिल्यानगर – 414001 (महाराष्ट्र)

सम्बद्ध– सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)

ई–मेलः
hanumantdashrath@gmail.com

सारांश

प्रत्येक कार्य को करने के पीछे कोई न कोई उद्देश्य होता है। उद्देश्य मनुष्य को कुछ नया करने का लिए प्रेरित करता है। विभारानी के प्रत्येक नाटक के पीछे महत्वपूर्ण उद्देश्य छिपे हैं। विभारानी ने नाटकों में आज के यथार्थ को अंकित करने के साथ–साथ व्यापक समाज और व्यक्ति के स्तर पर उनके संघर्षों में निरन्तर व्यापक मानवीय सरोकारों से जोड़ा है। उनके नाटकों ने स्त्री जीवन की विडम्बनाओं को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से अभिव्यक्त किया है। नाटकों में कहीं प्रेम का उदात्त रूप देखने को मिलता है तो भटकाव भी है। बदलते परिवेश में सामंजस्य स्थापित करने और व्यस्त जीवन से अपने और अपने परिवार के लिए समय निकालना आदि उद्देश्य है।

प्रस्तावना–

प्रकृति में प्रत्येक वस्तु, विचार, भावना, संवेदना आदि का अपना महत्व होता है। जैसे– एक छोटे से बीज को मिट्टी में मिलकर एक पौध से फसल अथवा एक विशाल वृक्ष बनकर धरती के सभी प्राणियों की सेवा करनी होती है। उसी प्रकार से मानव जीवन में प्रत्येक कार्य के पीछे कोई ना कोई लक्ष्य, भावना, आवश्यकता, प्रेरणा या उद्देश्य अवश्य निहित रहती है। उद्देश्य ही वह शक्ति है जो व्यक्ति को सोचने, निर्णय लेने और कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। उद्देश्य कठिनाइयों से संघर्ष करने की शक्ति देता है। उद्देश्य अस्पष्ट, अनिश्चित हो तो व्यक्ति भ्रमित और निराश हो सकता है। इसलिए जीवन में सफल होने के लिए अपने कार्यों का उद्देश्य स्पष्ट और सकारात्मक होना आवश्यक है। विभारानी जी मैथिली और हिन्दी की राष्ट्रीय स्तर की लेखिका हैं। उन्होंने कविता, उपन्यास, नाटक, कहानी, संस्मरण के अतिरिक्त लोक साहित्य, व्यंग्य, मैथली से हिन्दी अनुवाद, आलेख, आदि पर कलम चलाई है। विभारानी की कलम से मैथली और हिन्दी भाषा के साहित्य में वृद्धि हुई है। विभारानी हिन्दी और मैथिली में अब तक 48 पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी हैं। उनके हिन्दी नाटकों का उद्देश्य इस प्रकार से है–

'आओ तनिक प्रेम करे' नाटक में गुप्ताजी एक कर्तव्यनिष्ठ पति के समान जीवन भर आर्थिक जिम्मेदारियों को निभाते रहे। उनकी पत्नी सपन पग–पग पर अकेले ही घर और बाहर की जिम्मेदारियों को पूर्णनिष्ठा और ईमानदारी से निभाती रही किन्तु उसे जीवन भर भावनात्मक संतोष नहीं मिला। केवल जिम्मेदारियाँ निभाने से सम्बन्ध जीवित नहीं रहता है। गुप्ता जी ने कभी अपना प्रेम शब्दों अथवा व्यवहार से व्यक्त नहीं किया। रिटायर्ड होने के बाद यह आभास होना कि जीवन में कभी प्रेम नहीं किया उनके अकेलेपन, अजनबीपन और एक रिक्तता को दर्शाता है। समय पर प्रेम की अभिव्यक्ति ना

हो तो सम्बन्ध औपचारिक और अर्थहीन बन जाता है। दोनों एक–दूसरे से प्रेम करते हैं किन्तु कभी प्रकट नहीं किया। यह अनकहा प्रेम अन्ततः दूरी का कारण बनता है। सम्बन्ध केवल साथ रहने से नहीं अपितु महसूस करने से बनते हैं। आज भी बहुत से लोग कैरियर और काम को प्राथमिकता देते हुए परिवार को समय नहीं दे पाते हैं। कई दम्पति वर्षों तक साथ रहते हैं किन्तु भावनात्मक रूप से अजनबी होते हैं। गुप्ता जी का अनुरोध सपन स्वीकार नहीं कर पाती। यह प्रतिशोध नहीं बल्कि उसकी आन्तरिक थकान और भावनात्मक संतोष के समाप्त हो जाने को दिखाता है। उसने अपने जीवन का बड़ा हिस्सा उपेक्षा और इंतजार में व्यतीत किया है। अब वह भावनात्मक रूप से आत्मनिर्भर हो चुकी है। उसके लिए प्रेम एक अधूरा अध्याय बन चुका है। प्रेम केवल मन से नहीं व्यवहार और शब्दों में भी व्यक्त करना पड़ता है। कर्तव्य और संवेदना का संतुलन ही दाम्पत्य जीवन को जीवित रखता है। समय पर दिया गया स्नेह जीवन भर का साथ बन जाता है। गुप्ता जी आर्थिक जिम्मेदारी को निभाना ही प्रेम समझते हैं और भावनाओं को व्यक्त करने में संकोच करते हैं। आधुनिक समाज में लोग सफलता और काम को प्राथमिकता देते हैं और सम्बन्धों की उष्मा खो देते हैं। वहीं पत्नी त्याग, धैर्य, मौन, सहनशीलता से उस भारतीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो बिना शिकायत अपने कर्तव्य को निभाती है। जो प्रेम चाहती है पर माँगती नहीं। जो सम्बन्धों को बनाए रखने के लिए स्वयं को पीछे रख देती है। निरन्तर उपेक्षा व्यक्ति को भीतर से भावनात्मक रूप में शून्य कर देती है। यह स्थिति आधुनिक दाम्पत्य जीवन की विडम्बना का है जिसमें बाहरी रूप से सम्बन्ध कायम है, पर भीतर से भावनात्मक दूरी है। यह बताता है कि हर भावना की एक समय सीमा होती है। दाम्पत्य जीवन में भावनात्मक संवाद की आवश्यकता होती है। स्त्री की मौन पीड़ा और आधुनिक जीवन में भागदौड़ से सम्बन्ध दम तोड़ रहे हैं। ऐसे में मनुष्य स्वयं को भीड़ में अकेला खड़ा पाता है। प्रेम को व्यक्त करना कमजोरी नहीं बल्कि सम्बन्धों को शक्ति देता है। सम्बन्धों में देर से आई संवेदनशीलता कभी–कभी बहुत देर कर जाती है, इसलिए समय रहते अपने जीवन साथी के साथ कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के अतिरिक्त अपने मन की, अपने विचारों की, अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करनी चाहिए।

'अगले जनम मोहे बिटिया ना कीजो' नाटक इस भ्रम को तोड़ती है कि घर प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुरक्षित स्थान है और बताता है कि अन्याय कहीं भी हो सकता है, इसलिए आँखें बंद नहीं करनी चाहिए। समाज में अक्सर यह माना जाता है कि अपराधी चाहे अपना ही क्यों ना हो वह अपराधी है और रिश्ते अपराध को ढक नहीं सकते। पिता या भाई होने का सम्बन्ध उन्हें कानून से ऊपर नहीं बनाता। कानून और नैतिकता सर्वोपरि है। यदि बहन अथवा बेटी आत्महत्या कर लेती है या घर छोड़ देती है तो यह समाज की विफलता को दिखाता है। पीड़िता को अकेला छोड़ देना भी अपने आप में एक अपराध ही है। यह संदेश देता है कि हमें पीड़िता का साथ देना चाहिए। सकारात्मक दृष्टि से ऐसी कथा का उद्देश्य आत्महत्या को बढ़ावा देना नहीं बल्कि यह दिखाना है कि मौन और उपेक्षा विनाशकारी परिणाम ला सकते हैं। अन्याय के विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए। बलात्कार एक दुर्घटना है। समय के साथ घाव भर जाने पर पीड़िता को एक खुशनुमा और भरपूर जीवन जीने के लिए और एक स्वस्थ परिवार बनाने में समाज को आगे आकर सहयोग करना चाहिए। अंकित, इशिता और सुजीत को अपने होने वाले पति अमन के बारे में बताती है कि "सब कुछ जानकर ही उसने मेरी तरफ हाथ बढ़ाया है। उसने कहा कि ..... एनी, मैं तुम्हारे टूटे हुए विश्वास को फिर से जोड़ना चाहता हूँ। ..... मैं .....बताना चाहताहूँ कि दुनिया का हर पुरुष खराब नहीं होता। मैं समझाना चाहता हूँ कि शरीर इंसान के मन के विकास और जीने की राह में रोड़ा नहीं होता ..... मैं कहना चाहता हूँ कि दूसरों के कर्मों को अपना भाग्य ना मानकर आगे बढ़ना ही जिंदगी है।"[1]

'दूसरा आदमी दूसरी औरत' नाटक की शोमा, पति और सास के अत्याचार से निकलकर बड़े शहर में नौकरी करती है। वह आत्म निर्भर, आत्म सम्मान और संघर्षशीलता का प्रतीक है। आज स्त्रियाँ स्थिति का शिकारभर नहीं बल्कि अपने जीवन का निर्णय लेने वाली है। संभव के उसके जीवन में आने से वह भावनात्मक सहारे की तलाश में भटक जाती है। जल्द ही उसे पति और प्रेमी के व्यवहार में समानता दिखाई देती है। केवल आकर्षण या सहानुभूति स्थाई सुख का आधार नहीं बन सकता। अन्त में वह दोनों परिवारों को टूटने से बचाती है और प्रेमी से दूर हो जाती है। यह उसके आत्मबोध और परिपक्व निर्णय का संकेत है कि समय रहते गलती के बाद

भी संभलना संभव है। शोभा अपनी बेटी के साथ जीवन बिताने का निर्णय लेती है क्योंकि संतान का भविष्य व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर होता है। नाटक का संदेश है कि अत्याचार, उपेक्षा सम्बन्धों को तोड़ देते हैं। भावनात्मक उपेक्षा व्यक्ति को भटकाव की ओर ले जा सकती है। अतः जीवन में विवेक और जिम्मेदारी ही स्थाई समाधान है। नाटकमें शोभा के माध्यम से स्त्री के आत्म संघर्ष, भावनात्मक द्वन्द्व और अन्ततः आत्म जागृति के माध्यम से जीवन में संतुलन, जिम्मेदारी और नैतिक चेतना का महत्व स्थापित करती है।

मियाँ मुसलमान नाटक भारत की स्वतंत्रता के बाद जो मुसलमान भारत में ही रह गए, उनके साथ होने वाले भेदभाव को उजागर करता है। विभारानी इस नाटक के माध्यम से बताना चाहती हैं कि लोग समझे कि नफरत और हिंसा से किसी का भला नहीं हो सकता। धर्म के आधार पर अत्याचार समाज को विभाजित करता है जब कि सह–अस्तित्व ही समाधान है। नाटक की कहानी पाठकों के भीतर करुणा और सहानुभूति उत्पन्न करती है ताकि वह पीड़ित वर्ग की भावनाओं को समझ सकें। उन्होंने लोगों की मानसिकता की आलोचना भी की है। उनका उद्देश्य समाज को चिंतन के लिए प्रेरित करना है। अच्छी शिक्षा का प्रभाव खाने पर भी देखने को मिलता है। अतः आवश्यक है कि सभी वर्ग के लोगों को अच्छी शिक्षा दी जाए ताकि एक स्वस्थ समाज का निर्माण हो सके। दूसरा कुछ लोगों की कट्टरता के कारण पूरे मुस्लिम समाज को कट्टर घोषित कर उन्हें नफरत की आग में छोड़ना ठीक नहीं। कुछ लोगों के गलत कार्यों के करण पूरे समाज को नफरत से देखना और उनके साथ भेद–भाव करना ठीक अत्याचार करने के समान है।

'पीर पराई' नाटक में रानी के पास शक्ति, पद और अधिकार है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से कमजोर होने के कारण हिरणी असहाय और निर्बल है इसलिए उसकी आवाज अक्सर दबा दी जाती है। हिरनी अपने पुत्र की हत्या के कारण तड़प रही थी। कोई उसकी सहायता के लिए उपलब्ध नहीं होता। सत्ता पर बैठे लोग अक्सर शोषितों की पीड़ा को अनदेखा कर देते हैं। उन्हें लगता है कि उनके सुख और सुरक्षा स्थाई है किन्तु प्रकृति के अनुसार जो व्यक्ति जैसा करता है, अन्त में उसके साथ भी वैसा ही होता है। अतः मनुष्य को अपने कर्मों का लेखा–जोखा स्वयं भी रखना चाहिए। दूसरा नाटक के अन्त में हिरणी ही रानी कौशल्या को संभालती है और उसको धीरज बाँधती है। राजा कितना ही सक्षम क्यों ना हो, प्रजा के अभाव में राजा का कोई अस्तित्व नहीं है। जितनी प्रजा को राजा की आवश्यकता होती है, राजा को भी उतनी ही प्रजा की आवश्यकता होती है।

'मटन मसाला चिकन चिली' नाटक में स्त्री जीवन के सभी पहलुओं को छुआ है और नारी की विवशता, पीड़ा और लाचारी की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक हुई है। वर्तमान में बदलते परिवेश में सास–बहू के सम्बन्धों में परिवर्तन की आवश्यकता है। आज बहू आर्थिक रूप से सम्पन्न है। घर–बाहर के काम संभालती है। दोहरा जीवन होने के कारण वह शारीरिक और मानसिक रूप से थकान महसूस करती है। उसे घर में सास या सास रूपी माँ के स्थान पर एक मित्र की आवश्यकता है जिसके साथ मिलकर वह काम कर सके और अपने मन की बातें साँझा कर सके। यदि दोनों एक–दूसरे की प्रतिद्वन्दी बनी रहेंगी तो घर का वातावरण घुटनभरा बन जाएगा। इसके स्थान पर यदि दोनों मित्र बन जाए तो उन्हें बाहर किसी अन्य मित्र की आवश्यकता नहीं होगी और घर भले ही स्वर्ग ना भी बने पर रहने लायक होगा। सास अपनी बहू से कहती है– "क्योंकि जब मैं बहू थी, मेरी सास ने मुझे कोई वैल्यू नहीं दिया। लिहाजा, जब मैं सास बनी, मैंने भी वही रुख अपना लिया तुम्हारा काम, तुम्हारा बाहर निकलना, तुम्हारा प्रोग्राम मुझमें जलन भरता रहा। ..... मैं नेगेटिव होती चली गई। ..... इससे नुकसान मेरा ही हुआ। ..... मन तो कष्ट में रहता ही था, दस तरह के रोग भी लगा बैठी देह में। असल में, सास अगर माँ नहीं बनती तो बहू भी बेटी नहीं बन पाती!"[2]

'प्रेग्नेंट फादर' नाटक में एक पुरुष गर्भ धारण करता है और गर्भावस्था में होने वाली सभी परेशानियों को झेलता है। नाटक का उद्देश्य है कि एक पति को अपनी पत्नी की गर्भावस्था के दौरान उसके मन को समझकर उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिए और अपने दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए। प्रस्तुत नाटक में शिखण्डी को एक समय एहसास होता है– "प्रिया ने भी तो यह सब फेस किया होगा ना? उसे भी शर्म आती रही होगी! वह भी बेचैन होती रही होगी? मैंने क्यों नहीं थोड़ा भी ध्यान दिया?"[3] इन्टरव्यू में वह कहता है– "अपने जीवन संगिनी के मनोभावों को, उनकी भावनाओं को, उनके दर्द को

समझें, जब वे माँ बनने वाली हों। आखिर वे हमारे ही संसार को रच रही होती हैं । प्लीज, आप उन्हें हर तरह का सपोर्ट दें। उन्हें डॉक्टर के पास ले जाएं, उनके रेगुलर चेकअप के लिए ले जाएं, उनकी उस समय की पसन्द–नापसन्द जानें, उनके तन, मन की स्थिति जानकर उनसे उनके हिसाब से व्यवहार करें। .....उन्हें सहारा दें। उनका लेबर पेन फिर पेन नहीं, एक सुखद एहसास में बदलेगा। आपके प्रति, बच्चों के प्रति एक नई बॉडिंग बनेगी।"[4]

निष्कर्ष–

विभारानी के नाटकों में वर्तमान समाज के बदलते स्वरूप और जीवन मूल्यों की विसंगतियों के संघर्ष को प्रस्तुत किया है। पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों के पतन के कारण जीवन में अकेलापन, टूटन, संत्रास, यथार्थवाद, आधुनिकता आदि के बोध ने व्यक्ति के अस्तित्व को संघर्षमय बना दिया है। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने रूढ़ मान्यताओं का अन्त करने का प्रयास किया है। इन परिस्थितियों से दाम्पत्य जीवन के सम्बन्धों में आने वाली दरार, निरर्थकता को विविध कोण में रखने का प्रयत्न किया गया है, जिसमें दाम्पत्य जीवन की छटपटाहट और चाहत का सजीव चित्रण हुआ है।

विभारानी के नाटक केवल कथानक तक सीमित नहीं है, अपितु वर्तमान मनुष्य की आन्तरिक पीड़ा का गहरा चित्रण प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने व्यक्ति के अस्तित्व–संघर्ष, पारिवारिक असंतोष और मानसिक द्वन्द्व को अत्यन्त यथार्थवादी शैली में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने पात्रों और घटनाओं के माध्यम से अन्याय, शोषण तथा नैतिक पतन की ओर संकेत किया है। नाटकों का उद्देश्य समाज को जागरुक करना, मानवीय संवेदनाओं को पुनर्जीवित करना है, समाज को उसकी वास्तविक स्थिति से परिचित कराना और आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करना है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अगले जनम मोहे बिटिया ना कीजो – विभारानी, पृष्ठ संख्या –80।
2. मटन मसाला चिकन चिली – विभारानी, पृष्ठ संख्या – 70।
3. प्रेग्नेंट फादर – विभारानी, पृष्ठ संख्या – 44।
4. प्रेग्नेंट फादर – विभारानी, पृष्ठ संख्या – 50–51।

ABHINAV GAVESHNA

Multi Displinary Quareterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal

I.S.S.N. : 2394-4366

(Multi Displinary Quareterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal)

(in Multi Language: Hindi + English + Sanskrit)

`Abhinav Gaveshna'

Sector-K-444, `Shiv Ram Kripa' World Bank Barra-Kanpur-208027 (U.P.)

Contact- 08896244776

E-mail: mohittrip@gmail.com

Visit us : www:abhinavgaveshna.com, thegunjan.com

ISSN : 2394-4366

Received: 20 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

धर्म निरपेक्षता : एक तात्विक विवेचन

– शिव नारायण यादव
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–
राजनीति विज्ञान विभाग,
रामस्वरूप ग्रामोद्योग महाविद्यालय,
पुखरायाँ, कानपुर देहात–209111
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
shivnarainyadav8889@gmail.com

सारांश

धर्म निरपेक्षता में सर्वधर्म समभाव रखने का विचार अनेक धर्म मानने वाली भारतीय जनता की राजनीतिक और धार्मिक दोनों भावनाओं का सम्मान है, लेकिन साम्प्रदायिकता को धर्म मानने की भूल धर्म के नाम पर कलंक है और हमारी एकता के लिए एक खतरा, जिसका आए दिन राजनीतिक और धार्मिक नेता फायदा उठाकर अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए तमाम सीधे–सादे लोगों को काल के गाल में झोंक देते हैं।

आज समस्त मानव जाति पारमाणविक विभीषिका के साए में कब सो जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। मानव के आपसी सम्बन्ध इतने संकुचित और कुपित हो गए हैं कि वह बस अपने को ही देख पाता है, गैर–बराबरी की खाई इतनी चौड़ी और गहरी होती जा रही है कि इसमें अमीर और गरीब दोनों गिरकर विनाश को प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे संक्रमण काल में अधिनायकवादी रूप के चलते साम्यवाद से भी लोगों का मोह भंग हो रहा है। आज सोवियत संघ भी लोकतांत्रिक मूल्यों का पक्षधर होता जा रहा है जो साम्यवाद का प्रमुख नेता है। साम्यवादी सोवियत संघ धर्म को जनता की अफीम मानता था लेकिन अब लोकतात्रिक मूल्यों के पक्षधर होने के कारण अन्य स्वतंत्रताओं को प्रदान करने के साथ–साथ धार्मिक स्वतंत्रता भी प्रदान करने की वकालत कर रहा है।

दूसरी तरफ कुछ राजनेता राज्य को धर्म सापेक्ष घोषित कर जनतांत्रिक मूल्यों का हनन कर रहे हैं, तो कहीं पर साम्प्रदायिकता अपना नग्न नृत्य कर मानवता का गला घोंट रही है। ऐसी विषम परिस्थिति में राज्य और धर्म के सम्बन्ध पर एक प्रश्न चिन्ह लगता है। इसी प्रश्न का उत्तर हम धर्म निरपेक्षता के विश्लेषण के माध्यम से देने का प्रयास करेंगे।

लोकतांत्रिक मूल्यों में धर्म निरपेक्षता का एक महत्वपूर्ण स्थान है, बिना इसके लोकतंत्र अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त ही नहीं कर सकता। धर्म निरपेक्षता क्या है? यह समझने के लिए उसके ऐतिहासिक पक्ष का सिंहावलोकन अति आवश्यक है।

यदि धर्म निरपेक्षता का सर्वांगीण अवलोकन करें तो हमको उसके तीन पहलू दिखाई देते हैं–पश्चिमी, साम्यवादी और भारतीय। धर्म निरपेक्षता के पश्चिमी पहलू से हमारा तात्पर्य एंग्लो–अमरीकन और यूरोपीय दृष्टिकोण से है। जहाँ पर राज्य और चर्च में हजारों वर्ष तक संघर्ष चलता रहा है। चर्च ने केवल राजनीतिक सत्ता पर ही हस्तक्षेप नहीं किया बल्कि स्वयं एक राजनीतिक सत्ता के रूप में उभरने की कोशिश की। ग्रेगरी सप्तम, इनोसेण्ट तृतीय, वोनीफेस अष्टम ने धार्मिक सत्ता के साथ राजनीतिक सम्प्रभुता का भी दावा किया था। इनोसेण्ट तृतीय ने तो पूरे इटली में अपना राज्य ही कायम कर लिया था। जैसे–जैसे रोम साम्राज्य की राजनीतिक सत्ता क्षीण होती गई,

वैसे–वैसे मध्युगीन यूरोप में राजनीतिक सत्ता पर पोप की पकड़ बढ़ती गई और इतनी बढ़ गई कि यूरोपीय शासक बिना पोप की अनुमति के ईसाइयों पर टैक्स तक नहीं लगा सकता था। चर्च की सम्पत्ति पर नियंत्रण और विवाह सम्बन्ध भी स्थापित नहीं कर सकता था। रोम साम्राज्य के पूर्व और पश्चिम में बँटते ही पोप अपने को साम्राज्य का पूर्ण अधिकारी मानने लगा। कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट में जब ईसाई धर्म बँटा तक इतना खून बहा कि लोगों की धर्म के नाम से वितृष्णा सी हो गई। पोप की सत्ता क्षीण होते ही राज्य सत्ता ने धर्म को एकदम राजनीति से बाहर निकालने का प्रयास किया। धर्म निरपेक्षता इसी भावना का परिणाम है। इस दृष्टिकोण के अनुसार धर्म को राजनीति से अलग रहना चाहिए।

मार्क्सवादियों ने धर्म को जनता की अफीम कहा है और धर्मविहीन तथा राज्यविहीन साम्यवादी व्यवस्था बनने की कल्पना की। उनके लिए मानव जीवन का विकास है जबकि दूसरे लोग धर्म के विकास को मानव जीवन का विकास मानते हैं।

भारत में धर्म और राजनीति का सम्बन्ध परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि सहयोगी रहा है। प्राचीन काल में राजा का पुत्र एक ऐसा ऋषि होता था जो सांसारिक भोग–विषय में तटस्थ रहता था और मानव–कल्याण के विषय में बिना किसी स्वार्थ और राग–द्वेष के राजा को उपदेश देता था। भारत में भी धर्म के नाम पर रक्तपात हुआ। कभी शैव और शाक्तों में, कभी शैव और वैष्णवों में, कभी हिन्दुओं और जैनों, कभी हिन्दुओं और बौद्धों में और कभी हिन्दुओं और मुसलमानों में। वैसे भारतीय संस्कृति की परम्परा सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता की रही थी। यहाँ धर्म को 'चतोदभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि' कहकर परिभाषित किया गया। यहाँ धर्म का अर्थ 'सत्यम शिवम् सुन्दरम्' की खोज करना और उसकी उपलब्धियों के लिए एक साधना थी। उपलब्धियों की एक श्रृंखला थी। राज्य इन्हीं उपलब्धियों से सीखता था और धर्म के निर्देशन को स्वयं आमंत्रित करता था। राजा श्रद्धा और सम्मान में ऋषियों के लिए अपना सिंहासन छोड़ देता था। ऋषि व्यष्टि के धरातल से ऊपर उठकर समष्टि के धरातल पर पहुँचा व्यक्ति होता था, सांसारिक भोग–विलास उसके लिए एक तुच्छ धातु हुआ करती थी। प्रायः इन सबको भोगकर ही कोई ऋषि हुआ करता है। राजा और धर्माचार्य के बीच तब द्वेष पैदा होता है जब धर्माचार्य की लौकिक सुख भोग और सम्प्रभुता की इच्छा संतुष्ट नहीं हो पाती है। इसकी प्राप्ति के लिए वह राजा को अपना प्रतिद्वन्द्वी मान लेता है। 'अपने वास्तविक रूप में प्राचीन भारतीय जीवन उन मानवीय लोकमंगलकारी तथ्यों से सम्बन्धित था जो राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीय की भावना से ओत–प्रोत थे।'

प्रथम दो दृष्टिकोण धर्म और राजनीति को एक दूसरे के विरोधी के रूप में स्थापित करते हैं और राजनीति के कुशल संचालन में धर्म की बाधा मानते हैं, जबकि तीसरा दृष्टिकोण धर्म और राजनीति को एक दूसरे का सहयोगी मानता है। इस दृष्टिकोण का मानना है कि धर्म मानव के अभ्युदय निःश्रेयस का विचार प्रस्तुत करता है, इसे व्यावहारिक रूप देने के लिए राजनीतिक की प्रबल आवश्यकता होती है। इसी प्रकार के विचार को प्रतिपादित करते हुए डॉ. राम मनोहर लोहिया ने कहा है कि ''धर्म और राजनीति एक सिक्के के दो पहलू हैं। दीर्घकालिक राजनीति धर्म है और अल्पकालिक धर्म राजनीति है। धर्म का कार्य अच्छा कार्य करना और हर अच्छे कार्य की प्रशंसा करना और राजनीति का कार्य हर बुराई का विरोध करना और उसकी निन्दा करना। लेकिन जब धर्म अच्छा कार्य न कर केवल प्रशंसा करता है तो वह पाखण्डी हो जाता है और राजनीति बुराई का विरोध न कर केवल निन्दा करने लगती है तो वह कलड़ी हो जाती है', अतः मानव जाति के वास्तविक विकास के लिए धर्म और राजनीति दोनों को अपने वास्तविक स्वरूप में साथ–साथ रहना अति आवश्यक है।

राजनीति और धर्म के सम्यक् बोध पर बल देते हुए प्लेटो कहते हैं कि 'राज्यों (यूनान के) की बुराई कम होने की कोई आशा नहीं है और मेरी सम्मति में मानव मात्र की। यह केवल तभी सम्भव है जब राजनीतिक शक्ति और दर्शन में सहयोग हो और उन साधारण लोगों को जबरदस्ती अयोग्य कर दिया जाए जो इसमें से किसी एक में कार्य करते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ हों। यह सहयोग मेरी सम्मति में केवल दो प्रकार से सम्भव है, या तो दार्शनिक लोग हमारे राज्यों के राजा हो जाएं या आज जो राजा और अधिपत कहे जाते हैं, वे वास्तविक और पूर्णरूप से दार्शनिक हो जाएं।'

भारतीय परम्परा में धर्म को कभी राजनीति से अलग करके नहीं देखा गया है, जबकि पाश्चात्य परम्परा में राज्य और धर्म के मेल का बुरा असर पड़ा है। कभी पादरियों ने अपने को स्वर्ग का ठेकेदार बताया, तो कभी राजाओं ने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि। दोनों ने भोली–भाली जनता का खूब शोषण किया। एक तरफ धर्म

की विशुद्धता समाप्त हुई तो दूसरी तरफ व्यक्ति की स्वतंत्रता का अन्त हुआ। राजनीति के प्रभाव से चर्च विलासिता, व्यभिचार और दुराचार का अंग बन गया। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए पेट्रार्क (1304–74) ने एबिग्रोन के चर्च के विषय में लिखा है कि– 'यहाँ वसुन्धरा का नर्क है बुराइयों का कोप और विषय का गंदा नाला है यहाँ श्रद्धा है और न दान का भाव, न धर्म और ईश्वर का भय।' अगूढ़ागमन माता–बहिन आदि निकट के निषिद्ध सम्बन्धियों के साथ सहवास, बलात्कार, परस्त्रीगमन आदि पोप के दरवार की कामुक क्रीड़ाओं के आनन्द हैं।

इन्हीं सब बुराइयों के खिलाफ पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में एक नवीन–प्रवृति का जन्म हुआ। इसकी अगुआई मार्टिन लूथर और जॉन काल्बिन ने की। इसी नई–प्रवृति ने धर्म और राजनीति को अलग–अलग क्षेत्रों में स्थापित करने का कार्य किया। मैकियावेली पहला विचारक है, जिसने राजनीति को धर्म से जान–बूझकर और औपचारिक रूप से अलग किया। मार्टिन लूथर और जॉन काल्विन का आन्दोलन धर्म सुधार का था। राजनीतिक और आध्यात्मिक विचारों की दृष्टि से 17वीं सदी धर्म निरपेक्षता की सदी थी। इसका श्रेय अल्यूसियस, ग्रेशियस तथा हॉब्स को दिया जाता है। इन विचारकों ने धर्म निरपेक्षता के आधार के लिए प्राकृतिक कानून की बुद्धि युक्त व्याख्या प्रस्तुत की। धर्म निरपेक्षता की झलक जॉन लॉक के प्राकृतिक अधिकारों और धार्मिक सहिष्णुता सम्बन्धी विचारों में मिलती है। लॉक स्वतंत्रता को व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार मानते थे। उसके अनुसार धार्मिक विश्वास व्यक्ति की अन्तरात्मा का विषय है। किसी व्यक्ति को धर्म विशेष मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति के धार्मिक मामलों में राज्य हस्तक्षेप नहीं करेगा, यदि ऐसा करता है तो इससे राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचेगा। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान निर्माताओं में विशेषकर मेडीसन ने प्रारम्भिक काल में ही चर्च और राज्य की पृथकता पर बल दिया था।

आधुनिक काल के धर्म निरपेक्षता के विचारकों में हेनरी डेविड, जॉन रस्किन, टालस्टाय, महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू और डॉ. राममनोहर लोहिया का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। टॉलस्टाय और महात्मा गाँधी वैसे तो कट्टर धर्म पन्थी थे, लेकिन विचार किसी विशेष धर्म पर आधारित न होकर नैतिकता और आध्यात्मिकता पर आधारित थे।

धर्म निरपेक्ष राज्य–राज्य दो प्रकार के होते हैं– एक धर्म सापेक्ष राज्य और दूसरे पंथनिरपेक्ष राज्य। धर्म सापेक्ष राज्य वह राज्य होता है, जिसमें रहने वाली जनता का वही धर्म होता है जो राजा का या राज्य द्वारा घोषित होता है। प्राचीन भारत के कुछ राजाओं ने राजधर्म घोषित किया था जैसे– बिम्बसार, अशोक, कनिष्क, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य द्वितीय, हर्ष आदि। लेकिन इन्होंने कभी भी और जबरदस्ती से अपना धर्म मानने के लिए बाध्य नहीं किया। हृदय परिवर्तन के द्वारा अपने धर्म का प्रचार किया और इनके राज्य में अन्य धर्मों के मानने की पूरी आजादी थी। धर्मनिरपेक्ष राज्य वह राज्य होता है, जिसमें राज्य की तरफ से कोई धर्म नहीं होता है। वहाँ राज्य की जनता को अपना–अपना धर्म मानने और प्रचार करने की स्वतंत्रता होती है। राज्य का सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता पूर्ण रुख होता है। सभी नागरिकों को बिना किसी भेद–भाव के सभी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। धर्मनिरपेक्ष राज्य के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं कि ''धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ है– धर्म और आत्मा की स्वतंत्रता। जिनका कोई धर्म नहीं, उनके लिए भी स्वतंत्रता का अभिप्राय है– सब धर्मों के लिए स्वतंत्रता। इनका अर्थ है– सामाजिक और राजनीतिक समानता।'' डोनाल्ड ई. स्मिथ धर्मनिरपेक्ष राज्य के विषय में लिखते है कि ''धर्मनिरपेक्ष राज्य निजी और सामूहिक रूप में धार्मिक स्वतंत्रता की गारण्टी देता है। वह व्यक्ति के साथ उसके धर्म का विचार किए बिना नागरिक के रूप में व्यवहार करता है। सार्वजनिक तौर पर वह किसी धर्म से सम्बन्धित नहीं होता और न किसी धर्म की प्रगति का प्रयास करता है और न किसी धर्म में हस्तक्षेप ही करता है।''

धर्मनिरपेक्ष राज्य के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए संविधान सभा में श्री हरि विष्णु कामथ ने कहा था कि ''एक धर्मनिरपेक्ष राज्य न तो ईश्वर रहित राज्य है, न ही वह अधर्मी राज्य है और न ही धर्म विरोधी राज्य।'' इसी प्रकार प्रो. टी. के. पोपे लिखते हैं कि ''भारत के धर्मनिरपेक्ष होने का यह अर्थ नहीं है कि इसमें ईश्वर के अस्तित्व को नहीं माना जाता। भारतीय संविधान में ईश्वर के अस्तित्व को मान्यता प्रदान की गई है। देश के प्रमुख पदाधिकारी पद ग्रहण करते समय ईश्वर के नाम पर शपथ ले सकते हैं।''

धर्मनिरपेक्ष राज्य धर्म को समाज को सामूहिक कार्य न मानकर व्यक्ति का व्यक्तिगत कार्य मानता है। धर्मनिरपेक्ष राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होता है। यह सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का भाव रखता है। वह धार्मिक

कट्टरता और सर्वाधिकारवाद का विरोध करता है। धर्मनिरपेक्ष राज्य में लोकतंत्र पर आधारित संसार का प्रत्येक धर्म मानव कल्याण की बात करता है तथा राजधर्म राज्य और राजा के कल्याण की। जबकि साम्प्रदायिकता अपने मत को सर्वश्रेष्ठ बताती है और दूसरों के ऊपर जबरदस्ती अपना मत थोपना चाहती है और राजनीति में राजनीतिज्ञ किसी तरह से अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाहता है। अपने इसी स्वार्थी स्वभाव के चलते दोनों किसी न किसी स्थान पर टकरा जाते हैं।

अर्थ प्रधान इस युग में अब धर्म केवल अशिक्षित लोगों द्वारा ही सुरक्षित है, शिक्षित लोगों का कोई धर्म नहीं है, उनके प्रत्येक कार्य के केन्द्र में अर्थ रहता है। अशिक्षित लोग जो धर्म को मानते हैं वह या तो धर्म के असली स्वरूप को जानते नहीं या जानते हैं तो सिर्फ धर्म के पाखण्डमय रूप को। जितने भी साम्प्रदायिक दंगे होते हैं उनमें वही लोग सक्रिय भाग लेते हैं, जिनको धर्म का वास्तविक स्वरूप ज्ञात नहीं होता और अधिकांश साम्प्रदायिक दंगे राजनीति से प्रेरित होते हैं।

हमारा संविधान कहता है कि देश के किसी भी नागरिक के साथ धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। लेकिन हमारे राजनीतिक स्वार्थ के चलते हिन्दुओं पर परिवार नियोजन लागू करते हैं और मुसलमानों पर नहीं। उन्हें अल्पसंख्यक के नाम पर तमाम सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, जिनके चलते आज देश का अधिकांश वर्ग अपने को असंतुष्ट पाता है। धर्मनिरपेक्ष राज्य लोक कल्याण को महत्व देता है।

कुछ लोगों का मानना है कि धर्मनिरपेक्ष राज्य का शीघ्र छिन्न–भिन्न हो जाना सम्भव है। धर्मनिरपेक्ष राज्य लोक मंगलकारी नहीं हो सकता। इसमें सरलता से विकृति आ सकती है। इसमें धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था न होने के दुष्परिणाण होने की संभावना होती है। बहुसंख्यक धार्मिक वर्ग की भावनाओं को आघात पहुँचेगा। वे सम्पूर्ण आलोचनाएँ धर्म को केन्द्र में रखकर की गई है।

भारतीय और पाश्चात्य धर्म निरपेक्षता सम्बन्धी तथ्यों के अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत में धर्म निरपेक्षता का विचार धर्म का राजनीतिक सम्प्रभुता को अपने हाथों में लेने के कारण पर आधारित नहीं है, जबकि पाश्चात्य धर्म निरपेक्षता का विचार प्रतिनिधि मानकर जनता का शोषण करने पर आधारित है। पाश्चात्य में राजनीति को धर्म की अपेक्षा नहीं है। दूसरी बात पाश्चात्य में केवल एक धर्म और राजनीतिक सत्ता का विरोध है। भारत में विभिन्न धर्मों का आपसी द्वन्द्व रहा, लेकिन वह कभी भी राजनीति से टकराया नहीं। इसलिए यहाँ पर धर्म निरपेक्षता का अर्थ सर्वधर्म सभाव समझा गया न कि धर्म का राजनीति से एकदम अलगाव।

यदि हम स्वस्थ बुद्धि से विचार करें तो जाएंगे कि धर्म और राजधर्म में कोई विरोध नहीं है। विरोध है तो साम्प्रदायिकता और कूटनीति में। प्रत्येक धर्म नेता अपने धर्म को श्रेष्ठ घोषित करवाने के प्रयास में लगा है जिससे फिरकापरस्ती को बल मिलता है। मुस्लिम वर्ग अपने धर्म के अनुसार तमाम अधिकारों को मांगता है लेकिन मुस्लिम दण्ड संहिता को कभी स्वीकार नहीं करता। इन सब तथ्यों को देखते हुए हमको पंडित ब्रजनारायण चक्रवर्ती की ये पंक्तियाँ बहुत उपयुक्त लगती हैं कि–

पुरानी काबिशें दैरो–हरम की मिटती जाती हैं।
नई तालीम के झगड़े हैं अब शेखों–बिरहमन में।।

अन्त में हम यही कहना चाहते हैं कि धर्म निरपेक्षता में सर्वधर्म समभाव रखने का विचार अनेक धर्म मानने वाली भारतीय जनता की राजनीतिक और धार्मिक दोनों भावनाओं का सम्मान है, लेकिन साम्प्रदायिकता को धर्म मानने की भूल धर्म के नाम पर कलंक है और हमारी एकता के लिए एक खतरा, जिसका आए दिन राजनीतिक और धार्मिक नेता फायदा उठाकर अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए तमाम सीधे–सादे लोगों को काल के गाल में झोंक देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घोष एम. के. – मुस्लिम पालिटिक्स इन इण्डिया, पृष्ठ–18
2. वेग एम. आर. – द मुस्लिम डिलेमा इन इण्डिया, पृष्ठ–31
3. तिवारी अरुण – धर्म की राजनीति और राजनीति का धर्म, नवभारत टाइम्स, 23 दिसम्बर, 1992
4. सिवाच जे. आर. – डायनामिक्स ऑफ इण्डिया गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स, स्टरलिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1978 पृष्ठ–467
5. दरडा रणजीत सिंह – भारतीय लोकतंत्र और आन्दोलन की राजनीति, लोकतंत्र समीक्षा, 1973
6. कश्यप सुभाष – भारतीय सरकार एवं राजनीति – नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
7. वसु दुर्गादास – कन्टीट्यूशनल लॉ ऑफ इण्डिया –प्रेन्टिस हाल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।
8. श्रीनिवास एम. एन. – कास्ट इन मार्डन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

ISSN : 2394-4366

Received: 10 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

स्वामी विवेकानन्द का जीवन, दर्शन एवं सामाजिक चेतना : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

– राधा पंवार
रिसर्च स्कॉलर –
इतिहास विभाग,
ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, खत्रिपुरा, नागौर – 341001 (राजस्थान)

ई–मेलः
panwar.radha@gmail.com

– रिसर्च सुपरवाइजर
– डॉ. अमित चामोली
एसोसिएट प्रोफेसर –
इतिहास विभाग,
ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, खत्रिपुरा, नागौर – 341001 (राजस्थान)

ई–मेलः
amitchamoli11@gmail.com

प्रस्तावना–

उन्नीसवीं शताब्दी का भारत ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से गहन परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। औपनिवेशिक शासन के प्रभाव में भारतीय समाज न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता से वंचित था, बल्कि उसकी सांस्कृतिक आत्मा और बौद्धिक चेतना भी गहरे संकट का सामना कर रही थी। परंपरागत सामाजिक संरचनाएँ जड़ हो चुकी थीं और धर्म, जो भारतीय जीवन का केन्द्रीय आधार रहा था, अनेक स्थानों पर कर्मकाण्ड, अंधविश्वास और सामाजिक विभाजन का उपकरण बन गया था। इसी पृष्ठभूमि में एक ऐसे विचारक का उदय हुआ, जिसने भारतीय अध्यात्म को आधुनिक विवेक, तर्क और मानवतावादी दृष्टि के साथ पुनः स्थापित किया– स्वामी विवेकानन्द।

स्वामी विवेकानन्द का महत्व केवल इस तथ्य में निहित नहीं है कि वे एक महान संत या प्रभावशाली वक्ता थे, बल्कि इस बात में है कि उन्होंने भारतीय दर्शन को आत्महीनता से मुक्त कर वैश्विक मंच पर आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि भारतीय संस्कृति केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि एक जीवन्त और सार्वकालिक चेतना है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य विवेकानन्द के जीवन, वैचारिक विकास और सामाजिक दृष्टि का वस्तुनिष्ठ एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है।

ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ–

उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज गहरी सामाजिक विषमताओं से ग्रस्त था। जाति–प्रथा, छुआछूत, स्त्रियों की दयनीय स्थिति और व्यापक अशिक्षा ने सामाजिक जीवन को अवरुद्ध कर रखा था। औपनिवेशिक शासन ने भारतीयों में हीनता–बोध को और गहरा किया। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली ने एक ओर आधुनिक ज्ञान का द्वार खोला, तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के प्रति अविश्वास भी उत्पन्न किया।

इस काल में अनेक सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन सक्रिय थे, किन्तु अधिकांश आंदोलनों में या तो परम्परा से पूर्ण विच्छेद की प्रवृत्ति दिखाई देती है या फिर अन्धपरम्परा का समर्थन। विवेकानन्द का चिंतन इन दोनों अतियों से अलग था। उन्होंने परम्परा को आधुनिकता के प्रकाश में देखा और आधुनिकता को भारतीय मूल्यों से जोड़ा।

जीवन–परिस्थितियाँ और व्यक्तित्व का निर्माण–

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 1863 ई. में कलकत्ता में हुआ। उनका प्रारम्भिक नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनका पारिवारिक परिवेश ऐसा था जहाँ आधुनिक विचार और पारम्परिक संस्कार साथ–साथ विद्यमान थे। उनके

पिता विश्वनाथ दत्त आधुनिक शिक्षा, तर्कशीलता और स्वतंत्र विचारों के समर्थक थे, जबकि माता भुवनेश्वरी देवी धार्मिक आस्था, नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक संस्कारों की प्रतीक थीं।

यह द्वैतात्मक वातावरण विवेकानन्द के व्यक्तित्व के निर्माण में निर्णायक सिद्ध हुआ। उनके चिंतन में जो संतुलन दिखाई देता है– जहाँ तर्क और श्रद्धा परस्पर विरोधी नहीं बल्कि पूरक बन जाते हैं, उसका मूल स्रोत यही पारिवारिक पृष्ठभूमि है। यह संतुलन उन्हें समकालीन धार्मिक चिंतकों से अलग पहचान प्रदान करता है।

शिक्षा, तर्क और बौद्धिक जिज्ञासा–

विवेकानन्द की शिक्षा ने उनके बौद्धिक व्यक्तित्व को विशेष रूप से प्रभावित किया। स्कॉटिश चर्च कॉलेज में अध्ययन के दौरान उन्होंने पाश्चात्य दर्शन, तर्कशास्त्र और विज्ञान का गहन अध्ययन किया। काण्ट, हेगेल, स्पेंसर और मिल जैसे दार्शनिकों के विचारों ने उनकी तर्कशीलता को विकसित किया, किन्तु वे किसी भी विचारधारा को बिना परीक्षण स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।

उनके लिए ईश्वर, आत्मा और सत्य केवल धार्मिक विश्वास के विषय नहीं थे, बल्कि अनुभव और विवेक के माध्यम से जानने योग्य वास्तविकताएँ थीं। यह बौद्धिक जिज्ञासा उन्हें अपने समकालीन समाज से अलग खड़ा करती है। वे धर्म को तर्कविरोधी नहीं, बल्कि तर्कसंगत और अनुभव–सिद्ध मानते थे।

आन्तरिक संघर्ष और सत्य की खोज–

विवेकानन्द के जीवन का यह चरण गहन वैचारिक संघर्ष का काल था। वे बार–बार यह प्रश्न उठाते थे कि क्या ईश्वर को प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। उनका यह प्रश्न केवल धार्मिक नहीं, बल्कि दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक था। ब्रह्म समाज से उनका जुड़ाव इसी खोज का परिणाम था, किन्तु वहाँ भी उन्हें पूर्ण संतोष प्राप्त नहीं हुआ।

यह संघर्ष विवेकानन्द के व्यक्तित्व को और अधिक परिपक्व बनाता है। उनके चिंतन में जो स्पष्टता और दृढ़ता आगे दिखाई देती है, वह इसी आत्मसंघर्ष की देन है। यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका धर्म अंधश्रद्धा पर नहीं, बल्कि अनुभव और विवेक पर आधारित था।

रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव–

रामकृष्ण परमहंस से भेंट विवेकानन्द के जीवन में निर्णायक परिवर्तन लेकर आई। यहाँ उन्हें ऐसा गुरु मिला जिसने धर्म को शास्त्रीय विवादों से ऊपर उठाकर प्रत्यक्ष अनुभव के स्तर पर प्रस्तुत किया। रामकृष्ण का यह कथन कि ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, विवेकानन्द की बौद्धिक जिज्ञासा को गहराई से प्रभावित करता है।

रामकृष्ण के प्रभाव से विवेकानन्द इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सत्य एक है, किन्तु उसके अनुभव और अभिव्यक्ति के मार्ग अनेक हो सकते हैं। यही विचार आगे चलकर उनके सार्वभौमिक धर्म–दर्शन का आधार बना। इस दृष्टि से रामकृष्ण का प्रभाव विवेकानन्द के जीवन में केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि दार्शनिक भी था।

संन्यास और सामाजिक चेतना–

रामकृष्ण परमहंस के निधन के पश्चात विवेकानन्द ने संन्यास ग्रहण किया। यह संन्यास पारम्परिक अर्थों में संसार–त्याग नहीं था, बल्कि समाज के प्रति उत्तरदायित्व की स्वीकृति थी। भारत भ्रमण के दौरान उन्होंने देश की गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक विषमता को प्रत्यक्ष रूप से देखा।

इन अनुभवों ने उनके चिंतन को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा और उनके भीतर यह विश्वास दृढ़ किया कि आध्यात्मिक जागरण के बिना सामाजिक उत्थान संभव नहीं है। यहीं से 'दरिद्र नारायण' की अवधारणा विकसित होती है, जो विवेकानंद के मानवतावादी दृष्टिकोण का केन्द्रीय तत्व है।

इस प्रकार विवेकानन्द का प्रारम्भिक जीवन, शिक्षा और आध्यात्मिक संघर्ष उनके विचारों की आधारभूमि तैयार करता है। वे केवल अपने समय के उत्पाद नहीं थे, बल्कि अपने समय को दिशा देने वाले चिंतक थे। उनके जीवन के ये प्रारम्भिक चरण उनके आगे के दार्शनिक, सामाजिक और राष्ट्रीय चिंतन की नींव रखते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के चिंतन का केन्द्रीय आधार उनका धार्मिक दर्शन है, जो परम्परागत भारतीय आध्यात्मिकता और आधुनिक विवेक का सशक्त समन्वय प्रस्तुत करता है। उनका धर्म–दर्शन न तो संकीर्ण पंथवाद तक सीमित है और न ही अमूर्त दार्शनिक विमर्श तक। यह जीवन से जुड़ा हुआ, मानव–केन्द्रित और कर्मप्रधान है। विवेकानन्द के अनुसार धर्म का उद्देश्य मनुष्य को निर्भय, आत्मविश्वासी और करुणाशील बनाना है। यदि धर्म मानव को दुर्बल, भयभीत और निष्क्रिय बनाता है, तो वह अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक गया है।

विवेकानन्द ने वेदान्त को भारतीय दर्शन की

आत्मा के रूप में स्वीकार किया, किन्तु उसकी व्याख्या पारम्परिक सीमाओं में नहीं की। उन्होंने अद्वैत वेदान्त को केवल दार्शनिक सिद्धान्त न मानकर जीवन–दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार आत्मा एक है और वही आत्मा प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है। इस आत्मिक एकता का बोध ही मानव–समता, करुणा और सेवा का नैतिक आधार बनता है। इस प्रकार विवेकानन्द का अद्वैत केवल तात्त्विक नहीं, बल्कि सामाजिक अर्थ भी ग्रहण करता है।

उनका यह विचार कि प्रत्येक आत्मा मूलतः दिव्य है, मानव गरिमा की पुनर्स्थापना करता है। औपनिवेशिक शासन के कारण भारतीय समाज में व्याप्त हीनता–बोध के संदर्भ में यह विचार विशेष महत्व रखता है। विवेकानन्द ने स्पष्ट किया कि दुर्बलता पाप है और आत्मविश्वास ही मुक्ति का प्रथम चरण है। यह दृष्टि धर्म को जीवन–शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती है, न कि पलायन के साधन के रूप में।

विवेकानन्द का धार्मिक चिंतन सार्वभौमिकता पर आधारित है। उन्होंने सभी धर्मों को सत्य की खोज के विविध मार्ग माना। उनके अनुसार धर्मों में भेद बाह्य रूपों में है, न कि अन्तर्निहित सत्य में। यह दृष्टिकोण धार्मिक सहिष्णुता और संवाद की भावना को प्रोत्साहित करता है। विवेकानन्द के विचार में धार्मिक संघर्ष का मूल कारण अज्ञान और संकीर्णता है, न कि धर्म स्वयं। इस संदर्भ में उनका चिंतन आधुनिक वैश्विक समाज के लिए अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होता है।

धर्म के साथ विवेकानन्द ने कर्म को भी केन्द्रीय स्थान दिया। उनके अनुसार केवल ध्यान या साधना पर्याप्त नहीं है; सेवा और कर्म के बिना अध्यात्म अधूरा है। उन्होंने कर्मयोग को मानव–कल्याण का प्रमुख साधन माना। 'दरिद्र नारायण' की अवधारणा इसी कर्मप्रधान अध्यात्म का मूर्त रूप है। इसमें ईश्वर को मंदिरों में नहीं, बल्कि पीड़ित मानव में देखने का आग्रह निहित है। यह विचार भारतीय धार्मिक परम्परा को सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है।

विवेकानन्द का यह मानवतावादी अध्यात्म उन्हें पारम्परिक संन्यासियों से अलग करता है। उन्होंने संन्यास को निष्क्रिय त्याग नहीं, बल्कि सक्रिय सेवा के रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार सच्चा संन्यासी वह है जो समाज के दुःख को अपना दुःख माने और उसके निवारण के लिए कर्म करे। इस दृष्टि से विवेकानन्द का धर्म सामाजिक पुनर्निर्माण का साधन बन जाता है।

1893 ई. में शिकागो में आयोजित धर्म महासभा में विवेकानन्द की उपस्थिति और उनका भाषण उनके जीवन का ऐतिहासिक मोड़ सिद्ध हुआ। इस अवसर पर उन्होंने भारतीय धर्म और संस्कृति को जिस आत्मविश्वास और उदारता के साथ प्रस्तुत किया, उसने पश्चिमी जगत की धारणाओं को गहराई से प्रभावित किया। उनके सम्बोधन ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत केवल रहस्यवाद और अतीत की भूमि नहीं, बल्कि गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक चिंतन की जीवन्त परम्परा है।

शिकागो में विवेकानन्द का भाषण केवल धार्मिक वक्तव्य नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक संवाद का एक ऐतिहासिक क्षण था। उन्होंने पश्चिम को यह संदेश दिया कि धार्मिक सहिष्णुता और सार्वभौमिकता भारतीय परम्परा की मूल विशेषताएँ हैं। इस भाषण के माध्यम से विवेकानन्द ने भारतीय अध्यात्म को वैश्विक विमर्श का हिस्सा बना दिया। यह घटना भारतीय सांस्कृतिक आत्मगौरव की पुनर्स्थापना का प्रतीक बन गई।

पश्चिमी जगत में विवेकानन्द के विचारों को व्यापक स्वीकृति मिली। अमेरिका और यूरोप में उनके व्याख्यानों ने भारतीय दर्शन के प्रति नई रुचि उत्पन्न की। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि भारतीय अध्यात्म विज्ञान–विरोधी नहीं, बल्कि चेतना के गहनतम स्तरों का अध्ययन है। इस प्रकार विवेकानन्द ने पूर्व और पश्चिम के बीच बौद्धिक सेतु का निर्माण किया।

विवेकानन्द के वैश्विक प्रभाव का एक महत्वपूर्ण पक्ष रामकृष्ण मिशन की स्थापना है। यह संस्था केवल धार्मिक संगठन नहीं, बल्कि शिक्षा, सेवा और सामाजिक उत्थान का केन्द्र बनी। रामकृष्ण मिशन के माध्यम से विवेकानन्द के विचार व्यावहारिक रूप में समाज के सामने आए। यह संस्था उनके कर्मप्रधान अध्यात्म की सजीव अभिव्यक्ति है।

शिक्षा के संदर्भ में विवेकानन्द का दृष्टिकोण अत्यन्त मौलिक था। वे ऐसी शिक्षा के पक्षधर थे जो मानव के अन्तर्निहित सामर्थ्य को विकसित करे। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना प्रदान करना नहीं, बल्कि मनुष्य को आत्मनिर्भर, नैतिक और चरित्रवान बनाना है। उन्होंने शिक्षा को राष्ट्र–निर्माण का सबसे सशक्त साधन माना।

विवेकानन्द ने युवाओं को विशेष महत्व दिया। उनके अनुसार युवा राष्ट्र की सबसे बड़ी शक्ति हैं। उन्होंने युवाओं को आत्मगौरव, अनुशासन और सेवा–भाव से युक्त

होने का आह्वान किया। उनका राष्ट्रवाद आक्रामक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक आधार पर टिका हुआ था। वे भारत को केवल राजनीतिक इकाई नहीं, बल्कि आध्यात्मिक चेतना के रूप में देखते थे।

समकालीन संदर्भ में विवेकानन्द का चिंतन अनेक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। वैश्वीकरण, सांस्कृतिक संघर्ष और नैतिक संकट के युग में उनका मानवतावादी और सार्वभौमिक दृष्टिकोण विशेष महत्व रखता है। उनका संदेश आज भी यह स्मरण कराता है कि बिना नैतिक और आध्यात्मिक आधार के कोई भी समाज स्थायी प्रगति नहीं कर सकता।

विवेकान्द का जीवन और चिंतन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि धर्म और आधुनिकता परस्पर विरोधी नहीं हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि भारतीय अध्यात्म आधुनिक समाज को दिशा देने की क्षमता रखता है। इस दृष्टि से विवेकानन्द न केवल अपने युग के चिंतक थे, बल्कि भविष्य के मार्गदर्शक भी हैं। **(फोटो चित्र देखें)**

विवेकानन्द के चिंतन में शिक्षा का स्थान अत्यन्त केन्द्रीय है। वे शिक्षा को केवल ज्ञान–संचय की प्रक्रिया नहीं मानते, बल्कि उसे मानव–निर्माण का माध्यम स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता को प्रकट करना है। यह दृष्टि औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली से मूलतः भिन्न थी, जो केवल प्रशासनिक दक्षता और बौद्धिक अनुकरण तक सीमित थी। विवेकानन्द ने ऐसी शिक्षा की कल्पना की जो आत्मविश्वास, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व को विकसित करे।

उनका यह विचार कि शिक्षा से चरित्र–निर्माण होना चाहिए, उनके सम्पूर्ण दर्शन से जुड़ा हुआ है। वे मानते थे कि ज्ञान तभी सार्थक है जब वह मनुष्य को निर्भय, आत्मनिर्भर और करुणाशील बनाए। इस संदर्भ में उनका शिक्षा–दर्शन भारतीय परम्परा और आधुनिक आवश्यकता के बीच सेतु का कार्य करता है। विवेकानन्द ने बार–बार इस बात पर बल दिया कि केवल बौद्धिक विकास से समाज का उत्थान संभव नहीं है, जब तक कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश न हो।

विवेकानन्द के राष्ट्र–चिंतन में शिक्षा का सम्बन्ध सीधे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण से जुड़ा हुआ है। वे भारत की दयनीय स्थिति का कारण केवल राजनीतिक पराधीनता को नहीं मानते थे, बल्कि जनसामान्य में आत्मगौरव और आत्मविश्वास के अभाव को भी इसके लिए उत्तरदायी ठहराते थे। उनके अनुसार शिक्षा का प्रमुख कार्य इसी आत्मगौरव को पुनर्जीवित करना है। यह दृष्टि उनके राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक और नैतिक आधार प्रदान करती है।

विवेकानन्द का राष्ट्रवाद संकीर्ण या आक्रामक नहीं था। वे राष्ट्र को केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना के रूप में देखते थे। उनके विचार में भारत की विशिष्टता उसकी आध्यात्मिक परम्परा में निहित है। इस कारण वे पश्चिमी राष्ट्रवाद की अन्धी नकल के विरोधी थे। उनका आग्रह था कि भारत को अपनी आत्मा को पहचानते हुए आधुनिकता को अपनाना चाहिए।

युवाओं के प्रति विवेकानन्द की दृष्टि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे युवाओं को राष्ट्र की सबसे बड़ी शक्ति मानते थे। उनके भाषणों और लेखन में युवाओं के लिए बार–बार आत्मविश्वास, साहस और अनुशासन का संदेश मिलता है। उनका प्रसिद्ध आह्वान – 'उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्ति तक रुको मत' युवाओं को निष्क्रियता से बाहर निकालने का प्रयास है। यह संदेश केवल व्यक्तिगत सफलता तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व से भी जुड़ा हुआ है।

विवेकानन्द के चिंतन में सेवा का भाव केन्द्रीय भूमिका निभाता है। उन्होंने सेवा को धर्म का सर्वोच्च रूप माना। उनके अनुसार भूखे को भोजन देना, अशिक्षित को शिक्षा देना और पीड़ित को सहारा देना ही सच्ची उपासना है। इस दृष्टि से उनका धर्म मंदिरों और अनुष्ठानों की सीमाओं से बाहर निकलकर सामाजिक जीवन के केंद्र में आ जाता है। यह विचार उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है।

रामकृष्ण मिशन के माध्यम से विवेकानन्द के विचार संस्थागत रूप में सामने आए। शिक्षा, चिकित्सा और राहत कार्यों के माध्यम से यह संस्था उनके कर्मप्रधान

अध्यात्म को व्यवहारिक धरातल पर उतारती है। यह संस्था यह सिद्ध करती है कि विवेकानंद का दर्शन केवल वैचारिक नहीं, बल्कि क्रियात्मक भी है। इसी कारण उनका प्रभाव आज भी जीवन्त बना हुआ है।

समकालीन विश्व अनेक प्रकार के संकटों से जूझ रहा है– धार्मिक असहिष्णुता, सांस्कृतिक टकराव, नैतिक मूल्यों का क्षरण और बढ़ती सामाजिक असमानता। इन परिस्थितियों में विवेकानन्द का सार्वभौमिक और मानवतावादी चिंतन विशेष महत्व रखता है। उन्होंने जिस धार्मिक सहिष्णुता और संवाद की बात की थी, वह आज के वैश्विक समाज की मूल आवश्यकता बन चुकी है।

विवेकानन्द का दर्शन यह स्पष्ट करता है कि धर्म और विज्ञान, परम्परा और आधुनिकता, अध्यात्म और कर्म– ये सभी परस्पर विरोधी नहीं हैं। उन्होंने इन सभी को एक व्यापक मानवीय दृष्टि में समाहित किया। इस कारण उनका चिंतन न केवल भारतीय समाज के लिए, बल्कि वैश्विक मानवता के लिए भी प्रासंगिक है।

विवेकानन्द के जीवन का अध्ययन यह भी दर्शाता है कि महान विचार केवल ग्रंथों में नहीं, बल्कि जीवन–व्यवहार में भी प्रकट होते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन उनके विचारों का जीवन्त उदाहरण है। वे जो कहते थे, वही जीते थे। यही कारण है कि उनका प्रभाव केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि प्रेरणात्मक भी है।

समग्र रूप से देखा जाए तो स्वामी विवेकानन्द का चिंतन भारतीय पुनर्जागरण की आत्मा को अभिव्यक्त करता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति को हीनता–बोध से मुक्त कर आत्मगौरव की ओर उन्मुख किया। उनका दर्शन न तो अतीत–पूजा है और न ही वर्तमान का अंधानुकरण, बल्कि भविष्य की ओर उन्मुख एक संतुलित दृष्टि है।

निष्कर्ष–

स्वामी विवेकानन्द का जीवन, दर्शन और सामाजिक चिंतन यह सिद्ध करता है कि किसी भी समाज की सच्ची प्रगति उसके नैतिक और आध्यात्मिक आधार पर निर्भर करती है। उन्होंने धर्म को मानव–कल्याण, शिक्षा को राष्ट्र–निर्माण और अध्यात्म को कर्म से जोड़कर एक समग्र जीवन–दृष्टि प्रस्तुत की। इस दृष्टि से विवेकानन्द केवल अपने युग के चिंतक नहीं, बल्कि सार्वकालिक मार्गदर्शक के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

उनका संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उन्नीसवीं शताब्दी में था। विवेकानन्द का अध्ययन हमें यह समझने में सहायता करता है कि आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जा सकता है। यही उनकी सबसे बड़ी विरासत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. विवेकानन्द, स्वामी, विवेकानन्द साहित्य खण्ड–1 से 8. कोलकाता : अद्वैत आश्रम।
2. विवेकानन्द, स्वामी. Complete Works fo Sami Vivekananda (Vol- I–IX). Kolkata : Advaita Asrama.
3. रोलां, रोमां – स्वामी विवेकानन्द, हिन्दी अनुवाद, नई दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स।
4. मजूमदार, आर. सी. – भारत का सांस्कृतिक इतिहास, नई दिल्ली : भारती भवन।
5. शुक्ल, रामचन्द्र – भारतीय संस्कृति और राष्ट्रबोध, वाराणसीः नागरी प्रचारिणी सभा।
6. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत, नई दिल्ली : मैकमिलन इंडिया।
7. भट्टाचार्य, अमलेश, स्वामी विवेकानन्द और आधुनिक भारत, कोलकाता : अद्वैत आश्रम।
8. चटर्जी, सत्यब्रत, भारतीय नवजागरण और विवेकानन्द,. नई दिल्ली : ओरिएंट लॉन्गमैन।
9. मुखर्जी, बी. एन., भारतीय राष्ट्रवाद का विकास, नई दिल्ली : के. पी. बागची।
10. शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन : एक परिचय, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
11. नीलकण्ठ, टी. रामकृष्ण, आन्दोलन का इतिहास, चेन्नई : रामकृष्ण मठ।
12. Sen, Amiya P. *Swami Vivekananda,* New Delhi : Oxford University Press.
13. Sil, Narasingha P., *Swami Vivekananda : A Reassessment,* Selinsgrove : Susquehanna University Press.
14. राष्ट्रीय अभिलेखागार, भारत, उन्नीसवीं शताब्दी का भारत : सामाजिक – धार्मिक आन्दोलन, नई दिल्ली।
15. रामकृष्ण मिशन संस्थान, रामकृष्ण मिशन का उद्देश्य और कार्य, कोलकाता।
16. National Council of Educational Research and Training (NCERT). *Modern Indian History*. New Delhi.
17. Ministry of Culture, Government of India, *Indian Renaissance and Reform Movements*.
18. विश्व धर्म महासभा, शिकागो (1893) के अभिलेख एवं प्रकाशित भाषण संकलन।
19. विभिन्न शोध–पत्र, शोध–पत्रिकाएँ एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) द्वारा मान्य जर्नल्स।
20. आधिकारिक वेबसाइटें एवं डिजिटल अभिलेख

ISSN : 2394-4366

Received: 10 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

हृदयेश के कथा साहित्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना

– डॉ. आरती दुबे
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग, लक्ष्मी यदुनन्दन महाविद्यालय (एल. वाई. डी. सी), कायमगंज, फर्रुखाबाद–209502 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
draartidubey412@gmail.com

सांस्कृतिक चेतना का सरल शाब्दिक अर्थ है– 'संस्कृति सम्बन्धी' चेतना। संस्कृति शब्द अपने आप में बहुत विशालता लिए हुए है। हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति समस्त विश्व में ख्यातनाम है। हमारे ऋषि–मुनियों ने जिन सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठा की थी, उनका सार्वकालिक महत्व है। वह न ही पुराने होते है और न ही मरते हैं। वे मूल्य आज भी हमारे लिए उपयोगी हैं। इन्हीं मूल्यों की अभिव्यक्ति हमारे साहित्यकारों ने अपने साहित्य के द्वारा सांस्कृतिक चेतना जगाये रखने हेतु की है, जिसमें अतीत का प्रशस्ति गान महत्वपूर्ण भूमिका में अभिव्यक्त है। क्योंकि किसी भी देश की सांस्कृतिक चेतना उसके अतीत की संचित निधि होती है, जिसमें समय–समय पर बदलाव आते रहते हैं।

सर्वप्रथम हम यहाँ सभ्यता और संस्कृति के बीच जो अन्तर है, उसे स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे, क्योंकि सभ्यता और संस्कृति की सामान्य धारणाओं में उतना ही अन्तर है जितना किसी वस्तु के बाह्य एवं आन्तरिक पक्षों का हो सकता है। वास्तव में सभ्यता से तात्पर्य मुनष्य के उन व्यापारों तथा उपलब्धियों से है जो उसकी जीवन–यात्रा को सुखद बनाती है और उसके स्वतंत्रता के मार्ग को प्रशस्त्र करती हैं। मनुष्य की समस्त यांत्रिक प्रगति, जिसके द्वारा उत्पादन की मात्रा तथा गुण में वृद्धि होती है, सभ्यता का अंग है। हमारे संस्थाबद्ध जीवन के प्रति भी जिसके द्वारा सामाजिक सुरक्षा तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रसार होता है, सभ्यता के अन्तर्गत आते हैं। इसके विपरीत संस्कृति से तात्पर्य मनुष्य की वे निरुपयोगी क्रियाएँ हैं, जो मानव–व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाती हैं। दार्शनिक तथा वैज्ञानिक चिंतन, कला–सृष्टि आदि ऐसी ही क्रियाएँ हैं। हमारी मान्यता है कि जिसे हम सभ्यता कहते हैं, वह अन्तिम विश्लेषण मैं, मनुष्य की सांस्कृतिक क्रिया की ही उपज या सृष्टि है। श्रेष्ठ वैज्ञानिक निरुपयोगी जिज्ञासा वाले अन्वेषक तथा विचारक होते हैं। जो देश या समाज ऐसे वैज्ञानिकों को उत्पन्न नहीं करता वहा यांत्रिक प्रगति भी नहीं हो सकती। इसी प्रकार संस्थाबद्ध जीवन के लिए उपयुक्त सादर्शों की कल्पना भी प्रायः वे दार्शनिक एवं विचारक ही करते हैं, को मानव जीवन को केवल उपयोगिता की परिधि में बंधा हुआ नहीं देखना चाहते और इसकी कामना करके कि वह जीवन न्याय सौदर्य आदि मूल्यों की सृष्टि का वाहक बनें। अतः भारतीय मान्यता के अनुसार जीवन का हर पक्ष संस्कृति के अन्तर्गत महिन किया जाता है। सामान्यतः किसी काल विशेष में जीवन के विविध पक्ष ही स की सस्कृति के संघटन तत्व होते हैं। किसी देश की संस्कृति मूलतः उसके निसि की चेतना की क्रिया है, न कि विश्वासों और आदर्शों की जड़ धरोहर।

वह चेतना–क्रिया अतीत को भी जीवन्त चिन्तन के रूप में ही ग्रहण करती और आंकती है। इस प्रकार का चिन्तन ही किसी संस्कृति की चेतनाधारा को वेगवान स्वच्छ बनाये रखता है। जिस देश की चेतना उक्त ढंग से लगातार क्रियाशील रहती है वहाँ संस्कृति के मरने का प्रश्न नहीं उठता,

वहाँ प्राचीन संस्कृति के समस्त श्रेष्ठ तंत्र चिर नवीन चिन्तन–क्रिया में लगातार उज्जीवित और नवीन होते रहते हैं। संस्कृति के इन्हीं तत्वों को सांस्कृतिक चेतना के स्वरूपों के अन्तर्गत अधिक स्पष्ट रूप से सा जा सकता है। अतः सांस्कृतिक चेतना के विभिन्न स्वरूपों का विवेचन करना नितन्न आवश्यक है।

चेतना का स्वरूप–

सांस्कृतिक चेतना के अन्तर्गत समाज–व्यवस्था, अर्थ–नीति, राजनीति, घर्म एवं दर्शन कला तथा साहित्य, शिक्षा–दीक्षा और सामान्य लोक जीवन के सभी पात्रों का समन्वित रूप में सन्निवेश किया जा सकता है। 'संस्कृति किसी समाज के उत्पादन सम्बन्धों पर आधारित दर्शन, चिन्तन, कला, साहित्य, विज्ञान आदि की गतिविधियों क कुल योग है। ..... होना यह चाहिए कि संस्कृति की वात करते समय सम्बन्धित देश और काल के ऐतिहासिक विकास क्रम में उपस्थित सामाजिक सम्वन्धों और प्रभुत्ताशाली वर्ग की तत्कालीन राजनीति को ध्यान में रखते हुए सांस्कृतिक मूल्यों का विश्लेषण किया जाये।'[1]

वास्तव में मूल्य ही मानव समाज की सांस्कृतिक चेतना के द्योतक रहे हैं। सांस्कृतिक चेतना किसी समय की तत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिविम्व होती है। हर समय के हर साहित्यकार की कृतियों में यह सांस्कृतिक चेतना पायी जाती है।

फिर भी चेतना का यह रूप हर समय एक सा नहीं रहता। इसका स्वरूप जमाने के बदलते आयामों के साथ बदलता रहता है। उसके प्रत्यावर्तन, उसकी क्रिया – प्रतिक्रिया आदि में परिवर्तन नजर आता है। 'संस्कृति' को लेकर चलती हुई परम्परा के प्रति हमारे आज के दृष्टिकोण में कुछ नया–निखार नजर आना स्वाभाविक है, क्योंकि प्राचीन इतिहास और उपलब्धियों को नयी आलोचनात्मक दृष्टि से देखने, सोचने समझने और कहने लगे हैं।

संस्कृति के बहुत से विस्मृत या उपेक्षित रूप और रंग आज फिर से प्रतिष्ठा प्रात कर रहे हैं। लोक–जीवन और लोक संस्कृति तो 'सांस्कृतिक चेतना' का लघु रूप है। संस्कृति समाज के केवल समृद्ध और अवकाश प्राप्त अंश की सौन्दय–चेतना और सपन क्रिया से ही नहीं बनती। उसके सम्पूर्ण रूप को निर्धारित करने में समाज के सक्रिय जीवन का, उसकी रचना का और उसके जीवन–बोध का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

आज के परिवेश में सांस्कृतिक चेतना –

संस्कृति सदा परिवर्तनशील रही है, क्योंकि मानव समाज भी सदा परिवर्तनशील प्रक्रिया से विकासशील एवं प्रगतिशील बन सका है। वस्तुतः 'परम्परा और परिवर्तन, व्यवस्था और विद्रोह तथा सातत्य और नव्यता का संघर्ष प्रत्येक युग में प्रत्येक समाज में चलता है।'[2] अतः संस्कृति को किसी वाद–विशेष के सीमित दायरे में बांधना असम्भव है। साथ–साथ सांस्कृतिक शक्तियों को भी केवल दो–एक स्थानों में ही केन्द्रित नहीं किया जा सकता। भारतीय जीवन पर सदा से ही सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का गहरा प्रभाव रहा है। दर्शन–पुरुष और दंत–कथा के साथ परम्परा एवं इतिहास का एक सम्मिश्रण ही इस पृष्ठभूमि का गहरा प्रभाव रहा है। दर्शन–पुरुष और दंत–कथा के साथ परम्परा एवं इतिहास का एक सम्मिश्रण ही इस पृष्ठभूमि का आधार स्तम्भ है। परन्तु सिर्फ इन सभी तत्वों को ही सांस्कृतिक चेतना का चिन्ह न मानकर स्वातन्त्रय–प्राप्ति के बाद हमने अपनी जीवन–दृष्टि, जीवन–मूल्य, जीवन का आदर्श और संस्कृति का परिवेश बदल दिया है। यह बात तो प्रायः सभी स्वीकार करते हैं कि इतिहास के प्रवाह के साथ–साथ संस्कृति सम्बन्धी अभिरुचि बदलती जाती है। किसी एक युग में बहुत ही लोकप्रिय तथा प्रचलित सांस्कृतिक मूल्य एवं तत्व कालान्तर में परित्यक्त, बल्कि कभी कभी तो तिरस्कृत तक होने लगते हैं और उसका परिवेश सर्वथा नये रूप लेकर नयी अभिव्यक्तियाँ लेकर प्रस्तुत होने लगता है। वस्तुतः संस्कृति की अविच्छिन्न और सततप्रवाही परम्परा का प्रत्येक युग में अन्य परिस्थितियों तथा विशिष्टताओं के साथ एक नया सामंजस्य और सन्तुलन स्थापित होता है। परिणामस्वरूप सर्वसामान्य बदलते आयामों के साथ–साथ सांस्कृतिक चेतना का परिवेश भी बदल जाता है।

सामान्य रूप से प्रत्येक युग की मानवीय संवेदना के साथ ही यह सांस्कृतिक चेतना जुड़ी रहती है। मानव की भौगोलिक परिस्थितियों की परिवर्तित दिशा के अनुरूप ही मानव–जीवन का दृष्टिकोण बदलता है। जब हम सांस्कृतिक परिवेश के बदलते परिप्रेक्ष्य की बात करते हैं, तो उसमें सांस्कृतिक परिवेश के धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा राजनैतिक सभी प्रकार के पक्ष सन्निहित हैं। जिनको अलग–अलग रूप में नहीं वरन् एक संप्रक्त रूप में ही समझने से सिद्ध हो जायेगा कि सांस्कृतिक चेतना को बदलने में या उसके परिवेश को बदलने में वे कहाँ तक आधारभूत माने गये हैं।

अतः कहा जा सकता है कि हृदयेश जी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना देखने को मिली

है। मानव के उस आन्तरिक गुण, भावना तथा विचार पद्धति को संस्कृति कहा जा सकता है, जो मानव–समाज के प्रत्येक क्रिया–कलाप तथा आचार–विचार को प्रभावित करती है।

हृदयेश जी को अपनी कहानियों में व्यक्त उनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण का विवेचन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–पर्वोत्सव, रीति–रिवाज, अन्धविश्वास, धार्मिक परिस्थितियाँ, रहन–सहन, खान – पान, वेश–भूषा जो कि इस प्रकार उनकी कहानियों में देखने को मिलते हैं।

(क) पर्वोत्सव–

समकालीन हिन्दी कहानी में हृदयेश जी की विशिष्ट पहचान इसलिए है क्योंकि उन्होंने पिछले लगभग चार दशकों में हिन्दी कथा साहित्य को निरन्तर समर्थ एवं ताजा कहानियाँ दी हैं। 'रामलीला तथा अन्या कहानियों' में हर कहानी अलग–अलग है, हमारे समाज में अनेक पर्वोत्सव मनाये जाते हैं, पर्वोत्सवों का बहुत ही महत्व है। उसमें से एक रामलीला भी है, जो कि दशहरे पर होती है। हमारे यहाँ श्री राम भगवान ने एक लीला की थी, जिसमें बनवास के बाद रावण का वध कर आयोध्या लौटे थे, तब सारी प्रजा ने खुशियों में उनके स्वागत के लिए दिए जलाये थे। उसी दिन से हमारे यहाँ दीपावली मनाई जाती रही है। दीपावली का पर्वोत्सव सभी लोग बड़े धूम–धाम से मनाते हैं, तभी से यह परम्परा चली आ रही है जिस लोग बड़े ही हर्ष उल्लास से मानते चले आ रहे हैं।

हमारे हृदयेश जी ने अपनी एक प्रसिद्ध कहानी 'रामलीला तथा अन्य कहानियाँ' में त्योहार कहानी के अन्तर्गत उत्सवों का विरोध किया है। जिसका मुखिया श्री कृष्ण बाबू है। यह बहुत ही निर्धन परिवार की कहानी है, जोकि निर्धनता से परेशान होकर भी, समाज में रहने के कारण दीपावली का त्योहार मनाता है, उसके पास इतना पैसा नहीं है जोकि वह त्योहार पर नये बर्तन ला सके, लेकिर फिर भी वह और खर्चों में कटौती कर दीपावली का त्योहार मनाता है। हृदयेश जी ने इसी का चिंतन इस कहानी में किया है जो कि इस प्रकार है–

'तो तुम नया बर्तन ही मंगवाना चाहती हो, यह क्यों नहीं कहती ? औरत अपनी मर्जी पूरी करने के लिए रास्ता निकाल ही लेती है।' श्रीकृष्ण बाबू एक खास अन्दाज से बारीक सा हंस दिए। पत्नी ने भौहें टेढ़ी करते हुए झिड़का, इस उम्र में बहको मत।

पहले तो श्री कृष्ण बाबू सीधे सामने वाली दुकान पर ही जाना चाहते थे। पर फिर वह वहाँ नहीं गये। याद आ गया है कि बर्तन वाला उनको कुछ अच्छी तरह जानता है। वह दुकान कुछ दूर थी। वहाँ भी भीड़ थी। दस–पन्द्रह लोग खरीदारी कर रहे थे और उससे ज्यादा चुनाव में मदद देने के लिए साथ थे। दुकान पर भी चार लोग ग्राहकों को संभालने के लिए डटे हए थे। उनमें से एक ने श्रीकृष्ण बाबू को पहचान लिया और मजाक किया, आज नगद पैसों से ही बर्तन बेचे जायेंगे। फिर उसने मजाक में दबोच लिया और लाए गए वर्तनों को काटे पर तोल कर एक पर्ची पर दाम टीप लिए। फिर पूछा उनको कौन सा माल चाहिए है।

श्रीकृष्ण बाबू ने स्टील की एक थाली उठा ली। वह बड़ी थी और बजनी भी। ''नम्बर एक का माल है। दुकानदार ने फिर पीछे लिखे दाम पढे–पैंतीस रुपये उत्तर पैसे। यानी बस आपको मजरा कर ग्यारह रुपये और देने होगें।''

श्रीकृष्ण बाबू ने दूसरी थाली उठा ली। उसमें करीब छह रुपये पड़ते थे। फिर एक और थाली उठा ली. इसमें तीन रुपये बचते थे।

'यह थाली भी फर्स्ट क्लास है, न छोटो , न बडी, घर बरताऊ।'

श्रीकृष्ण बाबू को भी यही लगा कि दो आदमी एक साथ खाना चाहें तो भी खा सकते हैं। उन्होंने दो–एक थालियाँ और लोटी–पौटीं। फिर उसी पर जम गए। फिर उन्होंने पसन्द को एक कटोरी उठा ली।

'बस, आपको सिर्फ एक रुपया देना होगा।'

'अभी पास से देने को कुछ रह गया है?' श्रीकृष्ण बाबू ने नरमी से दुकानदार की ओर देखकर चेहरे पर रिश्वत जैसी मुस्कराहट बिखरा दी 'लाला जी तीन बर्तन दिए हैं और डेढ़ लिए जा रहा हूँ, एक बड़ा और एक छोटा।'

मुझे आपको जो छूट देनी थी, पहले दे दी। त्योहार पर पास से एक रुपया तो खर्च करो। फिर दुकानदार ने वह रुपया भी छोड़ दिया।

सड़क पर कितने ही लोग नये बर्तन लिए गुजर रहे थे। श्रीकृष्ण बाबू के पास भी नये बर्तन थे और लोग वैसा देख सकते थे।

'पत्नी को थाली पसन्द आयी, कटोरी भी। समस्या गिलास की थी। मगर एक बार में सब बर्तन तो नहीं आ सकते।'[3]

(ख) रीति–रिवाज–

हृदयेश जी ने संस्कृति में परम्पराओं के महत्व को

अक्षुण्ण माना है। अपनी परम्पराओं के परित्याग तथा दूसरे की परम्पराओं अर्थात् रीति–रिवाजों को वे निन्दित, घृण्य और कृत्य मानते हैं। इसी प्रकार दिनकर जी ने भी माना है कि 'जातियों का सांस्कृतिक विनाश तब होता है जब वे अपनी परम्पराओं को भूलकर दूसरों की परम्पराओं का अनुरकण करने लगती हैं जब वे अपने रस्म–रिवाजों को छोड़कर दूसरों के रस्म–रिवाज अपनाने लगती है, तब उन्हें अपनी पूर्वजों पर ग्लानि और दूसरों के पूर्वजों पर श्रद्धा होने लगती है तथा वे मन ही मन अपने को हीन और दूसरों को श्रेष्ठ मानकर मानसिक दासता को स्वेच्छा स्वीकर कर लेती है।'[4]

लेखक ने परम्परा को सदा प्राणवान और समाज को जीवन प्रदान करने वाली माना है। परम्परा के विनष्ट होने पर लोगों की आस्था छिन्न–भिन्न हो जाती है। अपनी संस्कृति और समाज से उनका एक प्रकार से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है।

परम्परा की रक्षा पर बल देने के साथ–साथ हृदयेश जी ने समयानुकूल उसमें परिवर्तन करने तथा उसकी दर्बलताओं और विकृतियों को दूर करने का भी सर्मथन किया है।

हृदयेश जी की 'एक कहानी अन्तहीन' में कहानी संख्या 2 में रीति रिवाजों को अच्छे रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी का मुखिया साहब ही थे, जिनका देहान्त हो गया है। जिनकी मिटटी को शमशान भूमि ले जाया जा रहा है, उनके साथ किये गये रिवाजों का वर्णन किया गया है।

'शमशान भूमि आ गई थी और टिकटी जमीन पर रख दी गई। सुस्ताने के लिए लोगों ने अपनी मांस पेशियों को ढीला छोड़ दिया।

क्या लाश को स्नान कराने नदी में ले चलोगे? हरिनाथ ने पूछा। नदी दो सौ गज के फासले पर थी।

भई, अंधेरा बहुत है, किसी गलत छाँव पैर पड़ गया तो मुसीबत में फंस जायेंगे। शम्भू पहलवान ने बीड़ी का कश छोड़ते हुए कहा। आवाज में इस आशंका के रेशे थे कि लोग नदी पर जाने के लिए कही राजी न हो जायें।

मेरे राय में नल पर ही नहला देना ठीक होगा। गिरधारीलाल बोले, नल में भी तो नदी से पानी खिंचकर आता है।

पिछली बार मैं रामदुलारे की माँ की मिट्टी के साथ आया था तो रामदुलारे ने माँ को नल पर ही नहलाया था। रघुनाथ ने बताया।

सामने नल लगा था। लाश को उसने नीचे ले जाया गया।

लाश चिता पर रख दी गई।

आग कौन देगा ?

आग .....?

मरघर के अघोरी वावा को बुला लिया गया और आग उसने लगा दी।

टुकड़े और भी थे। वे या तो मास्टर साहब से जुड़े रह गये थे या गली से इधर रहने वालों से, या फिर गली के ही उन लोगों से जो शवयात्रा में सम्मिलित नहीं थे। ये टुकड़े भी अपने चरित्र में साफ और तराशे हुए थे।'[5]

हृदयेश जी की यह कहानी रीति रिवाजों से जुड़ी हुई कहानी है। हमारे समाज में जो काम एक करता है वही दूसरा दोहराता चल जाता है। वही परम्परा बन जाती है। अतः इस कहानी से आशय यह है कि हमारे जीवन में रीति–रिवाजों का भी बहुत महत्व है। इसके बिना भी हमारा जीवन अधूरा है।

(ग) अन्धविश्वास –

बहुसंख्यक जनता की इच्छाओं आकांक्षाओं के लिए संघर्षरत मनुष्यता के कथाकार हृदयेश हिन्दी जगत में अपने यथार्थवादी कलात्मक संयम एवं निखार वाले लेखक के लिए समाद्धत हैं।

हृदयेश जी की प्रसिद्ध कहानी 'सम्मान' में कहानी प्रेम में अंधविश्वासों को बढ़ावा दिया है और वैसे ही हमारे समाज में अंधविश्वासों को ज्यादा ही बल दिया गया है। इस कहानी का मुखिया अखिलेश चन्द्र है, जिसका आकस्मिक निधन हो गया है। लोगों को कहना है कि उसे प्रेत योनि मिली है, इसी कारण वह सबको सता रहा है। यही अंधविश्वास सभी पात्रों के मन को दिन–रात परेशान कर रहा था। अंधविश्वास के कारण व्यक्ति झूठ को सत्य समझ लेता है। हृदयेश जी ने इसी का चित्रण इस कहानी में किया है–

'किन्तु इससे पूर्व अखिलेश चन्द्र की मृत्यु हो गयी थी और रामकिशन की आदेश की प्रति केवल दस रुपये खर्च कर एक दूसरे बाबू से हासिल हो गयी थी। राम किशन ने सोचा था, चलो ये दो सौ रुपये बचे। वह अखिलेश चन्द्र की मृत्यु पर प्रसन्न भी हुए थे कि मगरमच्छ से छुटकारा मिल गया था। स्याला बड़ा लागू था।'

दो सौ रुपये दीजिये, बेईमानी न करिए, नुकसान उठा जाइयेगा, खिड़की में से अन्दर झाँकते हुए अखिलेश चन्द्र ने फिर कहा था।

सुबह उठने पर रामचन्द्र तय नहीं कर पा रहे थे

कि वह सपना था या अखिलेश चन्द्र सच में छत पर आये थे। उन्हें याद पड़ा कि रात वह हिम्मत कर खिड़की के पास भी गये थे। उन्हें खिड़की के पास कुछ भी दिखाई नहीं दिया था। उन्होंने पानी पिया था और खाट पर लेट गये थे। पत्नी बच्चों के साथ मायके गयी हुई थी और वह अकेले थे। कुछ ही देर बाद फिर आवाज हुई थी उन्होंने कुछ बड़े बूढ़ों के मुँह से प्रेत के बारे में सुना था, किन्तु इसी के साथ किताबों वगैरह में यह भी पढ़ा था कि भूत–प्रेतों की धारणा गलत है और दिमाग में जो बात कहीं दबी पड़ी होती है, अक्सर वह उभर कर ऊपर आ जाती है। यह एक किस्म की बीमारी भी है। भूत–प्रेतों पर उनको खुद भी ज्यादा यकीन नहीं था।

छत की मुंडेर पर एक पतंग हिलगी थी। फिर वह इस सम्भावना से जुड़ गये थे कि उस पतंग के साये को उन्होंने अखिलेश चन्द्र मान लिया होगा और वह आवाज पतंग के खिड़की से टकराने से होती होगी। जो व्यक्ति मर गया है, भला वह रुपया कैसे वसूल सकता है? स्याला खुद पहले दर्जे का बेईमान था और मुझे बेईमान बता रहा था।

जल्द ही शहर के एक अन्य हिस्से में एक अन्य रात फिर वही वाक्या हुआ था। इस बार लाला जगन्नाथ के साथ। जगन्नाथ प्रसाद के घर की काल बेल बजी थी। इस समय कौन हो सकता है? क्या कोई स्टेशन से आया है? उन्होंने छजजे पर आकर पूंछा– कौन साहब?

लाल जी, मैं हूँ– अखिलेश चन्द्र।

कौन अखिलेश चन्द्र।

आकृति हंसी थी, मुँह चिढ़ाने जैसी हंसी, लाला जगन्नाथ प्रसाद, मुझे भूल गये?

मैं सप्लाई विभाग का अखिलेश चन्द्र हूँ, सक्सेना बाबू। अपने तीन सौ रुपये लेने आया हूँ। दे रहे हैं?

जगन्नाथ प्रसाद एकदम से घबड़ाकर छज्जे से हट आए। फिर अन्दर से कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। दरवाजा बन्द करने के बावजूद भी ऊपर की सांस ऊपर, नीचे की नीचे। घंटी फिर बजी थी, वे पलंग पर गिरकर कांपने लगे थे।'[6]

हृदयेश जी की कहानी 'प्रेत' अन्धविश्वास की कहानी है, अन्धविश्वासी व्यक्ति जैसा सोचता है उसको वैसा ही नजर आने लगता है, एक भ्रम सा बैठ जाता है।

(घ) धार्मिक परिस्थितियाँ –

धार्मिक शब्द का मूल रूप है– धर्म। धर्म का कोशकारों के मुताबिक अर्थ है– सुकृत, सत्कर्म, पुण्य, सदाचार, वह आचरण जिससे समाज की रक्षा और कल्याण हो, सुख–शान्ति की वृद्धि हो और परलोक में सद्गति प्राप्त हो। कर्तव्य, मन की वृत्ति, प्रकृति, स्वभाव, सम्प्रदाय, पथ और उपासना का भेद आदि। उपरोक्त अर्थों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि धर्म से सम्बन्धित मानव की धार्मिक धारणायें जीवन के लिए कितनी उपयोगी एवं हितकारी है और भारतीय जीवन में तो इन गुणों का, तत्वों का, पुण्य का, सद्गति को प्राप्त करने का महात्म्य अधिक ही है। वास्तव में भारतीय जन–जीवन में धर्म का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है। धर्म के अवलम्बन से मानव बुरे कार्य करने से, अनीति–अत्याचार करने से अपने आपको संयत करता रहता है। धर्म के सहारे वह मानवता को संजोये रखता है। परन्तु यही धार्मिक परिवेश हर युग में मानव को ऐसा करने में सहायभूत नहीं होता, क्योंकि धर्म का अपना रुख हमेशा एक सा नहीं रहता। हृदयेश जी ने अपने कथा साहित्य में धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन कहीं पर भी प्रस्तुत नहीं किया है। उनकी सारी कहानियाँ, उपन्यास धार्मिक जीवन से हटकर है। अतः कहा जा सकता है कि हृदयेश जी को धार्मिक परिस्थितियों ने कहीं पर भी नहीं छुआ है, हृदयेश जी रुढ़िवादी होते हुए भी धार्मिक जीवन से विमुख हैं, धार्मिक परिस्थितियाँ उनके साहित्य में कहीं पर भी देखने को नहीं मिलती हैं।

(ङ) रहन–सहन, खान–पान एवं वेशभूषा–

हृदयेश जी की रामलीला तथा अन्य कहानियाँ में कहानी 'गली' लोगों का रहन–सहन, खान–पान एवं वेश–भूषा को दर्शाती है। इस कहानी का पात्र वीरन है। वीरन दफ्तर में काम करता है, उसकी बीबी स्कूल जाती है, वैसे तो हर घर का रहन–सहन, खान–पान एवं वेश–भूषा भिन्न–भिन्न ही हुआ करती है। यहाँ पर हृदयेश जी ने गली में कुछ घरों के रहन–सहन का चित्रण अपनी भाषा में लिखा है जो कि इस प्रकार है–

'गली में अखबार वाला तीन–चार बंधे हुए घरों में अखबार डाल गया। रोज का बिस्कुट–डबलरोटी वाला सिन्धी छोकरा आकर आवाज लगाने लगा। देर से साइकिल पर डब्बू में दूध लेकर आने वाला सीटी बजाने लगा। कई दरवाजे खुले और कटे–पिटे धड़ या शरीर निकले। एक छोटे लड़के ने टांग उठाकर दरवाजे पर पेशाब करते एक कुत्ते को ढेला फेंक कर मारा। ढेला कुत्ते के न लगकर एक छोटी लड़की के पास गिरा और लड़की फेंकने वाले लड़के की ओर देखकर हंसने लगी।

'वीरन की बीबी सिड़क–सिड़क की आवाज करती दालान में झाड़ू लगा रही है। झाड़ू लगाने के बाद

वह भीगे लत्ते से फर्श पोंछेगी। वीरन अभी तक सो रहा है। सो नहीं रहा, दरअसल जाग रहा है और सोने की कोशिश कर रहा है। उसने सिर पर चादर खर्खीच ली है। कुछ पहले तक वह एक बहुत ही अजीब सपना देख रहा था ..... वह एक निहायत सजे हुए कमरे में बैठा है। जिस मकान में वह कमरा है वह नया और आधुनिक ढंग का है। कमरे के सामने एक हरा–भरा बगीचा है। बगीचे में एक युवा औरत खड़ी है। औरत का मुँह नहीं दिख रहा है, पर जिस्म के दूसरे अंशों से वह रूपसी लगती है। वह बाग से औरत के निकट चला जाता है। औरत उसका हाथ पकड़ लेती है और एक ओर खींचने लगती है। औरत का चेहरा अब भी छिपा रहता है। आगे सीढियाँ हैं। यह औरत के साथ सीढियों पर चढ़ता है। फिर आँख खुल जाने पर सपना टूट जाता है।

वीरन की बीबी नहाने का पानी निकालने के लिए जोर–जोर से पम्प चलाने लगी। जब बाहर गीली धोती में आयी, वीरन खाट पर उठ बैठा था।

'बस चले तो खाट छोड़ो ही नहीं।

बीबी मुस्करा दी। नहीं, तेरे साथ उठकर झाड़ू लगवाऊँ। वीरन एकदम से गुर्रा उठा।'

'अस्थाना की बीबी भी स्कूल के पहनावे में निकली है। पिछले साल से उसने बच्चों के स्कूल में पढ़ाने की नौकरी कर ली है। बच्चों का यह स्कूल सुबह लगता है। इसमें उसे सुविधा है। वह स्कूल से दोपहर तक वापस आ जाती है। अस्थाना दस बजे दफ्तर चला जाता है दो छोटे–छोटे बच्चे दो घंटे के लिए पड़ोस में भेज दिए जाते हैं। वहां अस्थाना की रिश्तेदारी है। पहले अस्थाना बाबूगिरी के साथ–साथ निचले जमातों की ट्यूशनें भी पढ़ाता था, पर जब से डॉक्टरों ने खाँसी और जुकाम के न जाने पर उसे क्षय बता दिया, वह बहुत सावधानी बरतता है और दफ्तर के समय के अलावा आराम करता है। अस्थाना की बीबी सौदा–सुलभ का भी प्रबन्ध करती है। 30 वर्ष की उम्र में ही अस्थाना अपने को बूढ़ा समझने लगता है और हरदम उसके दिमाग में 'परहेज–का कीड़ा कुलबुलाया करता है।'[7]

हृदयेश जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'एक कहानी अन्तहीन' के कहानी संख्या दो में रहन–सहन, खान–पान एवं वेश–भूषा पर लेखक ने प्रकाश डाला है। इस कहानी का मुखिया मास्टर साहब है। यह कहानी उन्हीं की जिन्दगी के हर क्रियाकलापों पर प्रकाश डालती है। मास्टर साहब बिल्कुल अकेले रहते हैं फिर भी उन्होंने अपनी जिन्दगी को बड़ा संजो कर रखा है, उनका जीवन बहुत ही साधारण था। उसी का चित्रण इस कहानी में किया गया है– 'वह खादी के मोटे कपड़े पहनते थे। कच्छा, बनियान, गमछा, इनको साबुन से रोज धोते थे। उनके पैरों में कपड़ों का सफेद जूता रहता था। जिस पर वह हर रविवार को खड़िया चढ़ा लेते थे। वह हर काम में सरसों का तेल ही उपयोग करते थे, यहाँ तक कि कान के साथ–साथ आँखों में भी प्रतिदिन दो–दो बन्द डालते थे। दाँत भी उसी से मलते थे।'

कोई रोग व्याधि उठ खड़ी होने पर वह दो–एक दिन के लिए भोजन छोड़ देते थे। उपवास काल में वह नमक पड़ा गर्म पानी पीते थे और विश्राम करते थे।

अध्यापन जीवन में उनकी यह दिनचर्या थोडी बहुत बदली हई थी। तब एक अच्छा खासा वक्त स्कूल और विद्यार्थियों के बीच में निकल जाता था। पर रिटायर होने के बाद से उनकी दिनचर्या निश्चित हो गयी थी।

मास्टर साहब ने कभी सामाजिक प्रश्नों पर विवेचनात्मक निबन्ध भी लिखे थे। वे समाचार–पत्रों के रविवारीय अंकों में प्रकाशित होते थे। पर फिर वे धीरे–धीरे छपना बन्द हो गये औ लगे। संपादकों ने यह सुझाव दिया कि व हास्य–व्यंगात्मक लेख लिखा करें जो पाठकों के बीच अधिक लोकप्रिय हैं। उन्होंने प्रकाशन के विचार से फिर कोई लेख नहीं लिखा।[8]

अतः कहा जा सकता है कि कथाकार हृदयेश जी ने अपनी कहानी संग्रहों में खान–पान रहन–सहन, वेशभूषा को महत्व देते हुए व्यक्ति के जीवन पर प्रकाश डाला है। उनकी कहानियाँ बहुत ही रोचक व हृदय को छूने वाली कहानियाँ हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामवृक्ष बेनीपुरी – वर्तमान सांस्कृतिक – साहित्यिक स्थिति, लेख–आलोचना, जनवरी–मार्च, 1974, पृष्ठ संख्या– 46–47।
2. दिनकर – दिनकर की डायरी, प्रथम संस्करण, 1973, पृष्ठ संख्या – 260।
3. हृदयेश – उपन्यास–रामलीला तथा अन्य कहानियाँ, कहानी – त्योहार, पृष्ठ संख्या – 140–141।
4. दिनकर – राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, पृष्ठ संख्या – 3।
5. हृदयेश – एक कहानी अन्तहीन, कहानी संख्या– 2, पृष्ठ संख्या – 25।
5. हृदयेश – सम्मान – कहानी प्रेत, पृष्ठ संख्या – 14–15 ।
6. हृदयेश – रामलीला तथा अन्य कहानियाँ, कहानी – गली, पृष्ठ संख्या – 82–83।
7. हृदयेश – उपन्यास – एक कहानी अन्तहीन, कहानी संख्या – 2, पृष्ठ संख्या – 18–19।

ISSN : 2394-4366

Received: 12 Apr., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

संस्कृत साहित्य में नाट्य वृत्तियों की उपयोगिता

– प्रो. (डॉ.) बिन्दु सिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष –
संस्कृत विभाग,
कर्म क्षेत्र महाविद्यालय,
इटावा–206001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
profbindusingh@gmail.com

सारांश

नाटक में अभिनय की प्रधानता रहती है और अभिनय द्वारा सामाजिक को किसी न किसी रस की अनुभूति होती है। अतः इन भारती आदि वृत्तियों को किसी न किसी रस के साथ सम्बन्ध होने स्वाभाविक है। नाट्यशास्त्र के बीसवें अध्याय में आचार्य भरत ने कहा कि कैशिकी वृत्ति का प्रयोग श्रृंगार और हास्य रस की अभिव्यक्ति के लिए किया जाना चाहिए। वीर, रौद्र और अद्भुत रस में आश्रि वृत्ति को सात्वती, भयानक, वीभत्स और रौद्र में आरभटी का प्रयोग किया जाना चाहिए। करुण और अद्भुत रसों के लिए आरभटी वृत्ति का प्रयोग अपेक्षित है। भारती चूँकि शब्द वृत्ति है, अतः इसकी स्थिति सभी रसों में पायी जाती है। वृत्तियों के स्वरूप तथा उसके रसगत वैशिष्टयों को लेकर आचार्यों में मतभेद पाया जाता है, किन्तु सामान्यतः भरतमुनि की वृत्तिविषयक मान्यताएँ ही साहित्य शास्त्रियों के द्वारा स्वीकृत हुई हैं। भवभूमि के तीनों नाटकों में नाटकीय व्यापारों की ऐसी प्रचुरता और विविधता पाई जाती है कि उनमें प्रायः सभी सांगोपांग वृत्तियों का समाहार हो जाता है। विशेषतः मालती माधव नाटकीय कार्य व्यापार की विविध शैलियों की दृष्टि से काफी सम्पन्न है। निष्कर्ष यह है कि नाटक में रसाभिव्यक्ति के लिए उक्त भारती आदि वृत्तियों का प्रयोग नितान्त आवश्यक एवं अपरिहार्य है।

'वृत्ति' शब्द वृत्त धातु से 'स्त्रियाँ' क्तिन् सूत्र से स्त्रीलिंग भावार्थ में क्तिन (ति) प्रत्यय लगाने से बना है जिसका अर्थ है - वर्त्यतें प्रवर्त्यतेऽ नयेति वृत्ति अर्थात् प्रवृत्त होने की रीति।

नाटकीय कार्य व्यापार का एक अत्यन्त आवश्यक तत्व वृत्ति है, वृत्ति चाहे कायिक हो या मानसिक क्रिया की बोधक है, उसकी अभिव्यक्ति में वाणी या भाषा का बहुत बड़ा योगदान रहता है।

वृत्ति का तात्पर्य -

नायक का यह व्यापारात्मक स्वभाव है, जो उसे किसी विशिष्ट दिशा की ओर प्रवृत्त करता है।

यह नाटकीय शैली का वह प्रकार विशेष है जिसका सम्बन्ध नाटक आदि की भाषा अभिनय दोनों से है चूंकि व्यापार शब्द में वाचिक कायिक एवं मानसिक सब प्रकार की गतिविधियों का समाहार हो जाता है। वृत्तियों को नाटक की मातायें कहा जाता है और इसके चार प्रकार माने गये हैं-(1) भारती, (2) सात्वती, (3) कैशिकी तथा आरभटी।

परम्परावादी आचार्यों की मान्यता है, कि नाट्य में पाठ्य आदि चार अंगों की तरह भारती आदि चारों वृत्तियों का ग्रहण भी चारों वेदों से लिया गया है, ऋग्वेद से भारती वृत्ति यजुर्वेद से सात्वती वृत्ति सामवेद से कैशिकी वृत्ति, अथर्ववेद

से आरभटी वृत्ति ग्रहण की गई है।

नाट्य शास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत ने प्रथम अध्याय में स्पष्ट कहा है कि इतिहास को पहले तीन वृत्तियों - भारती, सात्वती और आरभटी में ही रचकर ब्रह्मा जी के समक्ष प्रस्तुत किया था। परन्तु जब ब्रह्मा जी ने उन्हें चौथी वृत्ति कैशिकी में भी रचना करने का आदेश दिया उसके लिए अपेक्षित द्रव्यादि की व्यवस्था कर देने का आश्वासन भी दिया तो उन्होंने कैशिकी वृत्ति का उपयोग किया था।

कैशिकी वृत्ति का प्रयोग भरतमुनि ने भगवान शंकर के नृत्य से ग्रहण किया था अर्थात् चौथी वृत्ति का प्रयोग उन्होंने स्वयं भगवान शिव की प्रेरणा से किया था।

नाटक के पात्र अथवा काव्य के नायक के शरीर, वचन तथा मन की विचित्रता में मुक्त चेष्टायें ही वृत्तियाँ कहलाती हैं।

भोजराज की अनुसार चित्र के विकास, विक्षेप संकोच तथा विस्तार की दिशा में पात्रों के जो व्यवहार या वर्तन हुआ करते है, उन्ही का एक सामान्य नाम वृत्ति है - अवस्थाओं का प्रभाव मन तथा शरीर दोनों पर पड़ता है। सूक्ष्म होने से मन पर प्रभाव पहले पड़ता है, और उसकी अभिव्यक्ति आगे चलकर शरीर के ऊपर भी होती है। यदि कोई स्वरूप व्यक्ति किसी दुर्बल व्यक्ति के ऊपर अनायास प्रहार कर दे तो दर्शक के ह्रदय में क्रोध का उदय होना स्वाभाविक है। चित्त के क्रोधावेश में आते ही शरीर की विचित्र दशा होती है -

भौंहें तन जाती है, मुखमण्डल तमतमा उठता है, अधर-पुट फड़कने लगते हैं और आँखों में रक्त उतर जाता है। ऐसे उद्दीप्त वातावरण में ऐसा दर्शक जो कुछ व्यापार करता है, उसमें उसके मन तथा शरीर की अवस्थाओं का पूरा प्रभाव पड़ता है। उसे ही वृत्ति कहा जाता है।

आचार्य भरत ने विभिन्न वृत्तियों को मधुकैटभ नामक दैत्य के साथ युद्ध में संलग्न विष्णु की विविध चेष्टाओं से उत्पन्न बताया है, भारती वृत्ति विष्णु के पद संचालन से पृथ्वी पर पड़े भार से उत्पन्न हुई, उनकी ओजस्विनी तथा वीर रसोचित चेष्टाओं से सात्वती का जन्म हुआ, उन्होंने ललित लीला तथा विचित्र आंगिक अभिनय के साथ अपनी शिखा बांधी, उससे कैशिकी का उद्भव हुआ। तथा उनके आवेग युक्त अनेक प्रकार की युद्ध चेष्टाओं से आरभटी उत्पन्न हुई। वास्तव में इस पौराणिक कथा का प्रतीकात्मक महत्व है इससे यह स्पष्ट होता है कि वृत्तियों के आश्रय नायक आदि के विभिन्न किये गये व्यापार होते हैं। विष्णु यहां नट का प्रतीक है और उनकी विविध चेष्टाएँ व्यापारों की विशिष्ट प्रकृतियों की सूचक है।

वृत्तियों का स्वरूप

1- भारती वृत्ति -

भारती वृत्ति वाग्व्यवहार प्रधान होती है, यह सभी रूपकों में पायी जाती है, और सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में नाट्य वृत्तियों की उपयोगिता सम्पूर्ण रसों से पूर्ण तथा प्रायः संस्कृत भाषा का अवलम्बन करने वाली होती है, इसकी विशेष रूप से उपस्थिति नाट्यकृतियों के प्रारम्भिक भागों आमुख और प्ररोचना में होती है। धनंजय इस वृत्ति को शब्दवृत्ति की संज्ञा प्रदान करते है और शेष वृत्तियों को अर्थवृत्ति मानते हैं।

भरतमुनि के अनुसार जिस वृत्ति में संस्कृत वाणी की बहुलता हो, जो पुरुषों द्वारा प्रयोग में होती है - स्त्री पात्रों द्वारा नही। पुरुष पात्रों में राजा मंत्री अमात्य ऋषि आदि श्रेष्ठ पात्र ही जो संस्कृत बोलते है, इनका प्रयोग कर सकते है भरतों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इसको भारती कहा गया है। इस वृत्ति के चार भेद होते हैं-

(1) प्ररोचना,
(2) आमुख,
(3) वीथी एवं
(4) प्रहसन।

2- सात्वती वृत्ति -

इस वृत्ति का नामकरण सत्व शब्द के योग से हुआ है। सत्वशाली पुरुषों के द्वारा प्रयोज्य होने के कारण यह वृत्ति 'सात्वती' नाम से अभिहित की जाती है। भरतमुनि के अनुसार इस वृत्ति में सत्वगुण की की प्रधानता रहती है। न्याय सम्पन्न वृत्त का विधान रहता है, हर्ष से यह उद्भट रहती है। इसमें शोक का सर्वथा अभाव रहता है।

तात्पर्य यह है कि सच्चे पुरुष की जो वीरभावात्मिका चेष्टायें होती है, उन्हीं का अवलम्बन कर इस सात्वती की स्थिति रहती है।

मानसिक वाचिक एवं कायिक अभिनयों से सूचित होने वाले, आर्जव, डांट-फटकार हर्ष और धैर्य से युक्त तथा रौद्र वीर शान्त, एवं अद्भुत रसों से संबद्ध मानस व्यापार को ही सात्वती वृत्ति कहते है।

इस वृत्ति के संलापक, उत्थापक सांधात्य तथा परिवर्तक नाम के चार अंग होते है। पात्रों में जब परस्पर नाना भाव एवं रसयुक्त गम्भीर उक्ति पायी जाये, वहाँ संलापक की स्थिति मानी जाती है। इसका उदाहरण महावीर चरित्र में वर्तमान है जहां एक पात्र दूसरे पात्र को युद्ध के लिए उत्तेजित करें, वहां उत्थापक होता है। मंत्र शक्ति, अर्थ शक्ति, दैवशक्ति आदि के द्वारा जब शत्रु के संघ का भेदन किया जाये

तो सांधात्य होता है। जब आरम्भ किये गये किसी एक कार्य को छोड़कर दूसरे कार्य का सम्पादन किया जाये तो उसे परिवर्तक कहते हैं।

इस वृत्ति के निदर्शन महावीर चरित्र एवं मालती माधव के वीर, रौद्र आदि रसों से पूर्ण व्यापारों में प्रचुरता से मिलते हैं। महावीर चरित्र के भार्गव - प्रसंग मे जो नाटकीय व्यापार आया है, उसमें डांट-फटकार, धैर्य हर्ष आदि का कलात्मक मिश्रण दिखाई देता है। अतः यह प्रसंग सात्वती वृत्ति का उत्तम निदर्शन है।

मालती माधव के पंचम अंक में श्मशान, भूत-प्रेत देवी चामुण्डा आदि के चित्रण में इसी वृत्ति की प्रधानता है। वस्तुतः सात्वती सत्व एवं आवेग से पूर्ण प्रत्येक मानस व्यापार में फूटती है। इस वृत्ति में हर्ष का प्रतिपादन होता है, अतः इसमें शोक, करूणा आदि का अभाव लक्षित होता है। आर्जव के ग्रहण से इसमें कपट का अभाव रहता है।

3- कैशिकी वृत्ति -

कैशिकी शब्द की व्युत्पत्ति 'केश' शब्द से स्पष्ट होता है, इसलिए भरतमुनि ने इस वृत्ति का सम्बन्ध भगवान विष्णु के द्वारा केशपास बांधने से दिखलाया है। मधुकैटभ-युद्ध में भगवान विष्णु ने इन दोनों को असुरों से युद्ध करने के लिए अपना केशपाश बांधा उसी से कैशिकी वृत्ति आविर्भूत हुई।

भरतमुनि ने बताया कि जो वृत्ति सुनृदर नेपथ्य के विधान से चित्रित हो सुन्दर वेशभूषा से सुसज्जित हो, स्त्रियों से युक्त हो, जिसमें नाचने और गाने की बहुलता हो, उसे काम के उपभोग से उत्पन्न उपचारों से सम्पन होने से ही 'कैशिकी' नाम से पुकारा जाता है। कैशिकी वृत्ति गीत, नृत्य विलास आदि श्रृंगारपूर्ण चेष्टाओं के कारण कोमल होती है। इसमें कामव्यवहार, हास्य शिष्ट परिहास आदि का अन्तर्भाव होता है। यह वृत्ति तीनों प्रकार के व्यापारों का संकररूप है। लम्बे केश आदि से युक्त होना स्त्री का लक्षण -

स्तनकेषवतीत्वं हि स्त्रीणां शुभ लक्षणम्।

चूंकि इस वृत्ति में स्त्रियों या उनकी चेष्टाओं का प्राधान्य होता है, अतः इसे कैशिकी की संज्ञा प्रदान की गई है। कैशिकी के चार अंग माने गये हैं - नर्म, नर्मस्फिज, नर्मस्फोट तथा नर्मगर्भ। प्रिया नायिका का प्रिय के चित्र को प्रसन्न करने वाला विलासपूर्ण व्यापार नर्म का कहा जाता है। जब नायक एवं नायिका को प्रथम समागम के समय पहले तो सुख होता है किन्तु बाद में दूसरों के द्वारा भेद पा जाने की आशंका से भय होता है तो इसे नर्मस्फिज कहते हैं, नर्मस्फोट की सत्ता वहाँ दिखती है, जहाँ सात्विक आदि भावों के प्रवेशमात्र से किंचित मात्र रस को सूचित कर दिया जाता है। जब किसी प्रयोजन के निमित्व नायक छिप कर प्रवेश करे तो उसे नर्मगर्भ कहा जाता है।

आरभटी वृत्ति -

आरभटी वृत्ति में कायिक व्यापार की प्रधानता रहती है, क्योंकि ऋ गतौ में अप् प्रत्यय करने पर अट् शब्द बनता है जिसका अर्थ है गतिशील अर्थात् जिस वृत्ति में भट (योद्धाओं(गतिशील रहते हैं उसे आरभटी कहते हैं।

भरतमुनि के अनुसार इस वृत्ति में कपट छल प्रपंच, दम्भ, माया इन्द्रजात तथा विचित्र कार्यों का प्रदर्शन है।

रामचन्द्र गुणचन्द्र आरभटी की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते है -

आरेण प्रतोदकेन तुल्या भटा उद्धताः पुरूशा आरभटाः।
ते सन्त्यस्यामिति ज्योत्स्नादित्वादणि आरभटीः ।।

इस वृत्ति में माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त आदि में चेष्टायें पायी जाती हैं। मंत्र शक्ति में किसी अविद्यमान वस्तु को प्रकाशित करना ही माया है। यदि इसी कार्य को तांत्रिक शक्ति से सम्पन्न किया जाये तो इसे इन्द्रजाल कहते हैं। इसमें भय तथा हर्ष की अतिशयता से व्याकुल पात्रों का प्रवेश नायक द्वारा पूर्वावस्था को छोड़कर दूसरी अवस्थी में ग्रहण, आक्रमण या अग्नि के द्वारा की जाने वाली भगदड़, अनेक प्रकार के स्थाई एवं व्यविचारी भावों से युक्त प्रासंगिक कार्य आदि, बाहुयुद्ध और शस्त्रप्रहार आदि का भी संग्रह हो जाता है। अतः कैशिकी की तरह यह वृत्ति भी कायिक, वाचिक तथा मानसिक सभी प्रकार के अभिनयों से युक्त और सब प्रकार व्यापारों वाली होती है। इसके चार भेद होते हैं- संक्षिप्तिका, सम्फेट, वस्तुत्थापन तथा अवतायन। जहाँ शिल्प प्रयोग के द्वारा संक्षिप्त वस्तु की रचना की जाये, वहाँ संक्षिप्तिका होती है। परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार पहले नायक का निवृत्त होना तथा दूसरे नायक का आना अथवा एक ही नायक द्वारा एक अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था ग्रहण करना ही संक्षिप्तिका है।

उदाहरण के तौर पर महावीर चरित्र में बाली की निवृत्ति हो जाने पर सुग्रीव नायक के रूप में ग्रहीत होता है। या परशुराम का औद्धत्य समाप्त होने पर 'पुण्याश्राहमाणजाति' इस प्रकार शान्तत्व का ग्रहण होता है।

जहाँ जहाँ दो क्रुद्ध पति एक दूसरे पर समाघात या अधिक्षेप करें वहाँ सम्फेट की स्थिति होती है। इसका उदाहरण माधव एवं अधोघण्ट का प्रसंग है, जहाँ वे एक दूसरे को बुरी तरह से निन्दित करते हुए एक दूसरे पर आक्षेप लगाते हैं।

मंत्र बल के प्रयोग से माया ज्ञान किसी वस्तु की उत्थपना करना,वस्तुस्थापन कहा जाता है। इसका उदाहरण- महावीर चरित्र में है, जहाँ राम के साथ युद्ध करता हुआ रावण मायाशक्ति द्वारा अपने कटे हुए सिर के बदले अपने अनन्त सिर को प्रकट कर देता है।

वृत्तियों की उपयोगिता -

नाटक में अभिनय की प्रधानता रहती है और अभिनय द्वारा सामाजिक को किसी न किसी रस की अनुभूति होती है। अतः इन भारती आदि वृत्तियों को किसी न किसी रस के साथ सम्बन्ध होने स्वाभाविक है। नाट्यशास्त्र के बीसवें अध्याय में आचार्य भरत ने कहा कि कैशिकी वृत्ति का प्रयोग श्रृंगार और हास्य रस की अभिव्यक्ति के लिए किया जाना चाहिए। वीर, रौद्र और अद्भुत रस में आश्रि वृत्ति को सात्वती, भयानक, वीभत्स और रौद्र में आरभटी का प्रयोग किया जाना चाहिए। करुण और अद्भुत रसों के लिए आरभटी वृत्ति का प्रयोग अपेक्षित है।

भारती चूँकि शब्द वृत्ति है, अतः इसकी स्थिति सभी रसों में पायी जाती है। वृत्तियों के स्वरूप तथा उसके रसगत वैशिष्टयों को लेकर आचार्यों में मतभेद पाया जाता है, किन्तु सामान्यतः भरतमुनि की वृत्तिविषयक मान्यताएँ ही साहित्य शास्त्रियों के द्वारा स्वीकृत हुई हैं। भवभूमि के तीनों नाटकों में नाटकीय व्यापारों की ऐसी प्रचुरता और विविधता पाई जाती है कि उनमें प्रायः सभी सांगोपांग वृत्तियों का समाहार हो जाता है। विशेषतः मालती माधव नाटकीय कार्य व्यापार की विविध शैलियों की दृष्टि से काफी सम्पन्न है। निष्कर्ष यह है कि नाटक में रसाभिव्यक्ति के लिए उक्त भारती आदि वृत्तियों का प्रयोग नितान्त आवश्यक एवं अपरिहार्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- अष्टाध्यायी 3-3-94 सूत्र।
2- प्रवृत्तिरूपाओं नेतृव्यापारस्वभावो वृत्तिःधनिक (दशरूपकम् 247)।
3- ऋग्वेदाद् भारती क्षिप्ता यजुर्वेदाच्च सात्वती।
कैशिकी सामवेदाच्च शेषा चाथर्वणादिपि। नाट्यशास्त्र
4- भारती सात्वती चैव वृत्तिमारभटी तथा।
समाश्रितः प्रयोगस्तु प्रयुक्तो वै मय द्वियाः।
परिगृह प्रणम्याथ ब्रह्मा विज्ञापितो मया।
अथाह मां सुरगुरूः कैशिकीमपि योजय।
यस्य तस्या क्षमं द्रव्यं तद्ब्रुहि द्विजसन्तम् (नाट्यशास्त्र 1-1-43)
5- दृष्टा मया भगवतो नीलकण्ठस्य नृत्यतः। कैशिकी ....
6- काय-वाडमनसां चेष्टा एवं सह वैचित्रयेण वृत्तयः (आचार्य अभिनव गुप्त)
7- नाट्य शास्त्र 22-2-14
8- तिस्र एवैता अर्थवृत्तयः। भारती तु शब्दवृत्तित्तरामुखांग त्वात्रतैव वाच्या (दशरूपकं 2-60, 61 वृत्ति)।
9- नाट्यदर्पण 3-5
10- महावीर चरित्र, पृष्ठ 89-90

विज्ञापन एवं निवेदन

रिसर्च जर्नल में विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रबन्ध सम्पादक के पते पर सम्पर्क करें। **'अभिनव गवेषणा'** (मल्टी डिस्लनरी क्वाटरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल) आप सभी की एक? स्ववित्त पोषित पत्रिका है, अतः पत्रिकी के? लिए किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा।? कृपया अपनी सहयोग राशि चेक, ड्राप्ट अथवा आर टी जी एस के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें। - सम्पादक? -

'अभिनव गवेषणा'

के-444, 'शिवराम कृ?पा' विश्व बैंक बर्रा,
कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश, भारत)

प्रबन्धन एवं सम्पादन

'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिस्लनरी क्वाटरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल) में अपने शोध पत्रों को? प्रकी?शित क?राने हेतु नियमित स्थान प्रदान क?रने के लिए कृ?पया फुल्स्केप की?गज पर टाइप कि?था हुआ अथवा मेल किया हुआ शोध लेख अपनी स्वीकी?रोक्ति? के? साथ भेजें।? भेजने की? पता - सेक्टर के - 444, 'शिवराम कृ?पा' विश्व बैंक बर्रा - कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश, भारत) मोबाइल नं0 8896244776, 9335597658 **E-mail super.prakashan@gamil.com** पर सम्पर्क करें। मिलने का समय- सप्ताह में 6 दिन 10.00 से 6.00 (रविवार अवकाश)।

ISSN : 2394-4366

Received: 22 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

भारतीय परिदृश्य में राष्ट्रीय एकता : समस्या एवं समाधान

– डॉ. श्याम नारायण शुक्ला
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं
विभागाध्यक्ष – बी.एड. विभाग,
ब्रह्मानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
राठ (हमीरपुर) – 210431
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
drsnshukla.2011@gmail.com

प्राचीनकाल से ही भारत ऋषि–मुनियों व तपस्वियों की जन्मस्थली रहा है। यहाँ पर विविध धर्मो, जातियों तथा सम्प्रदायों के लोग आपस में शान्ति, सद्भाव तथा आपसी प्रेम और भाई चारे से अपना जीवन यापन करते रहे हैं। इन सभी विभिन्नताओं के होते हुये भी भारत में आधारभूत एकता पाई जाती है। इसीलिये सभी विद्वानों ने यह कहा है कि 'भारत में अनेकता में एकता का गुण सदा से ही विद्यमान रहा है।' अर्थात् भारत में भौगोलिक, सामाजिक, भाषा, परम्परा और धर्म सम्बन्धी विभिन्नताओं के होते हुये भी जीवन की एकता है। यह एकता भरतीय चरित्र और सामान्य व्यक्तित्व की है जिसका आधार सांस्कृतिक एकता है। भारत एक राष्ट्र के रूप में अतीत से ही स्वीकृत रहा है। विद्वान, साहित्यकार तथा धार्मिक व्यक्ति सदा इसे एक सूत्र में बाँधे रखने का प्रयत्न करते रहे हैं। अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के होते हुए भी संस्कृत यहाँ की सर्वमान्य भाषा रही है। अनेक धार्मिक ग्रन्थों के होते हुये भी वेद तथा गीता का आभार हुआ है। अनेक देवी–देवताओं की पूजा होते हुये भी राम और कृष्ण यहाँ के अराध्य देव रहे हैं। इस प्राचीन एकता को विघटित नहीं किया जा सकता है। इस प्रचीन एकता से प्रभावित होकर सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है– 'भारत में निस्संदेह रूप से गहरे अधोभाग पर आश्रित आधारभूत एकता है।'

इसी संदर्भ में अक्टूबर,1985 में बंगलौर में पं. जवाहरलाल नेहरू ने कुछ निम्नाँकित शब्दों में कहा –

`We should not become parochial, narrow minded provincial, Communal & cast – minded, because we have a great mission to perform. Let us, the citizens of the Republic of India, bring about the integration of the Indian people, we have to buildup this great country unto a mighty nation, mighty in the ordinary sense of the word, but mighty in thought , mighty in action, mighty in culture & in its peaceful service of humanity'.

राष्ट्रीय एकता (National Integration)–

राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक स्थिति एवं एकता की भावना है जो सभी संकीर्ण या संकुचित तथा अलगाववादी प्रवृत्तियों से ऊपर है। यह देश भक्ति के साथ–साथ प्रगति के लिये कार्य करती है। स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय एकता सभी नागरिकों के हृदयों में एकीकरण, सुदृढ़ता, देश–प्रेम एवं देश–भक्ति की भावना का विकास है। यह सामंजस्य, भ्रातृत्व एवं सामूहिक रूप से रहने की भावना है। साथ ही यह समझदारी, सहिष्णुता (Tolerance) तथा सहयोगी जीवन व्यतीत करने का एक दृष्टिकोण है। अतः राष्ट्रीय एकता की भावना का तात्पर्य एक ऐसी भावना से है जो लोगों को अपने विचार तथा

कार्यो में वैयक्तिक, भाषायी या धार्मिक भेदभावों को समाप्त करके एकता की भावना के लिये बाध्य करती है।

राष्ट्रीय एकता के भाव को निम्नाँकित विचारों द्वारा अधिक समझा जा सकता है–

राष्ट्रीय एकता सम्मेलन–

''राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोगों के दिलों में एकता, संगठन एवं सन्निकटता की भावना, सामान्य नागरिकता की भावना तथा राष्ट्र के प्रति भक्ति की भावना का विकास किया जाता है।''

इसी संदर्भ में डॉ. बेदी का विचार है– `National integration means bringing about economic, social, cultural & linguistic differences among the people of various states in the country within tolerable range & imparting to the people a feeling of the oneness of India.'

भारत में राष्ट्रीय एकता की समस्या

(Problem of national integration in India)-

वर्तमान भारत में प्राचीन सांस्कृति एकता का तेजी से लोप होता जा रहा है। आज की भारतीय संस्कृति का रूप प्राचीन रूप से बिल्कुल भिन्न हो चुका है। प्राचीन समय में हमारी संस्कृति में अन्य संस्कृतियों को अपने में मिला लेने का विलक्षण गुण था, पर आज की स्थिति बिल्कुल विपरीत है। लोगों ने अपने आप को क्षेत्रीयता (Regionalism), जातीयता (Casteism), सम्प्रदाय और भाषा के आधार पर बाँट रखा है। साथ ही भू–भाग को भी बाँट रहे हैं। आपस में धर्म, भाषा व जाति के आधार पर लड़ रहे हैं और संकुचित दृष्टिकोण को अपनाकर जीने के लिए विवश हो चुके हैं तथा हम सबने अपने राष्ट्र के 'अनेकता में एकता' के विशिष्ट गुण को छिन्न–भिन्न कर दिया है।

हाँ! स्वतन्त्रता संग्राम के समय में हमने अपनी अलगाववादी तथा प्रथकतावादी प्रवृत्तियों को दफन करके, अपने देश को राष्ट्रीय एकता का एक अविस्मरणीय उदाहरण बनाया था। परन्तु यह अत्यन्त दुखद है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही अलगाववादी प्रवृत्तियों ने हमारी राष्ट्रीय एकता में विकार उत्पन्न कर दिया है। ये विघटनकारी प्रवृत्तियाँ हैं– आतंकवादी 1984 में हुए हिन्दुओं व सिक्खों के बीच दंगे रामजन्म भूमि मसले पर हिन्दू–मुस्लिम विवाद; कश्मीर में व्याप्त अलगाववादी प्रवृत्तियाँ; आसाम में उल्फा (ULFA) का आन्दोलन; बिहार में जातीय संघर्ष; जयपुर, गोरखपुर व कानपुर में आरक्षण विरोधी संघर्ष आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त हाल ही में 27 फरवरी, 2002 में गोधरा सहित गुजरात में जो कुछ भी हुआ, भारत जैसे लोकतांत्रिक तथा धर्म–निरपेक्ष देश के लिए शर्मनाक एवं अमिट कलंक है। इस घटना में हजारों हिन्दू व मुस्लिम मारे गये, जो लोग दंगों के दौरान मारे गये क्या वह पुनः जीवित हो पायेगें? कदापि नहीं। राजनीतिक दलों द्वारा दंगों की आड़ में जो राजनीति की जा रही है, वह अशोभनीय है। ये दंगे स्वयं नहीं बल्कि कुछ स्वार्थी तथा कथित धर्म के सौदागरों द्वारा कराये जाते हैं। यह बात भी छिपी नहीं है कि जब भी भारत में चुनाव होते हैं तो प्रायः सभी राजनीतिक दल धर्म का प्रयोग तुरुप के पत्ते की तरह करते हैं। नेता अपनी पार्टी की जीत के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा देते हैं। भोली और निरक्षर जनता इनके लुभावने वादों में आकर चुनावी बरसात में बह जाती है। चुनावों के बाद वोट के बदले जनता को रोजी–रोटी, कपड़ा और मकान के बजाय तोहफे के रूप में दंगे और मारकाट मिलती है और इन सभी के कारण दिन–प्रतिदिन राष्ट्रीय एकता में कमी आती जा रही है, तथा पृथकता की इन प्रवृत्तियों ने भारत में राष्ट्रीय एकता के विकास को अवरुद्ध करने वाली एक जटिल समस्या का रूप धारण कर लिया है।

डॉ. सम्पूर्णानन्द ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के राष्ट्रीय एकता के स्वरूप के विषय में ठीक ही लिखा है–

'स्वतन्त्रता के बाद के वर्षों में भारत ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति की है। किन्तु इन वर्षो में राष्ट्रीय जीवन में पृथकता की प्रवृत्तियों में उत्तरोत्तर वृद्धि भी अवलोकित हुई है।'

अतः हमें यह समझना चाहिए कि संसार का हर व्यक्ति किसी न किसी धर्म से बंधा है। जिस प्रकार निर्वस्त्र मुनष्य सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार धर्म विहीन मनुष्य भी सुशोभित नही होता। सभी धर्म श्रेष्ठ हैं लेकिन उनके अनुयायी दूषित हैं। काई भी धर्म हिंसा, अराजकता, आपसी भेदभाव तथा ऊँच–नीच का संदेश नहीं देता बल्कि सभी धर्म शान्ति, सद्भाव, प्रेम और भाई–चारे को संदेश देते हैं। जहाँ तक मैं समझती हूँ कि धर्म मानव से बड़ा नहीं है, क्योंकि इसे महापुरुषों ने बनाया है। फिर धर्म, जाति, भाषा आदि के पीछे मारकाट, हिंसा और खून खराबा क्यों? इन सभी कारणों के पीछे स्वार्थी और धर्म के सौदागर होते हैं जो धर्म का दुरुपयोग कर शासन सत्ता का सुख भोगते

रहते है। इसी संदर्भ में श्रीमद्भगवत गीता में कहा गया है कि – ''मूर्ख या स्वार्थी लोग अधर्म को धर्म कह सकते हैं।''

राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता

(Need of National Integration) –

राष्ट्रीय एकता की समस्या के संन्दर्भ में डॉ. राधाकृष्णन का कथन है– 'राष्ट्रीय एकता एक ऐसी समस्या है जिससे सभ्य राष्ट्र के रूप में हमारे अस्तित्व का घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।'

एक शिक्षाविद् एवं राजनीतिज्ञ के रूप में डॉ. राधाकृष्णन ने अपने इस कथन से हम सबको यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि यदि हम सभी में एक राष्ट्र के रूप में जीवित रहने की तनिक भी अभिलाषा है तो हमें राष्ट्रीय एकता को 'अनिवार्य आवश्यकता' स्वीकार करना पड़ेगा।

भारत में विविध प्रकार की जनसंख्या निवास करती है जिनके बीच एक दूसरे से अलग करने वाली दूरियाँ बहुत लम्बी हैं। यहाँ के लोगों में दैनिक जीवन एवं व्यवसायों को प्राभावित करने वाली जलवायु एवं भौतिक स्थितियों में अत्यधिक भिन्नता पायी जाती है। वर्तमान में हमारा देश आर्थिक, सामाजिक, प्राविधिक एवं राजनीतिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। ऐसे ही संक्रमण काल में आन्तरिक भेदभाव बढ़ने की सम्भावना बराबर बनी रहती है। इन्हीं विपरीत परिस्थितियों में सामान्य राष्ट्रीय एकता की भावना की आवश्यकता पड़ती है जिससे राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति देश के उत्थान व विकास के लिए कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य कर सके ।

उपर्युक्त के संदर्भ में डॉ. कानूनगो ने लिखा है– 'राष्ट्रीय एकता की हर देश को हर समय आवश्यकता है किन्तु भारत के लिए इसकी कहीं अधिक आवश्यकता है।'

यदि भारत के सामाजिक व आर्थिक ढाँचे को 'लोकतांत्रिक समाजवादी समाज' में बदलना है और उसे एक राष्ट्र के रूप में देखना है तो उसे विकासशील देशों के साथ आन्दोलन के स्तर पर एकता बनानी होगी, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में अग्रणी भूमिका निभानी होगी और समाजवादी देशों के साथ आन्दोलन के स्तर पर एकता बनानी होगी। हमें अपने ही देश में उच्च टेक्नालॉजी विकसित करनी होगी क्योंकि यदि उधार ली हुई टेक्नालॉजी हमारी सांस्कृतिक सम्पत्ति बन गयी तो धनी औद्योगिक राष्ट्र हमारी राष्ट्रीय भावना को कुचल डालेंगे। यदि भारत विखण्डित हो गया तो भारतीयता खत्म हो जायेगी।

उपर्युक्त वर्णित सभी प्रकार की विघटनकारी प्रक्रियाओं को, जो इस समय चल रही हैं, हमें उसे घातक रोग मानकर राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करके व अपने खून में बसी जय हिन्द की भावना से रोकना होगा ।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपने संदेश में कहा था कि – 'अब निश्चित रूप से वह समय आ गया है, जब प्रत्येक भारतीय को अपने अन्तर में देखना चाहिए और अपने आप से पूँछना चाहिए कि वह राष्ट्र के साथ है या किसी विशिष्ट समूह के साथ। यह हमारे समय की चुनौती हैं, जिसका प्रत्येक नर, नारी और बच्चों को सामना करना है।'

राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता के संदर्भ में डॉ. श्रीमाली ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– 'यदि हम मुश्किल से मिली अपनी आजादी की सुरक्षा एवं समृद्धि चाहते हैं तो हमें राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया को जारी रखना और शक्तिशाली बनाना आवश्यक होगा।'

अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने संकीर्ण हितों एवं स्वार्थो को तिलांजलि देकर देश–हित पर अत्यधिक विचार करें। इन सब के लिए लोगों में राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है।

राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधाएँ

(Obstacles in the way of National Integration)–

भारत को राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाने में निम्नांकित बाधाओं/कठिनाओं का सामना करना पड़ रहा है–

भाषावाद (Linguism)–

भारत सदा से ही विभिन्नताओं का देश होने के कारण यहाँ पर अनेक भाषायें रही है। परन्तु वर्तमान में भाषा के नाम पर आसाम, पंजाब आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु में ऐसी अनेक घटनायें हुई है, जो स्पष्ट रूप से देश–प्रेम और राष्ट्रीय एकता को निर्बल बनाती हैं। हमारे संविधान में अब तक कुल 22 भाषाओं को शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भी है। हिन्दी भाषा की भी अनेक उपभाषायें बोली जाती है। यहाँ के नागरिक अपनी–अपनी मातृभाषा बोलते हैं और मातृभाषा से प्रेम होना स्वभाविक है पर हम इस प्रेम में आकर कभी–कभी अन्य भाषाओं की निन्दा करते हैं और राट्रीय भावना के विकास को बाधित करते हैं। अतः ऐसी स्थिति में हम आज के संघर्षपूर्ण युग में तभी आगे बढ़ सकते हैं, जब हमारी एक भाषा हो। अतः पूरे राष्ट्र के लिए राष्ट्र–भाषा (हिन्दी) का होना आवश्यक है

जिसके माध्यम से देश के सभी नागरिक अपने विचारों का आदान–प्रदान करके एक दूसरे के निकट आ सकेंगे और तभी राष्ट्र का समुचित विकास होगा। अतः यदि हम राष्ट्र के रूप में एकता के सूत्र में बँधना चाहते हैं तो हमें भाषा सम्बन्धी विरोध का अन्त करके सम्पूर्ण देश के लिए एक भाषा निश्चित करनी पडेगी।

साम्प्रदायिकता (Communalism) –

राष्ट्रीय एकता के विकास में दूसरी बाधा साम्प्रदायिकता है। भारत के लोग विभिन्न सम्प्रदायों – हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, पारसी, जैन, बौद्ध तथा अनेक सम्प्रदायों में बँटे हुये हैं। सभी सम्प्रदाय अपने को दूसरे से श्रेष्ठ मानते हैं तथा दूसरे को हेय दृष्टि से देखते हैं। इसके विषय में पहले ही विचार विमर्श किया जा चुका है और ये सभी दंगे–फसाद राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधायें उत्पन्न कर रहे हैं। अतः यदि हम किसी सम्प्रदाय–विशेष में आस्था रखते है तो अच्छा है, लेकिन इस सम्प्रदाय के जोश में दूसरे सम्प्रदायों या धर्मो को हेय, काफिर एवं निकृष्ट समझना ठीक नहीं है। सामाजिक सम्बन्धों में एवं लाभ के पदों पर बैठकर हमें राष्ट्रीयता के आधार पर कार्य करना चाहिए, न कि सम्प्रदायिकता (धर्म) के आधार पर ।

क्षेत्रीय या प्रान्तीयता
(Regionalism or Provincialism)–

देश की एकता में यह भी एक बहुत बड़ी बाधा है। व्यक्ति को अपने जन्मस्थली से बहुत प्रेम होता है और यह स्वाभाविक ही है। यहाँ तक तो ठीक है, पर कुछ व्यक्ति संकुचित दृष्टिकोण को अपना कर यह सोचते हैं कि केवल उनका ही क्षेत्र सबसे अच्छा है, दूसरा क्षेत्र निकृष्ट है। वह अपने क्षेत्रीय हितों को राष्ट्रीय हितों के सामने भी नहीं त्यागते। इसी कठिनाई के कारण राष्ट्रीय एकता का विकास नही हो पाता। परिणामस्वरूप क्षेत्रीयता के आधार पर आये दिन एक नये राज्य की माँग का स्वर गूँजता रहता है। फलस्वरूप राज्यों के पारस्परिक वैमनस्य में वृद्धि हो रही है, जिससे देश की एकता पर कुठाराघात हो रहा है।

जातिवाद (Casteism) –

भारत में अनेक जातियाँ हैं। प्राचीन भारत में व्यावसायिक दृष्टि से भारतीय समाज को चार वर्गों में बाँटा गया था, अब वर्गो की परिणिति जन्म से निर्धारित जाति, उपजाति और उपजाति की उपजातियों में हो गयी है। कभी–कभी हम अपनी जाति के प्रति इतना प्रेम दिखाते हैं कि नियुक्ति तथा पदोन्नति आदि के समय केवल अपनी जाति के व्यक्ति का ही ध्यान रखते हैं। जहाँ पर जाति के प्रति भक्ति है वहाँ देश–भक्ति की भावना कैसे पनपेगी तथा राष्ट्रीयता का विकास कैसे सम्भव होगा।

इस पर प्रकाश डालते हुये जी. एस. घूरे ने लिखा है– 'यह जाति प्रेम की भावना ही है, जो अन्य जातियों में कटुता उत्पन्न करती है और राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए अनुपयुक्त वातावरण तैयार करती है।'

राजनीति दलदल (Political Morass) –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए राजनीतिक दलों का होना आवश्यक है। दलों के माध्यम से ही जनता में राजनैतिक चेतना और जनमत का निर्माण किया जाता है। इन दलों का संगठन मुख्यतः राजनैतिक विचारधाराओं के आाधार पर किया जाना चाहिए। पर यहाँ पर कुछ दलों का संगठन जाति, धर्म, सम्प्रदाय और क्षेत्रीयता के आधार पर किया जाता है तथा इन्ही प्राथमिकताओं के सहारे वोट (मत) माँगे जाते हैं। अतः भारत की राजनीतिक पार्टियाँ, राजनीतिक दल न रहकर राजनीतिक दलदल बन गयी है, क्योंकि इन्होंने देश की जनता को क्षेत्रीयता, जातीयता या साम्प्रदायिकता के दलदल में फँसा दिया है। इस प्रकार ये दल राष्ट्रीय एकता पर भीषण कुठाराघात कर रहे हैं।

राजनैतिक एवं आर्थिक कारण
(Political & Economic Causes) –

भारत की एकता को क्षति पहुँचाने वाले राजनैतिक कारणों में प्रमुख हैं – नदी, जल, के उपयोग से सम्बन्धित अन्तर–राज्यीय विवाद तथा अन्तर–राज्यीय सीमा विवाद। आर्थिक कारण हैं– गरीब तथा अमीर, छोटे तथा बड़े किसान, उद्योगपति तथा श्रमिकों आदि में भिन्नता होना। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार जिसके कारण खाद्यानों, दवाओं आदि में मिलावट, कालाबाजारी तथा तस्करी आदि को बढ़ावा मिल रहा है। इसके कारण सार्वजनिक जीवन के मूल्यों में गिरावट आ रही है साथ ही चारित्रिक गिरावट ने सार्वजनिक जीवन को अव्यवस्थित कर दिया है। इस प्रकार में कारक भी राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं।

बाधाओं को दूर करने के उपाय
(Measures to remove the obstacles)–

राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए हमारी सरकारें व विपक्ष दोनों ही प्रयत्नशील हैं। उन्हीं के प्रयास के फलस्वरूप ही भावात्मक एकता समिति (Emotional Integration Committee)

की स्थापना हुई तथा कांग्रेस के भावनगर अधिवेशन में ''राष्ट्रीय एकता सम्मेलन' (National Integration Conference) बुलाया गया यहाँ पर इन समिति व सम्मेलन में दिये गये सुझावों तथा कुछ आयोगों के सुझावों पर ध्यान देना आवश्यक है जिससे बाधाओं को दूर किया जा सके –

भावत्मक एकता समिति के सुझाव–

इस समिति के अध्यक्ष डॉ. सम्पूर्णानन्द थे। उन्होंने राष्ट्रीय एकता के विकास में शिक्षा (Education) के योगदान को महत्वपूर्ण मानते हुए सुझाव दिये –

शिक्षा द्वारा बालकों में उचित अभिरुचियों, दृष्टिकोणों तथा संवेगों का विकास किया जाये जिससे वे अपनी सांस्कृतिक विरासत तथा परम्पराओं की विशेषताओं को समझ सकें इसके लिये पाठ्यक्रम में इतिहास को महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए तथा इसके शिक्षण के लिए योग्य अध्यापकों की आवश्यकता को पूरा किया जाय। जिससे अपनी भावी पीढ़ी को राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाया जा सके। मध्यकाल का इतिहास पढ़ाते समय शिक्षक को उन समान सांस्कृतिक तत्वों पर बल देना चाहिए, जिन्होंने हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों को मिलाने में सहायता की और जिनके कारण स्थापत्य चित्रकला, साहित्य आदि के क्षेत्र में एकता आयी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास पढ़ाया जाना चाहिए। क्षेत्रीय भाषा के साथ एक आधुनिक भारतीय भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ायी जाये। विद्यालयों तथा कालेजों में प्रतिदिन असेम्बली की व्यवस्था करायी जाये। इसमें प्राचार्य राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में बच्चों से बतचीत करें। यह बातचीत राष्ट्रीय उपलब्धियों राष्ट्रीय नेताओं, लोगों के सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित हो।

राष्ट्रीय एकता सम्मेलन के सुझाव –

इस सम्मेलन में राष्ट्रीय एकता के लिये शिक्षा के उद्देश्यों के विषय में कहा गया है कि सभी छात्रों को देश के विभिन्न पहलुओं (खासकर स्वतन्त्रता से सम्बन्धित बातों) का ज्ञान तथा परिचय कराया जाये तथा एकता के विकास के लिये सभी जातियों, सम्प्रदायों और राज्यों में अधिक सम्बन्ध स्थापित करने वाली पढ़ाई लिखाई को प्रोत्साहित किया जाये। सम्मेलन में उपर्युक्त शैक्षिक उद्देश्य को ध्यान में रखकर शैक्षिक कार्यक्रमों के विषय में भी सुझाव देते हुए कहा गया है कि स्कूल–कॉलेजों में पढ़ाई जाने वाली पाठ्य पुस्तकों की जांच की जाये तथा ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जायें जो राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनायें। सभी जाति–धर्म के व्यक्तियों द्वारा लोकप्रिय मेलों व त्योहारों में भाग लिया जाये। जन सम्पर्क आन्दोलन द्वारा साम्प्रदायिक खतरों के विषय में लोगों को शिक्षित किया जाये तथा इसके लिये एकता से सम्बन्धित अध्ययन, गोष्ठियों तथा नाटकों का आयोजन किया जाये। समाज को विघटित करने वाली प्रवृत्तियों का विरोध करने के लिये संक्षिप्त एवं विशिष्ट फिल्में तैयार की जायें। सरकारी नौकरियाँ–धार्मिक, प्रान्तीय और साम्प्रदायिक आधारों पर न दी जायें। महत्वपूर्ण सरकारी पदों पर नियुक्तियों के समय अखिल भारतीय दृष्टिकोण को विशेष रूप से ध्यान रखा जाये।

राष्ट्रीय एकता परिषद के सुझाव –

इस परिषद की बैठक में सुझाव दिये गये हैं कि छात्रों में भारतीय जीवन के मूल्यों–समान नागरिकता, विभिन्नता में एकता, लोकतन्त्र, धर्म–निरपेक्षता, समाजवाद, न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व में आस्था विकसित की जाय। इन सभी के विकास के लिये शिक्षा का सहारा लेना आवश्यक है तथा पाठ्य पुस्तकों के निर्माण के लिये राष्ट्रीय बोर्ड का गठन करने का भी सुझाव दिया।

शिक्षा आयोग / कोठारी आयोग (1964–66) –

इस आयोग ने शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य 'समाजिक तथा राष्ट्रीय एकीकरण' निर्धारित किया है तथा इसी सन्दर्भ में सुझाव दिये हैं–

राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति में सामान्य विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली लाभदायक सिद्ध होगी। एक समान विद्यालयी प्रणाली का विकास करके शिक्षा को बालकों के लिये उपयोगी बनाना चाहिए साथ ही यह शिक्षा निःशुल्क व अच्छे स्तर की होनी चाहिये। यदि हमारा आदर्श राष्ट्रीय एकता है तो 'समाज सेवा' और 'राष्ट्रसेवा' को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बना देना चाहिये। इनके कार्यक्रम पूरे समय के लिये या आंशिक रूप से अपनाये जा सकते हैं। राष्ट्रीय एकता के लिये ''उपयुक्त भाषा नीति'' (Proper Language Policy) का विकास करना भी आवश्यक है। आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास करते हुए 'मातृभाषा' को शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षण का माध्यम बनाना चाहिये कि भारत विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों, समुदायों, भाषाओं, धर्मों एवं संस्कृतियों का देश है। अतः राष्ट्रीय चेतना का विकास करना चाहिये। छात्रों को अनुभव कराना चाहिये कि भारत एक है और यहाँ अनेकता

में एकता का गुण विद्यमान है। इसके लिये इस देश की सांस्कृतिक विरासत की पुनः परीक्षा करनी है और ठीक से समझना है तथा भविष्य के प्रति आस्था को जागृत करना अनिवार्य है। इसके लिये नागरिकता सम्बन्धी पाठ्यक्रमों में संविधान के सिद्धान्तों, उसकी प्रस्तावना में उल्लिखित महान मानव–मूल्यों को स्थान प्रदान किया जाये।

निष्कर्ष–

उपर्युक्त सुझावों के आधार पर हम एक शिक्षक के रूप में अपने विद्यालयी कार्यक्रम को निर्धारित कर सकते हैं, बल्कि करना चाहिये। जिससे देश में राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास किया जा सके। आज हम सभी भारत की स्थिति से परिचित हैं। देश के बाहरी संकट के साथ–साथ देश के अन्दर ऐसी शक्तियाँ और प्रवृत्तियाँ काम कर रही हैं, जो राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को नष्ट करने पर तुली हुई हैं। इस स्थिति में आज हमारे देश को आधुनिक भारत के निर्माता राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द तथा गाँधीजी जैसे धर्मनिरपेक्ष महापुरुषों की आवश्यकता है। ये महापुरुष अलग–अलग मत के होने के बावजूद, इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज एवं राष्ट्र–सेवा में व्यतीत कर दिया। गाँधी जी ने तो यहाँ तक कह दिया कि ''धर्म हर व्यक्ति का निजी मामला है''। इन महापुरुषों ने शिक्षा को राष्ट्रीय एकता के विकास एवं सुदृढ़ीकरण का एक महत्वूर्ण साधन बताया और देश के नागरिकों को अब यह समझ लेना चाहिये कि देश की रक्षा करने का उपाय केवल यही है कि शिक्षा को माध्यम बनाकर भारत के जन–जन में राष्ट्रीयता की भावना भर दी जाये। जो बालक, युवक और युवतियाँ शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं वहाँ इन संस्थाओं के द्वारा ही उनमें सच्ची राष्ट्रीय एकता की भावना का समावेश किया जाये। सच्ची राष्ट्रीयता का विकास तभी होता है जब लोग देश की बुराइयों के प्रति सजग रहते हैं तथा उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। सच्ची देश भक्ति भी वही है, जिसमें हम देश की कुरीतियों एवं बुराइयों को दूर करने का संकल्प लें।

मुदालियर आयोग ने अपने प्रतिवेदन में सच्ची देशभक्ति के विकास को उचित मानते हुए लिखा है– ''सच्ची देशभक्ति में तीन बातें निहित हैं। अपने देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों का आदर, देश की कमजोरियों को पहचानने के लिये प्रस्तुत रहना तथा व्यापक राष्ट्रीय हितों के समक्ष अपने व्यक्तिगत हितों को त्याग कर, अपनी क्षमता के अनुसार राष्ट्र की भरसक सेवा करने का संकल्प लेना।'

अतः भारतीय राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिये हमें स्थानीय, संकीर्ण, प्रान्तीय, साम्प्रदायिक और जातीय विचारों का नहीं होना चाहिये क्योंकि हमको एक महान कार्य करना है। हम जो भारतीय गणतन्त्र के नागरिक हैं, उन्हें भारतीय जनता में एकता स्थापित करनी चाहिये। हम सभी को इस महान देश को महान राष्ट्र बनाना है। शब्द के साधारण अर्थ में महान नहीं वरन विचार में महान, कार्य में महान, संस्कृति में महान और मानव जाति की शान्ति से सेवा करने में महान।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. "India beyond all doudt possesses a deep underlying fundamental unity." (Vincent Smith, the oxford History of India- Page No. 7.)
2. Jawahar Lal Nehru Speeches, Vol-III, Page No.-35.
3. National Intergration Conference Report, 1961.
4. Dr. J. S. Bedi : Current Problems of Indian Education, Page No.-. 217.
5. Dr. Sampurnanand's letter, dated 21st July, 1961, Emotional Intergration Committee Report, Page No.- 179.
6. "National Intergration is a problem with which our survival as a civilzed nation is bound up" ..... Dr. Radha Krishnan's occasional speech & writings, Page No.- 23.
7. K. L. Shrimali's address at the Inaugual meeting of the Emotional Intergration Committee ..... dated 10th, July, 1961.

ISSN : 2394-4366

Received: 23 May., 2025, **Accepted:** 28 May, 2025, **Published:** July-December, 2025, Issue

श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध का वैश्विक परिप्रेक्ष्य में समकालीन विश्लेषण

– प्रो. अर्चना श्रीवास्तव
विभागाध्यक्ष – संस्कृत विभाग,
महिला महाविद्यालय, किदवई नगर,
कानपुर–208011 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
archanaa.mmv@gmail.com

श्रीमद्भागवत पुराण केवल भक्ति का ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह जीवन के सर्वांगीण प्रबन्धन का शास्त्र है। प्राचीन भारतीय दर्शन (कर्म और भक्ति योग) आधुनिक समाज की मनोवैज्ञानिक, प्रबन्धकीय और पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान प्रदान करता है।

1. कर्म योग और भक्ति योग – एक अन्तर्सम्बन्ध –

भागवत दर्शन के अनुसार– 'कर्म' जब 'भक्ति' से जुड़ता है, तो वह 'नैष्कर्म्य' (निष्काम कर्म) बन जाता है।

भक्ति का मनोविज्ञान – नवधा भक्ति मन के विकारों को शान्त करती है।

कर्म का समाजशास्त्र – समाज के प्रति कर्तव्यों का निर्वहण ही वास्तविक आराधना है।

श्रीमद्भागवत पुराण भारतीय वांग्मय का वह रत्न है जो 'नैष्कर्म्य' (कर्मों के फल से मुक्ति) को भक्ति के माध्यम से सिद्ध करता है। सामान्यतः कर्म और भक्ति को अलग–अलग मार्ग माना जाता है, परन्तु भागवत के अनुसार, बिना भक्ति के कर्म 'शुष्क' है और बिना कर्म के भक्ति 'अव्यवहारिक' है।

2. कर्म योग का स्वरूप – फलरहित कर्म –

भागवत पुराण के अनुसार, कर्म का त्याग समाधान नहीं है, बल्कि 'कर्मफल' का त्याग ही वास्तविक योग है।

'स्वधर्म का पालन – भागवत के एकादश स्कन्ध (उद्धव गीता) में भगवान कृष्ण स्पष्ट करते हैं कि जब तक व्यक्ति का हृदय पूरी तरह विरक्त न हो जाए, उसे अपने नियत कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए।

'ईश्वरार्पण बुद्धि – कर्म योग यहाँ केवल 'Duty' नहीं है, बल्कि प्रत्येक कार्य को भगवान की पूजा समझना है।

3. भक्ति योग – 'प्रेममयी सेव' –

भक्ति यहाँ केवल अनुष्ठान नहीं, बल्कि एक मानसिक अवस्था है।

'नवधा भक्ति – श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि के माध्यम से साधक अपने अहंकार को विसर्जित करता है।

'साध्य और साधन – भक्ति स्वयं में साध्य (Goal) भी है और साधन (Means) भी।

4. कर्म और भक्ति का अन्तर्सम्बन्ध (The Synthesis) –

भागवत दर्शन में इन दोनों का मिलन 'भागवत धर्म' कहलाता है। इसके मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं–

(क) पक्ष,
(ख) कर्म योग की भूमिका,
(ग) भक्ति योग का प्रभाव,
(घ) उद्देश्य
(ट) चित्त की शुद्धि (Purification),

(ठ) चित्त का भगवान में लीन होना (Absorption),

(ड) प्रक्रिया,

(ढ) लोकसंग्रह हेतु कार्य करना,

(त) कार्यों को 'कृष्णार्पण' करना,

(थ) परिणाम,

(द) बंधन से मुक्ति (नैष्कर्म्य),

(ध) परमानन्द की प्राप्ति।

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् .....' (जो भी तुम करते हो, वह मुझे अर्पित कर दो)। यहाँ कर्म, भक्ति में विलीन हो जाता है।

श्रीमद्भागवत पुराण यह स्थापित करता है कि भक्ति विहीन कर्म केवल श्रम है और कर्म विहीन भक्ति केवल भावुकता। जब व्यक्ति अपने सामाजिक और नैतिक दायित्वों (कर्म) को ईश्वर के प्रति प्रेम (भक्ति) से जोड़ देता है, तो वह संसार में रहते हुए भी मुक्त रहता है।

श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यदि अध्ययन किया जाय तो यह सिद्ध होता है कि कृष्ण की लीलाएं केवल आध्यात्मिक कथाएँ नहीं, बल्कि एक उन्नत सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और पर्यावरणीय प्रबन्धन का ब्लूप्रिंट हैं। इसमें कर्म योग (कर्तव्य), भक्ति योग (समर्पण) और पारिस्थितिकी (यमुना पुनरुद्धार) के अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण किया गया है–

दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार (Philosophy & Psychology)।

कृष्ण बनाम फ्रायडइ – अहंकार का शोधन।

जहाँ फ्रायड 'Ego' को दमित करने या उसके संघर्ष की बात करते हैं, वहीं भागवत 'अहंकार के रूपांतरण' की बात करती है।

कालिया दमन यहाँ केवल एक नाग को वश में करना नहीं, बल्कि मन के भीतर स्थित 'विषैले अहंकार' का दमन है।

भक्ति योग के माध्यम से जब अहंकार कृष्ण (परमात्मा) के चरणों में झुकता है, तो वह विष (Pollution) अमृत (Devotion) में बदल जाता है।

भागवत बनाम स्पिनोजा–सर्वेश्वरवाद (Pantheism)-

दार्शनिक स्पिनोजा के अनुसार– 'ईश्वर और प्रकृति एक ही हैं।' भागवत इसे एक कदम आगे ले जाती है – प्रकृति ईश्वर की 'विभूति' है। गोवर्धन पूजा इस दर्शन का जीवन्त उदाहरण है, जहाँ इन्द्र (अधिदैविक शक्ति) के स्थान पर पर्वत और गायों (प्रकृति) की पूजा को प्राथमिकता दी गई।

कर्म योग और प्रबन्धन (Management & Teamwork)।

गोवर्धन लीला –

विकेन्द्रीकृत नेतृत्व (Decentralized Leadership) – कृष्ण ने स्वयं अकेले पर्वत नहीं उठाया, बल्कि सभी ग्वाल–बालों को अपनी लाठियाँ लगाने को कहा। यह आधुनिक प्रबन्धन में 'Inclusivity' और 'Team Ownership' का उत्कृष्ट उदाहरण है।

संकट प्रबन्धन (Crisis Management) – इन्द्र द्वारा किए गए प्रलयंकारी वर्षा के समय कृष्ण का 'शेल्टर' (गोवर्धन) प्रदान करना यह सिखाता है कि एक कर्मयोगी नेता संसाधनों का उपयोग समाज की सुरक्षा के लिए कैसे करता है।

पारिस्थितिकी – कालिया दमन और आधुनिक यमुना (Ecological Case Study)।

यमुना पुनरुद्धार – प्राचीन एवं आधुनिक चुनौतियाँ–

भागवत का 'कालिया दमन' प्रसंग आज के Environmental Science के लिए एक दिशा–निर्देश है।

विश्लेषण के बिन्दु, प्राचीन परिप्रेक्ष्य (Kaliya Daman) Stupid परिप्रेक्ष्य (Yamuna Today)।

प्रदूषण का प्रभाव, पक्षियों का मूर्छित होना, जल का काला पड़ना। 'Biologically Dead' नदी, शून्य ऑक्सीजन (D O)।

समाधान की प्रक्रिया Bioremediation : विषैले तत्व को नष्ट न कर उसे पुनः स्थापित (Relocate) करना।

STP & Interceptor - सीवेज ट्रीटमेंट और औद्योगिक कचरे का प्रबन्धन, जन–भागीदारी। पूरे ब्रज का यमुना तट पर एकत्रित होना। 'नमामि गंगे' और जन–आन्दोलन की आवश्यकता।

वैज्ञानिक दृष्टि – कृष्ण द्वारा कालिया को 'रमणक द्वीप' (समुद्र) भेजना यह दर्शाता है कि पारिस्थितिकी तंत्र में हर जीव का स्थान निश्चित है। प्रदूषण तब होता है जब कोई तत्व अपने प्राकृतिक स्थान से हटकर दूसरे के जीवन में बाधा डालता है।

भक्ति और कर्म का समन्वय (Synthesis of Karma & Bhakti)-

भागवत के अनुसार कर्म ही भक्ति है यदि वह 'लोकसंग्रह' (जन कल्याण) के लिए किया जाए।

निष्काम कर्म – ग्वाल–बालों का बिना किसी स्वार्थ के कृष्ण का साथ देना।

भक्ति – उस कर्म को ईश्वर की प्रसन्नता के लिए करना।

परिणाम – जब कर्म और भक्ति मिलते हैं, तो यमुना (प्रकृति) पुनः शुद्ध हो जाती है और समाज (ब्रज) सुरक्षित रहता है।

निष्कर्ष (Conclusion)-

श्रीमद्भागवत पुराण एक 'लिविंग डॉक्यूमेंट' है। कालिया दमन की कथा हमें आज की मरती हुई नदियों को बचाने का 'इकोलॉजिकल विजन' देती है, जब कि गोवर्धन लीला हमें सामूहिक प्रयासों की शक्ति सिखाती है। यह शोध पत्र यह निष्कर्ष निकलता है

कि भक्ति योग व्यक्तिगत शांति के लिए है और कर्म योग सामाजिक व पर्यावरणीय स्थिरता के लिए।.

विस्तृत संदर्भ–
(Detailed References)

1. श्रीमद्भागवत महापुराण (दशम स्कन्ध) – अध्याय 16 (कालिया दमन) एवं अध्याय 24–25 (गोवर्धन लीला)।
2. Srimad Bhagavatam & A - C - Bhaktivedanta Swami Prabhupada : विशेषकर प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध पर भाष्य।
3. The Ethics (Baruch Spinoza) - प्रकृति और परमात्मा के अद्वैत सिद्धान्त के तुलनात्मक अध्ययन हेतु।
4. Environmental Status Report of Yamuna River (CPCB).
5. Sigmund Freud & 'The Ego and the Id.
   (Comprehensive Bibliography)
   प्राथमिक स्रोत (Primary Sources) -
6. व्यास, वेद – श्रीमद्भागवत महापुराण (सटीक), गीता प्रेस, गोरखपुर। (विशेषतः दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)।
   गोस्वामी, रूप – भक्तिरसामृतसिन्धु, (भक्ति योग के वैज्ञानिक वर्गीकरण हेतु)।
7. दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक स्रोत (Philosophical & Psychological Sources)–
   Freud, Sigmund (1923) : The Ego and the Id- Hogarth Press- (अहंकार के विश्लेषण हेतु)।
8. Spinoza, Baruch (1677) – Ethics- (प्रकृति और ईश्वर के अद्वैत सम्बन्ध के तुलनात्मक अध्ययन हेतु)।
   शर्मा, डॉ. रामविलास – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, राजकमल प्रकाशन। (लोक–जीवन और कृष्ण के नेतृत्व पर)।
9. पर्यावरण एवं केस स्टडी स्रोत (Ecological Sources)–
   Central Pollution Control Board (CPCB) & Water Quality Status of Yamuna River] Annual Report 2023 & 24.
10. Haberman, David L. (2006) : River of Love in an Age of Pollution : The Yamuna River of Northern India
    University of California Press- (यह पुस्तक विशेष रूप से भागवत और यमुना प्रदूषण के सम्बन्धों पर शोध करती है)।
11. प्रबन्धन एवं नेतृत्व स्रोत (Management Sources)–
    Radhakrishnan, S. : The Bhagavadgita - Harper Collin.

ISSN : 2394-4366

शोध पत्र लेखकों को निर्देश

'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरेनशल रेफ्रीड/पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल) है, जिसमें सभी उपविषयों के मौलिक शोध पत्र, शोध समीक्षा, विचार एवं लेखों आदि का प्रकाशन किया जाता है। शोधकर्ता हिन्दी, अंग्रेजी अथवा संस्कृत भाषा में अपने शोध पत्र भेज सकते हैं। शोध पत्र भेजते समय कृपया निम्न बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दें–

◈लेखक अपना शोध पत्र **सर्वेश तिवारी 'राजन'** प्रबन्ध सम्पादक– 'अभिनव गवेषणा', के–444 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर–208027 (उ.प्र.) को अथवा **super.prakashan@gmail.com** पर प्रेषित करें।

◈प्राप्त शोध पत्र जर्नल में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोध पत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोध पत्र का कोई भी भाग सम्पादक की अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है।

◈अपने शोध–पत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें– शीर्षक, सारांश, पाण्डुलिपि, निष्कर्ष एवं पुस्तक सन्दर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु शोधालेख पर विशेष ध्यान दें।

◈**शीर्षक** : शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें, किन्तु अपना पूरा नाम, पद, विषय, संस्था, पता जहाँ पर निवास एवं अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका दूरभाष, मोबाइल, ई–मेल पत्राचार की सुविधा हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें।

◈**सारांश** – सारांश कृपया शोध–पत्र का सारांश अधिकतम 200 शब्दों में दें।

◈**पाण्डुलिपि**– इसके अर्न्तगत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी जो 5 से 8 पृष्ठों तक होनी चाहिए। शोध पत्र में 7–8 पृष्ठ का (सारांश, शब्द संक्षेप, निष्कर्ष एवं सन्दर्भ सूची सहित) से अधिक नहीं होना चाहिए, अन्यथा प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। आलेख प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने, इसका पूरा ख्याल रखा जाता है, फिर भी त्रृटि पाये जाने पर लेखक संशोधित री–प्रिन्ट प्राप्त कर सकता है।

◈**पुस्तक** – प्रकाशक का नाम, संस्करण, संख्या, प्रकाशन वर्ष, लेखक का नाम, पृष्ठ संख्या दें।

◈**पत्रिका** – पत्रिका का नाम, लेख का शीर्षक, लेखक एवं प्रकाशक का नाम, अंक, संख्या, माह, वार्षिक, अर्द्धवार्षिक, त्रैमासिक व मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

◈**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची** – कृपया शोध पत्र में कम से कम 8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची अवश्य दें।

◈**समाचार पत्र**– समाचार पत्र के प्रकाशक, प्रकाशन तिथि, वर्ष व पृष्ठ संख्या का उल्लेख करें।

◈**इण्टरनेट** – वेबसाइट, पृष्ठ संख्या, मुख्य शीर्षक, अन्तःशीर्षक का उल्लेख करें।

◈**मानचित्र एवं सारणी**– मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोध पत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में अवश्य दें (उदाहरण, सारणी संख्या आदि)।

◈**विशेष**– कृपया अपना शोध पत्र ई–मेल करने के बाद फोन अथवा मोबाइल से अवश्य सूचित करें। शोध पत्र के साथ फोटो, ई–मेल एड्रेस भेजें। शोध पत्र हिन्दी, संस्कृत (कृतिदेव हिन्दी फान्ट 14) एवं अंग्रेजी (टाइम्स 12) में तैयार कर मेल करें। शोध पत्र प्राप्त होने के तुरन्त बाद, उसी दिन लेखक की मेल पर स्वीकृति, कवर, इंडेक्स व पेपर प्रेषित कर दिया जायेगा। **super.prakashan@gmail.com** से प्राप्त शोध पत्र हेतु ई–मेल/व्हाट्सअप से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व प्रबन्ध सम्पादक से मोबाइल/दूरभाष पर सम्पर्क अवश्य कर लें। रिसर्च जर्नल में लेख सम्मिलित करने का सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति का निर्णय ही अन्तिम व सभी को मान्य होगा।

◈**सुझाव** – लेखकों एवं पाठकों को यह अंक कैसा लगा, इस सम्बन्ध में अपने–अपने विचार अवश्य लिखें। इससे मुझे अपनी त्रुटियों को जानने और भावी योजना बनाने में सहायता मिलेगी।

◈**विनम्र निवेदन**– सभी सम्मानित सदस्यों से निवेदन है कि अपने माध्यम से संस्था में अधिकतम सदस्यों को पत्रिका परिवार से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

अभिनव गवेषणा Abhinav GAVESHNA

मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल

Multi Disciplinary Quarterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal

ISSN - 2394-4366

E-mail : super.prakashan@gmail.com

कार्यालय : सेक्टर के-444 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027

सदस्यता फार्म

श्रीमान् सम्पादक महोदय,

'अभिनव गवेषणा'

(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल)

सेक्टर-के-444, 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027 (उ. प्र.) भारत

महोदय / महोदया,

निवेदन है मैं / हमारा महाविद्यालय आपके 'सुपर प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित 'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल) परिवार का ····· वर्षीय / आजीवन / व्यक्तिगत / संस्थागत सदस्य बनना चाहता हूँ / चाहती हूँ? मैं / हमारी संस्था 'सुपर प्रकाशन', विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-27 के नाम सदस्यता शुल्क ····· रुपये नकद / मनीआर्डर / चेक अथवा बैंक ड्राफ्ट खाता क्रमांक (सुपर प्रकाशन - 52570200000355) IFS Code No. BARB0BUPGBX बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक, शाखा- विश्व बैंक बर्रा (कर्रही) कानपुर-27 के नाम से दे रहा हूँ। ↑ ⟶ ZERO

नाम (श्री / श्रीमती) डॉ. : .....

पद का नाम (जहाँ वर्तमान में कार्यरत हैं) : .....

संस्था / निवास का नाम : .....

पत्र व्यवहार का पूरा पता (पिनकोड सहित) : .....

: .....

फोन / मोबाइल नं. : .....

स्थान व दिनांक : .....

- हस्ताक्षर

प्रबन्ध सम्पादक : सर्वेश तिवारी 'राजन'

मो. : 8896244776

सम्पादक : ***डॉ. रवेन्द्र राजपूत***

मो. : 7830080099